राजशेखररूपकावली

(द्वितीय भाग)

प्रो० रमेशकुमार पाण्डेय

अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स
दिल्ली

राजशेखररूपकावली

(भाग-२)

(१. बालभारतम् २. कर्पूरमञ्जरी
३. विद्धशालभञ्जिका)

प्रो० रमेशकुमार पाण्डेय



अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स
दिल्ली-११०००९

प्रकाशक
अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स
८/२५, विजय नगर, दिल्ली-९
दूरभाष २७२५२३६२

प्रथम सस्करण २००४

ISBN 81-87322-24-1 (Vol I)
81-87322-25-X (Vol II)
81-87322-26-8 (Set)

मूल्य १०००-०० (सेट)

मुद्रक
अमर प्रिंटिंग प्रैस
विजय नगर, दिल्ली-९

अनुक्रम

बालभारतम्

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

सूत्रधार	नाटक का सचालक
वाल्मीकि	रामायण के प्रणेता
व्यास	महाभारत के प्रणेता
युधिष्ठिर	नाटक के नायक
भीमसेन	युधिष्ठिर के अनुज
अर्जुन	„ „
नकुल	„ „
सहदेव	„ „
धृष्टद्युम्न	द्रौपदी (नायिका) के भाई
भीम, द्रोण, कर्ण,	स्वयवर-द्रष्टा
कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न	„
दुर्योधन	द्यूत का प्रणेता, प्रतिनायक
दु शासन	दुर्योधन का अनुज
विकर्ण	सत्यमार्ग का अनुयायी
शकुनि	दुर्योधन का मामा, द्यूत-विद्या का आचार्य
विदुर	धर्म-मार्ग के अनुयायी, द्यूत-विरोधी
पुरुष	सेवक
बन्दी	„

स्त्री-पात्र

द्रौपदी	नायिका
सखी	द्रौपदी की सहेली
सुनन्दा	युधिष्ठिर की सेविका
सुरेखा	दुर्योधन की सेविका

बालभारतम्

प्रथमोऽङ्कः

नम शिवाय ससारसरोजस्य रजस्विन ।
विकासनैकसूर्याय सङ्कोचसकलेन्दवे ॥ १ ॥

ये सीमन्तितभस्मगात्ररजसो ये कुम्भकद्वेषिणो,
ये लीढा श्रवणाश्रयेण फणिना ये चन्द्रशैत्यद्रुह. ।
ते रुष्यद्गिरिजाविभक्तवपुषश्चित्तव्यथासाक्षिण,
स्थाणोर्दक्षिणनासिकापुटभुव श्वासानिला पान्तु व ॥ २ ॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधार —(परिक्रम्य विचिन्त्य च) अहो ! किमपि कमनीया कवेरात्मन्याशी ।

मकरन्दपूर्ण (अथवा रजोगुणयुक्त) ससार रूपी कमल के विकास के लिए एकमात्र सूर्य तथा उस ससार-कमल के सकोच (सहार) के लिये पूर्ण चन्द्र भगवान् शकर को प्रणाम है ।

स्थाणु (भगवान् शकर) की दाहिनी नाक से निकलने वाले वायु आप लोगो की रक्षा करे, जिन्होने शकरजी के शरीर के भस्म को सीमन्तयुक्त (या धारीदार) बना दिया है, जो कुम्भक प्राणायाम के द्वेषी है । जिन्हे कान के सर्प पी रहे है, जो चन्द्रमा की शीतलता के द्वेषी है और जो पृथक् व्यञ्जित हो रहे क्रुद्ध पार्वती के शरीर वाले शकरजी की चित्तव्यथा के साक्षी है ।

(नान्दी के अन्त मे)

सूत्रधार— (घूमकर तथा सोचकर) अहा ! कवि ने अपने विषय मे कितना सुन्दर आशीर्वाद कहा है—

आद्य कन्दो वेदविद्यालताना जैह्व चक्षुर्निर्निमेष कवीनाम् ।
यो येनार्थी तस्य तत् प्रक्षरन्ती वाङ्मूर्तिर्मे देवता सन्निधत्ताम् ॥ ३ ॥

व्यासो वैखानसवृषा सत्य सत्यवतीसुत ।
भारती भारतकविर्देयाद् द्वैपायनो मम ॥ ४ ॥

(विमृश्य) अहो । मसृणोद्धता सरस्वती यायावरस्य, यदाह—

ब्रह्मभ्य शिवमस्तु वस्तु वितत किञ्चिद् वय ब्रूमहे
हे सन्त । शृणुतावधत्त विधृतो युष्मासु सेवाञ्जलि ।
यद्वा किं विनयोक्तिभिर्मम गिरा यद्यस्ति सूक्तामृत
माद्यन्ति स्वयमेव तत्सुमनसो याच्ञा पर दैन्यभू ॥ ५ ॥

(पुरोऽवलोक्या) कथम् । एते महोदयनगरलीलावतसा विद्वास सामाजिका । तदेव विज्ञापयामि ।

जो वेद विद्यालताओ की आद्य कन्द है, कवियो की निर्निमेष जिह्वारूपी चक्षु है तथा जो जिस विषय का अर्थी है उसे वैसा देने वाली है और वाणी ही जिनकी मूर्ति है वे देवता (सरस्वती) मेरे पास रहे ॥ ३ ॥

मुनिश्रेष्ठ सत्यवादी सत्यवती-पुत्र महाभारतकार द्वैपायन व्यास मुझे वाणी (या महाभारत की कथा का ज्ञान) दे ॥ ४ ॥

(विचार कर) अहा । यायावर-कुलोत्पन्न (राजशेखर कवि) की सरस्वती बडी ही कोमल तथा उद्दात्त है । जैसा कि कहा है—

ब्राह्मणो का कल्याण हो । हे सज्जनो । आपके सामने हम कोई प्रशस्त वस्तु कह रहे है, आप ध्यान देकर सुनिये, आपकी सेवा मे यह अञ्जलि समर्पित है (अर्थात् यह अञ्जलिबद्ध प्रार्थना है), अथवा इन विनयोक्तियो से क्या यदि मेरी वाणी मे सुवचन का अमृत है तो वह स्वय सज्जनो को तृप्त करेगा । याचना तो अत्यन्त दीनता का स्थान है ॥ ५ ॥

(सामने देखकर) क्या ये महानगर महोदय (कान्यकुब्ज) के लीलाशिरोमणि विद्वान् सामाजिक है । तो इनसे इस प्रकार प्रार्थना करता हूँ ।

(अञ्जलिं बद्ध्वा)

सा सूक्तिर्निधिनाथकेलिचषक वेणीविभूषामणि
सीताया स च कुम्भसमभवमुने प्राप्ता च सैकावली।
पर्यङ्क स च विद्रुमद्रुममयस्तद्रामसिंहासनम्
चिह्न यस्य यशोनिधिर्विजयता सोऽय रघोरन्वय ॥ ६ ॥

अत्र हि—

नमितमुरलमौलि पाकलो मेकलानाम्,
रणकलितकलिङ्ग केलिकृत्केरलेन्द्रै.।
अजनिजितकुलूत कुन्तलाना कठोरो
हठहृतरमठश्री श्रीमहीपालदेव ॥ ७ ॥

तेन च रघुवशमुक्तामणिनार्यावर्तमहाराजाधिराजेन श्रीनिर्भयनरेन्द्रनन्दनेनाराधिता सभासद । सर्वानिव वो गुणाकर समाहूय सप्रश्रय विज्ञापयति । विदितमेतत्तु भवता यदुत नाट्याचार्येण रङ्गविद्याधरेण प्रतिज्ञातम्—

(हाथ जोडकर)

वह सूक्ति (वाल्मीकि कृत), कुबेर की क्रीडा का पानपात्र, सीता की वह चूडामणि, अगस्त्य मुनि से प्राप्त वह एकावली माला, विद्रुमलता की वह शय्या तथा वह जगत्प्रसिद्ध श्रीराम का सिहासन— ये जिसके चिह्न है ऐसा वह रघु का वश विजय को प्राप्त हो। अर्थात् रघुवश की ये विशेषताएँ लोकप्रसिद्ध है ॥ ६

श्रीमहीपालदेव नाम के राजा है, जिन्होने मुरलदेश वालो का सिर नीचा कर दिया है, मेकल देशवासयो के लिये हाथी के ज्वर के समान है, युद्ध मे कलिङ्ग देशवासयो को पराजित कर दिया है, केरल चन्द्रमा के लिये क्रीडा की तटभूमि है, अथवा केरल नरेशो के साथ रणक्रीडा करते है, युद्ध मे कुलूतदेशवासियो की जीत कुन्तलदेशवासियो के लिए कुठार सदृश है तथा रमठ देश की लक्ष्मी को हठात् हरण कर लिये है ॥ ७ ॥

उन रघुवश के मुक्तामणि, आर्यावर्त के महाराजाधिराज श्रीनिर्भयराज के पुत्र ने सभासदो को अधिकृत किया है। आप सभी से यह गुणाकर (सूत्रधार) नम्रतापूर्वक सूचित करता है कि यह तो आप लोगो को विदित ही है कि नाट्याचार्य रङ्गविद्याधर ने यह प्रतिज्ञा की है—

राजशेखरकवेर्महात्मनो बालभारतमिद हि नाटकम्।
योऽभिनेष्यति रसैर्निरन्तर मत्सुता स परिणेष्यति क्षितौ ॥ ८ ॥

(आकाशे) तत्रभवन्त कि ब्रूथ। इद तद्बालभारत "प्रचण्डपाण्डवमिति" यस्य सञ्ज्ञान्तरम्। (अञ्जलि बद्ध्वा) यथादिशन्ति परिषदग्रेसरा । (किञ्चित् सलज्जम्) भवदनुचरा पञ्चभ्रातरो वय पञ्चापि नाम समर्थास्तदभिनये। कि पुनरस्माक पितृव्यपुत्रा भरतपुत्राश्च ते सन्ति। ते च तदभिनेतुमिच्छन्ति न च ते शक्नुवन्ति। एतन्निमित्त महदस्वैर वैर वर्तते। (आकाशे) तत्रभवन्त । कि ब्रूथ। एकविषयाभिलाषो हि वैरकन्द कन्दलयति। तद्भवद्भि सह कुलान्तकर वैर तेषा यतो दुर्बुद्धयस्ते, सुबुद्धयो हि भवन्त । उक्त हि तेनैव महामन्त्रिपुत्रेण।

श्रिय प्रसूते विपदो रुणद्धि यशासि दुग्धे मलिन प्रमार्ष्टि।
सस्कारशौचेन पर पुनीते शुद्धा हि बुद्धि किल कामधेनु ॥ ९ ॥

महात्मा राजेशखर कवि के रस से सर्वथा पूर्ण इस बालभारत नाटक का जो पृथ्वी पर अभिनय करेगा, वह मेरी कन्या से विवाह करेगा।

(आकाश में) श्रीमान् लोग । क्या कह रहे है कि यह वह बालभारत है, जिसका प्रचण्ड-पाण्डव भी नाम है ? (हाथ जोडकर) सभासदो मे श्रेष्ठ आप लोग जैसी आज्ञा दे रहे है (कुछ लज्जित होकर) हॉ, आप लोगो के अनुचर हम पॉच भाई हैं, हम पॉचो ही उसके अभिनय मे समर्थ है किन्तु हमारे चचेरे सौ भाई भी जो भरतपुत्र (नाटक-प्रदर्शक) है। वे भी उसे अभिनीत करनाचाहते है, पर वे कर नही सकते। इस कारण उनका हम लोगो के साथ महान् वैरभाव हो गया है। (आकाश में) क्या कहते है— एक विषय (वस्तु) की अभिलाषा वैर के मूल को जन्म देती है। आप लोगो के साथ उनका कुल नाशकारी वैर हो गया है। क्योकि वे दुर्बुद्धि है और आप लोग सुबुद्धि है। इस विषय मे महान् सुमन्त्री के पुत्र ने कहा है—

शुद्ध बुद्धि लक्ष्मी को उत्पन्न करती है, विपत्तियो को दूर करती है, यश प्रदान करती है, मलिनता को नष्ट करती है और सस्कारो को पवित्र कर आत्मा को पवित्र करती है, इसीलिये यह निश्चित रूप से कामधेनु है ॥ ९ ॥

(अञ्जलि बद्ध्वा) प्रतिग्रहीतमार्यवच । बद्धो वाससि ग्रन्थि । तदित्थमाममन्ति—

अनूचानो हि यद् ब्रूते सा स्वयम्भू सरस्वती ।
तदार्ष न मृषार्थ स्यात् सा दृष्टिर्विदुषा दृढा ॥ १० ॥

अपि च—

आपन्नार्तिहर पराक्रमधन सौजन्यवारानिधि-
स्त्यागीसत्यसुधाप्रवाहशशभृत्कान्त कवीना मत ।
वर्ण्य वा गुणरत्नरोहणगिरे कि तस्य साक्षादसौ
देवो यस्य महेन्द्रपालनृपति शिष्यो रघुग्रामणी ॥ ११ ॥

तत्र चैवविधो दैवज्ञाना प्रवाद ।

बभूव वल्मीकभव पुरा कविस्तत प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
तत स्थितो यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखर ॥ १२ ॥

(आकाशे) कि ब्रूथ । तत्प्रस्तूयतामिति । यदादिशन्ति गुरव ।

(हाथ जोडकर) आप लोगो का वचन स्वीकार कर लिया । वस्त्र मे गॉठ बाध ली । क्योकि ऐसा माना जाता है ।

वेदाध्यायी जो बोलता है वह स्वय प्रादुर्भूत सरस्वती है, वह ऋषि का वचन है और असत्य नही हो सकता । वही विद्वानो की सुदृढ दृष्टि है ॥ १० ॥

और भी—

वे दु खितो के दु ख को दूर करने वाले, पराक्रमी, सज्जनता के सागर, दानी, सत्यामृत के प्रवाहार्थ चन्द्रमा के समान कमनीय, कवियो मे समादृत है अथवा गुणो के (आश्रयभूत) पर्वत है । उन राजशेखर कवि का क्या वर्णन किया जाए, जिनके रघुवशियो मे श्रेष्ठ राजा महेन्द्रपाल साक्षात् शिष्य है ॥ ११ ॥

उस (कवि के विषय) मे दैवज्ञो (ज्योतिषियों) का ऐसा कहना है—

जो प्राचीन काल मे वाल्मीकि थे और पुन भर्तृमेण्ठ बने तथा तदनन्तर भवभूति नाम से स्थित हुये वे ही इस समय राजशेखर के रूप मे स्थित है ॥ १२ ॥

(आकाश में) क्या कह रहे हैं— कि उसे उपस्थित करे ? तो गुरुजनो का जैसा आदेश है ।

(नेपथ्ये गीयते)

हरचूडामणिरिन्दुस्त्रिजगद्दीपश्च दिनकरो देव ।
मासाना सङ्गताविह लोकस्य हिताय वर्तेते ॥ १३ ॥

सूत्रधार—(आकर्ण्य) कथम् । उपक्रान्त भरतपुत्रै । यद्वाल्मीकिव्यासयो प्रावेशिकी ध्रुवा[1] गीयते । (विचिन्त्य) ध्रुवा हि नाट्यस्य प्रथमे प्राणा । यत—

प्रथयति पात्रविशेषान्सामाजिकजनमनासि रञ्जयति ।
अनुसन्दधाति च रसान्नाट्यविधाने ध्रुवा गीति ॥ १४ ॥

तद्भवतु । अहमप्यनन्तरकरणीयाय सज्जीभवामि । (इति निष्क्रान्त)

(नेपथ्य मे गान हो रहा है)

शकरजी के शिरोमणि चन्द्रमा तथा त्रैलोक्य को प्रकाशित करने वाले सूर्यदेव इस ससार के हितार्थ मासान्त मे एकत्र है अर्थात् आज पूर्णिमा या अमावस का दिन है ॥ १३ ॥

सूत्रधार— (सुनकर) तो कुशीलवो ने तो प्रारम्भ ही कर दिया ? क्योकि वाल्मीकि और व्यास के प्रवेश की ध्रुवा गीति गायी जा रही है । (सोचकर) नाटक के प्रारम्भ मे ध्रुवा प्राण होती है । क्योकि—

नाट्यविधान मे ध्रुवा गीति पात्रविशेषो को प्रसिद्ध करती है, दर्शको का मनोरञ्जन करती है और रसो का सधान करती है ॥ १४ ॥

तो ठीक है, मैं भी बाद के कृत्यो के लिये तैयार हो जाऊ । (निकल जाता है) ।

---

१ नाटयशास्त्र के पॉचवे अध्याय में ध्रुवा गीति का वर्णन करते हुये उसके पॉच प्रकारो का निर्देश किया गया है—
'यथायोग्या ध्रुवा पञ्च तथा वक्ष्यामि यत्नत ।
आदावुत्थापनी कार्या परिवर्तस्तथा भवेत् ॥
अवकृष्टाड्डिता श्चैव विक्षिप्ता चैव पञ्चमी ।
एव पञ्च ध्रुवा ज्ञेया उपोहनसमन्विता ॥
तालवादिद्ध नियमा ध्रुवा तु परिकीर्त्ति

इति प्रस्तावना[1] ।

(तत प्रविशति वाल्मीकिर्व्यासश्च)

व्यास —(सपादोपग्रहम्) अद्भुतसम्भव एष व्यास पाराशर्योऽभिवादये ।

वाल्मीकि —(पृष्ठे पाणि निधाय) वत्स ! सात्यवतेय ! स्वप्रबन्धपरिसमाप्त्या वर्धस्व ।

व्यास —परमनुग्रहीतोऽस्मि । (अञ्जलिं बद्ध्वा)

योगीन्द्रश्छन्दसा द्रष्टा रामायणकविर्भुवि ।
वल्मीकजन्मा जयति प्राच्य प्राचेतसो मुनि ॥ १५ ॥

वाल्मीकि —अष्टादशपुराणसङ्ग्रहकारिन् ! महान् वर्तते तवेतिहासो भारतम् ।

प्रस्तावना समाप्त ।

(तदनन्तर वाल्मीकि तथा व्यास प्रवेश करते हैं)

व्यास—(पैर छूकर प्रणाम करके) अद्भुत जन्म वाला यह पराशर-पुत्र आपको प्रणाम करता है ।

वाल्मीकि— (पीठ पर हाथ रखकर) वत्स सत्यवती-पुत्र ! अपने ग्रन्थ की समाप्ति से वृद्धि प्राप्त करो ।

व्यास— परम अनुगृहीत हूँ । (हाथ जोडकर)

मन्त्रो के द्रष्टा रामायण-निर्माता वल्मीक से उत्पन्न प्राचीन योगीन्द्र, प्रचेतापुत्र मुनि की जय हो ॥ १५ ॥

वाल्मीकि—अठारह पुराणो के सग्रह कर्ता ! आपका इतिहास-ग्रन्थ महाभारत महान् है ।

---

१ टिप्पणी—साहित्यदर्पण में प्रस्तावना का लक्षण इस प्रकार दर्शाया गया है-
'नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिता सलाप यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यै स्वकार्योत्थै प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथ ॥'(६ ।३१-३२)

व्यास—(सलज्जम्) पुन पुनरविनयोद्घाटनेन लज्जयति मामुपाध्याय । कि वय रामायणकवे पुरत ।

ये विद्यापरमेश्वरा स्तुतधियो ये ब्रह्मपारायणे
येषा वेदवदादृता स्मृतिमयी वाग् लोकयात्राविधौ ।
स्नाता स्वर्गतरङ्गिणीमपि सदा पूता पुनन्त्यत्र ता
व्युत्पत्त्या परया रसोपनिषदो रामायणस्यास्य ते ॥ १६ ॥

किञ्च, भगवन् प्रथमकवे ।

यदुक्तिमुद्रा सुहृदर्थवीथी कथारसो यश्चुलुकैश्चुलुक्य ।
कर्णामृतस्यन्दि च यद्वचासि रामायण तत्कवितॄन् पुनाति ॥ १७ ॥

वाल्मीकि.—वत्स कृष्णद्वैपायन । कस्य पुन कवेर्वचो भारतस्य षोडशीमपि कला कलयति यत—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ॥ १८ ॥

व्यास— (सलज्ज) बार-बार अविनय को बताकर गुरुदेव हमे लज्जित कर रहे है । रामायण-कवि के सामने हम लोग क्या है ?

आप विद्या के परमेश्वर है तथा ब्रह्मज्ञान मे आपकी बुद्धि की परम प्रशसा है । ससार के जीवन मे आपकी स्मृति तुल्य वाणी (अर्थात् रामायण) वेद के समान आदृत है ? आपके इस रामायण की सरस वाणियॉ अवगाहन करने पर पवित्र स्वर्गगङ्गा को भी सदा पवित्र करती है ॥ १६ ॥

और हे आदिकवि ।

जिस रामायण की उक्तियॉ हितकारी अर्थो से पूर्ण है, जिसका कथा-रस चुल्लू से पीने योग्य है तथा जिसके वचन कानो मे अमृत टपकाने वाले है, यह रामायण कवियो को पवित्र करता है ॥ १७ ॥

वाल्मीकि— वत्स कृष्णद्वैपायन । किस कवि की वाणी महाभारत की सोलहवी कला की तुलना कर सकती है । क्योकि—

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय मे जो यहॉ है वह अन्यत्र भी है, पर जो यहॉ नही है वह कही नही है ॥ १८ ॥

किञ्च—

दन्तोलूखलिभि शिलोञ्छिभिरिद कन्दाशनै फेनपै
पर्णप्राशनिभिर्मिताम्बुकवलै काले च पक्वाशिभि ।
नीवारप्रसृतिंपचैश्च मुनिभिर्यद्वा त्रयीध्यायिभि·
सेव्य भव्यमनोभिरर्थपतिभिस्तद्वो महाभारतम् ॥ १९ ॥

किन्तु श्रुतमस्माभिर्यदुत रसविरसे कष्टकाव्येऽभिनिविष्टोऽसीति ।

व्यास—इदमुपाध्यायपादेभ्यो विज्ञाप्यते ।

विनायको य शिवयोरपत्यमर्ध पुमानर्धमिभश्च देव ।
स वर्तते भारतसहिताया वृत्तस्तपोभिर्मम लेखकोऽत्र ॥ २० ॥

तेन च्छलयितुमहमुपक्रान्त । यदुत बाढमह ते लिपिकर । कि पुनर्येन रहसा लिखेय तेन यदि सरभसे तत्ते विघ्न स्यात् । ततो मयापि प्रतिच्छलित । ओम् । अस्तु । कि पुनर्भवता भावयता लिखितव्यमित्यत काव्यकष्टेऽभिनिविष्टोऽस्मि ।

और भी—

आपका महाभारत दन्तोलूखली, शिलोञ्छवृत्ति वाले, कन्दमूल खाने वाले, फेन पीने वाले, पत्ते खाने वाले एव थोडा जल पीने वाले, समय पर पक्व खाने वाले, मुट्ठीभर नीवार पकाने वाले एव वेद का अध्ययन करने वाले अर्थज्ञ मुनियो द्वारा सेवन करने योग्य है ॥ १९ ॥

किन्तु हमने सुना है कि तुम रस से विमुख कष्ट काव्य (कूटार्थयुक्त काव्य) मे सलग्न हो ?

व्यास— गुरुदेव से बता रहा हूँ ।

पार्वती-शकर के पुत्र देव गणेश, जो आधे मनुष्य तथा गज है, वे इस महाभारत-सहिता मे मेरे तप से माँगे जाने पर लेखक बने ॥ २० ॥

उन्होने मुझे ठगना चाहा— कि ठीक है मै तेरा लेखक बनूँगा किन्तु जिस वेग से मै लिखूँगा, यदि उस वेग से निर्माण नही करोगे तो तुम्हे विघ्न होगा । तो मैने भी जवाब मे छल किया— कि ठीक है किन्तु आपको भी समझते हुये लिखना है । एतदर्थ कठिन काव्य मे सलग्न हुआ ।

वाल्मीकि—कियान्वर्तते ते नवेतिहास ।

व्यास—समाप्त एव । कि तूपाध्यायपादै स्वयवराय पाण्डवप्रवेश यावदाकर्णित एव ।

वाल्मीकि—तदेहि । प्राप्ता सायन्तनी सन्ध्यामुपास्महे । तत श्रावयिष्यसि । सम्प्रति हि—

अयमहिमरुचिर्भजन् प्रतीची कुपितवलीमुखतुण्डताम्रबिम्ब ।
जलनिधिमकरैरुदीक्ष्यते द्राड्नवरुधिरारुणमासपिण्डलोभात् ॥ २१ ॥

अपि च—

निर्यद्वासरजीवपिण्डकरणी बिभ्रत् कवोष्णौ करै-
र्भ्राजिष्ठ रविबिम्बमम्बरतलादस्ताचलं चुम्बति ।
किं चास्तोकतम· कलापकलनाश्यामायमान मनाग्,
धूमध्यामपुराणचित्ररचनारूप जगज्जायते ॥ २२ ॥

वाल्मीकि— नवीन इतिहास कितना है ?

व्यास— पूरा हो गया । आचार्य ने स्वयवर मे पाण्डवो मे प्रवेश तक तो सुना ही है ।

वाल्मीकि— तो आओ, साय सध्या की उपासना करे । फिर सुनूँगा । इस समय—

क्रुद्ध बन्दर के मुख के समान ताम्रवर्ण बिम्बवाले पश्चिम दिशा मे गये उस सूर्यदेव को समुद्र के मकर सद्य निकले नवीन रक्त से लाल मासपिण्ड के लोभ से देख रहे है ॥ २१ ॥

और भी—

अल्प उष्ण किरणरूपी हाथो से दिन के प्राणो के निकलते समय पिण्डदान करते हुए सूर्यमण्डल आकाश से अस्ताचल पर्वत की ओर जा रहा है, एवम् शनै-शनै बढते हुए अन्धकार समूह से काला होता हुआ जगत् धूम से अस्पष्ट चित्र के समान दिखायी दे रहा है ॥ २२ ॥

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

इति विष्कम्भक ।

(तत प्रविशति ब्राह्मणवेषो युधिष्ठिरो भीमसेनादयश्च)

सहदेव—इत इत ।

(सर्वे परिक्रामितकेन)

युधिष्ठिर—वत्स सोदर वृकोदर। परपुरञ्जय धनञ्जय। मण्डितपाण्डवकुल नकुल। द्विषद्दु सह। सहदेव। इह हि महाराजसमाजे न जाने कमवलम्बिष्यते राधावेधवैजयन्ती।

भीम—(विहस्य)

आर्यो वेति निजा न विक्रमकला त्व विश्वरक्षामणि
कि ब्रूमोऽस्य किरीटिनो भुजबल द्रोणेन यस्योपमा।
माद्रीनन्दनयोर्नरेन्द्र। विनयच्छत्र हि वीरव्रत
न भ्राता स तवास्ति यस्य पुरतो राधा परो विध्यति॥ २३॥

(घूमकर दोनो निकल जाते है।)

विष्कम्भक समाप्त हुआ।

(तदनन्तर ब्राह्मण-वेषधारी युधिष्ठिर और भीमसेन आदि प्रवेश करते है।)

सहदेव— इधर से इधर से। (सभी घूमकर)

युधिष्ठिर— वत्स सहोदर भीम। दूसरे के नगर को जीतने वाले धनजय। पाण्डव-कुल के शृङ्गार नकुल। शत्रुओ के लिए दु सह सहदेव। यहाँ महाराजाओ के समाज मे मालुम नही राधा-वेध की कीर्ति किसे मिलेगी ?

भीम—(हँसकर)

आप अपनी पराक्रमशालिता को नही जानते, आप विश्वरक्षा की मणि है, अर्थात् विश्वरक्षा की सामर्थ्य रखते है। इस किरीटी अर्जुन के बाहुबल को क्या कहे ? इसकी तुलना द्रोणाचार्य से है। हे राजन्। माद्री के दोनो पुत्रो का पराक्रम विनम्रता मे ढँका है। आपका ऐसा कोई भाई नही है, जिसके रहते दूसरा कोई लक्ष्य बेधे॥ २३॥

अर्जुन —

दुर्नम यदि मुरारिकार्मुक दुर्भिद यदि शरव्यमुच्छ्रितम् ।
दुर्जया यदि च राजमण्डली तत्प्रभो ! द्रुपदजा न दुर्लभा ।। २४ ।।

नकुल —निखिलनरेन्द्राधिष्ठितान् मञ्चसञ्चयानपास्य मुनिजनप्रायविप्रजनपरिगृहीत मञ्चमारोहाम । वयमपि ब्राह्मणवेषधारिण एव ।

(सर्वे समारुह्य यथोचितमुपविशन्ति)

(नेपथ्ये)

इदो इदो कुमारधिट्ठज्जुणो भट्टिदारिआ अ । [इत इत कुमारधृष्टद्युम्नो भर्तृदारिका च ।]

युधिष्ठिर —प्राप्तैव स्वयवरयित्री ।

(तत प्रविशति सधृष्टद्युम्ना द्रौपदी वन्दी सखी च परिक्रामितकेन)

धृष्टद्युम्न ——(एकतोऽवलोक्य) कथ तात द्रुपदमनुग्रहीतु महर्षयोऽपि स्वयवरयात्रामञ्चमध्यासते । तदेनानभ्यर्चयामि । (सप्रणयमञ्जलि बद्ध्वा ।)

अर्जुन—हे राजन् ! यदि मुरारि का धनुष कठिनता से नम्र करने योग्य है । बाण का लक्ष्य यद्यपि ऊचा और दुर्भेद्य है और राजमण्डली भी कठिनता से जीती जा सकती है, पर द्रौपदी दुर्लभ नही है ॥ २४ ॥

नकुल— राजाओ द्वारा अधिष्ठित सपूर्ण मञ्चो का त्याग कर मुनि-तुल्य ब्राह्मणो से अधिष्ठित मञ्चो पर हम आरूढ हो, क्योकि हम भी वेष तो विप्रो का ही रखे है ।

(सभी चढकर यथोचित बैठ जाते हैं ।)

(नेपथ्य में)

कुमार धृष्टद्युम्न तथा महाराज कुमारी इधर से, इधर से चले ।

युधिष्ठिर— यह स्वय वरण करने वाली आ गई ।

(तदनन्तर धृष्टद्युम्न के साथ द्रौपदी बन्दी तथा सखी आती है, घूमकर)

धृष्टद्युम्न—(एक ओर देखकर) क्या, पिता द्रुपद पर अनुग्रह करने के लिए महर्षिगण भी स्वयवर-यात्रा के मञ्च पर बैठे है ? तो इनकी अभ्यर्थना करुँ । (सादर हाथ जोडकर)

स्वस्त्यापस्तम्ब ! तुभ्य त्वमसि ननु मुने ? कस्य नो माननीय-
स्त्वा वन्दे याज्ञवल्क्य ! द्विजसदसि कवे ! त्वा स्तुवे भारतस्य ।
विश्वामित्र पवित्र जगति विजयता काममत्रे ! नमस्ते
विश्वप्रष्ठे वसिष्ठे कृतनतिरपरान् स्तौमि हर्षान्महर्षीन् ॥ २५ ॥

द्रौपदी—(प्रणमति) णमो णमो महामुणीण तुम्हाणम् । [नमो नमो महामुनिभ्यो युष्मभ्यम् ।]

धृष्टद्युम्न —(अन्यतोऽवलोक्य)

लक्ष्मीसवननैर्भुजैर्नृपतय स्वस्त्यस्तु व स्वागतम्
नन्वेते गृहमेधिना धुरि वय यद्यूयमभ्यागता ।
दृष्ट केन भवादृशा पुनरियान्पूज्य समाजो जग-
त्युत्कण्ठा भवता च सम्प्रति पुर सेय स्थिता द्रौपदी ॥ २६ ॥

सखी—इदो इदो भट्टिदारिआ । [इत इतो भर्तृदारिका ।]

हे आपस्तम्ब ! आपको नमस्कार है । हे मुने ! आप किसके मान्य नही है ? अर्थात् सभी के है । हे याज्ञवल्क्य ! द्विजसभा मे आपको प्रणाम करता हूँ । महाभारत के रचयिता व्यास ! आपकी स्तुति करता हूँ । विश्वामित्र ससार मे पर्याप्त पवित्र है । अत्रि ! आपको नमस्कार है । विश्वपूज्य वसिष्ठ को नमस्कार है । अन्य ऋषियो को भी प्रेम से नमस्कार करता हूँ ।

द्रौपदी— (प्रणाम करती है) आप सभी मुनियो को प्रणाम करती हूँ ।

धृष्टद्युम्न— (दूसरी ओर देखकर)

लक्ष्मी के आराधक भुजाओ से युक्त राजा लोगो ! आपका मङ्गल हो । आपका स्वागत है । आप लोगो का यहाँ पदार्पण हुआ, अत हम निश्चय ही गृहस्थो मे श्रेष्ठ है । जगत् मे आप जैसो का इतना बडा समुदाय किसने देखा है ? आप लोगो की उत्कण्ठा का आस्पद यह द्रौपदी सामने है ॥ २६ ॥

सखी— राजपुत्री ! इधर से आवे ।

युधिष्ठिर—(सस्पृहमवलोक्य) हहो लोचनचकोरकौ ! आतृप्तेरापिबत द्रौपदी-वदनेन्दुचन्द्रिकाम् ।

कण्ठे मौक्तिकदाम गण्डतलयो कार्पूरमच्छ रज
सान्द्र चन्दनमङ्गके विचिकिलस्त्रक्शेखर मूर्धनि ।
तन्वी बाढमिय चकास्ति तरुणी चीनाशुके बिभ्रती
शीताशोरधिदेवतेव गलिता व्योम्नि द्रुत गच्छत ॥ २७ ॥

भीम—(द्रौपदीसम्भावनमनुसन्धाय स्वगतम्)

पद्भ्या मुक्तास्तरलगतय सश्रिता लोचनाभ्या
श्रोणीबन्धस्त्यजति तनुता सेवते मध्यभाग ।
धत्ते वक्ष कुचसचिवतामद्वितीयं तु वक्त्र
त्वद्गात्राणा गुणविनिमय कल्पितो यौवनेन ॥ २८ ॥

अर्जुन—(स्वगतम्) हृदय ! कारय चाक्षुषी पारणाम् । पुरतो द्रौपदी । अस्या खलु वयोविशेषोचितमिदमधुना सम्भाव्यते ।

युधिष्ठिर—(सस्पृह देखकर, स्वगत)—हे लोचनचकोरो ! तुम दोनो तृप्ति तक द्रौपदी के मुख-चन्द्रिका का पान करो ।

द्रौपदी के गले मे मुक्ता-माला है, गालो पर स्वच्छ कर्पूर-रज है । शरीर पर गाढे चन्दन का लेप है, सिर पर खिले हुए पुष्पो की माला है, रेशम के दोनो वस्त्रो को धारण करती हुई यह कृश शरीर वाली तरुणी द्रौपदी चन्द्रलोक की अधिष्ठात्री देवता के समान शोभायमान हो रही है, जो शीघ्रता से आकाश मे जा रहे चन्द्र से च्युत हुई है ॥ २७ ॥

भीम—(द्रौपदी को देखकर, स्वगत)

नितम्ब कृशता को छोड रहा है और मध्यभाग कृशता को ग्रहण कर रहा है । पैरो ने चञ्चल गति छोड दी और वह चञ्चल गति ऑखो ने ग्रहण कर ली । वक्ष स्थल स्तनद्वय को प्राप्त हो गया और मुख अद्वितीय हो गया । यौवन ने इसके शरीर मे गुणो का परिवर्तन कर दिया ॥ २८ ॥

अर्जुन—(मन में) हृदय ! भूखी ऑखो का पारण कराओ । सामने द्रौपदी है । सप्रति इसकी अवस्थानुरूप ऐसी सभावना है ।

शारीद्यूतकलाकुतूहलि मनश्छेकोक्तिशिक्षारति-
र्नित्य दर्पणपाणिना सहचरीवर्गेण चाचार्यकम् ।
प्रौढस्त्रीरचितानुवृत्तिषु रसो बाल्येऽपि लज्जा मनाक्
स्तोकारोहिणि यौवने मृगदृश कोऽप्येष रम्य क्रम ॥ २९ ॥

नकुल—(स्वगतम्) नेत्रे ! यथाशक्ति विस्तार भजतम् ।

स्मितपरिचितावृत्तिर्वाचामपाङ्गतरङ्गित
नयनचरित पादन्यासो नितम्बभरालस ।
अहह ! सुतनोर्लीलासूत्रै कृत पदमङ्गके
वहतु मदन शोभामात्र धनुर्ननु सम्प्रति ॥ ३० ॥

सहदेव—(स्वगतम्) क्षण चक्षुषी निमेषदोषमपाकुरुतम् । इदमग्रे हृदयलेह्यममानुष लावण्यम् ।

थोडा आरूढ यौवन वाली इस मृगनयनी द्रौपदी मे यह सुन्दर क्रम दिखलाइ पड रहा है— इसका मन शारी (पाशा-विशेष) द्यूत मे कुतूहल वाला हो गया है, विदग्ध वचनो की शिक्षा मे इसका प्रेम हो गया है, सदैव हाथो मे दर्पण लिये रहती है, यह सखियो से (कामकला) सीखती है, प्रौढ स्त्रियो द्वारा की जा रही मनोनुकूल बातो का आनन्द अनुभव करती है और बालसुलभ आचरणो मे भी कुछ लज्जित हो सामने आ रही है ॥ २९ ॥

नकुल— (स्वगत) नेत्र ! यथाशक्ति विस्तृत हो जाओ ।

यह मुस्कराहट के साथ वचन बोलती है । इसकी ऑखे कटाक्ष के साथ चलती है । पाद-विक्षेप नितम्ब के भार से अलस होता जा रहा है । अहा ! इस सुन्दरी के अग मे लीलासूत्रो ने स्थान बना लिया है । अब कामदेव निश्चय ही केवल शोभा के लिये धनुष ढो रहा है ॥ ३० ॥

सहदेव—(मन में) हे ऑखो ! क्षणभर के लिये निमेष के दोष को दूर करो । यह आगे हृदय से आस्वाद लेने योग्य अलौकिक सौन्दर्य जो है ।

तरङ्गय मनाग् दृशौ स्थगय दिङ्मुखान्युत्पलै
करौ वलय ! जायता सरसिजाकरो जङ्गम ।
विहस्य पुनरुक्तता सुतनु ! लम्बयैकावली-
मुदञ्चय मुख भवत्ययमकाण्डचन्द्रोदय ॥ ३१ ॥

बन्दी—(तार स्वरमास्थाय)

सकलभुवनरक्षा स्रस्ततन्द्रा नरेन्द्रा
शृणुत गिरमुदारामादराच्छ्रावयामि ।
इह हि सदसि राधा य शरव्या करोति
स्मरविजयपताका द्रौपदी तत्कलत्रम् ॥ ३२ ॥

सखी—कथ । विब्भमतण्डविदभूलदामञ्जरी भमररिञ्छोलीलञ्छिदेण णअणकन्दोट्टवत्तेण घोट्टन्त विअ दोवदीवअणलावण सअ इदोमुह पडिवट्टणि णरेन्दचक्क । [कथ विभ्रमताण्डवितभ्रूलतामञ्जरी भ्रमररिञ्छोलीलाञ्छितेन नयनकन्दोद्वर्तेन घट्टयदिव द्रौपदीवदनलावण्य सर्वमितोमुख परिवर्तते नरेन्द्रचक्रम् ।]

बन्दी—अहह ! कुसुमायुधस्याप्रतिहत भगवत शासनम् । यत—

हे सुन्दर शरीर वाली द्रौपदी ! जरा ऑखो को चलाओ और दिशाओ को कमलो से भर दो । हाथो की चलाओ, जिससे जङ्गम कमलो का समूह उत्पन्न हो जाय । अपने हास्य से एकावली (हार) को व्यर्थ कर दो । मुख उठाओ और बिना समय का चन्द्रोदय हो जाय ॥ ३१ ॥

बन्दी—(उच्च स्वर का आश्रय लेकर)

हे समस्त लोको की रक्षा करने वाले राजाओ ! प्रमाद रहित होकर सुनो । इस उदार वाणी को आदरपूर्वक सुना रहा हूँ । इस सभा मे जो राधा को बाण का लक्ष्य बनायेगा, कामदेव की विजयपताका-स्वरूप द्रौपदी उसकी स्त्री होगी ॥ ३२ ॥

सखी— क्या, विलासयुक्त भ्रू-मञ्जरी रूप भ्रमर-पक्ति से युक्त नयनकमलखण्डो से मॅडराकर द्रौपदी के मुख-सौन्दर्यामृत को पीते हुये सारा राज-समुदाय इधर ही उन्मुख हो गया है ।

बन्दी— अहा ! भगवान् कामदेव का अप्रतिहत शासन है । क्योकि—

जात ताण्डवितभ्रु चक्षुरधुना कण्ठो लुठत्पञ्चम
सवृत्तोऽस्य, करोत्यय तरलित हार करान्दोलनै ।
मिथ्यासौ स्मयते स्थितो भणितिभि किं चैष वैपञ्चिको
यत्सत्य मदिरा विनैव मदनो यूना मदोन्मादभू ॥ ३३ ॥

कथम्, अहम्पूर्विकया सर्वेऽपि धनुरारोपयितु सरम्भन्ते ।

धृष्टद्युम्न—हहो कन्दर्पचण्ड । निवार्यतामियमहमहमिका महीपालानाम् ।

बन्दी—(किञ्चिदुच्चै)

सर्वे कार्मुककर्मठा क्षितिभुज सर्वे च शृङ्गारिण
सर्वे मानमदोद्धता शृणुत मे वन्द्य वचो बन्दिन ।
दुर्धर्ष धनुरच्युतस्य पणित तच्चाध्यवस्यत्यसौ
यस्य स्थाम महर्द्धि, तद्धिततम व्रीडा यश खण्डिनी ॥ ३४ ॥

(सर्वे परिक्रामितकेन)

इसकी ऑख की पुतलियॉ नाचने लगी । इसका पञ्चम कण्ठ लडखडाने लगा । यह हार की हाथो से हिला-हिला कर चचल करने लगा । यह झूठे ही मुस्करा रहा है । यह वीणा बजाने वाला वार्तालाप मे सलग्न हो गया । यह सत्य ही है कि कामदेव बिना मदिरा के ही युवको को उन्मत्त बना रहा है ॥ ३३ ॥

क्या, सभी 'मै पहले, मै पहले' करते धनुष चढाने के लिये उद्योग कर रहे है ।

धृष्टद्युम्न— अहा । प्रचण्ड कामदेव । राजाओ की यह 'मै पहले' 'मै पहले' की वृत्ति को रोकिये ।

बन्दी— (कुछ ऊचे स्वर में)

सभी राजा धनुर्विद्या मे निपुण है, सभी शृङ्गारी है और सभी मानमद मे उत्कृष्ट है, आप लोग मुझ बन्दी की इस माननीय बात को सुने । भगवान् विष्णु का दुर्धर्ष धनुष बाजी पर लगा है, अत वही उद्योग करे, जिसका बल महान् हो । यह उसके अत्यन्त हित की बात है । क्योकि (चाप न चढाने पर) जो लज्जा होगी, वह यश को नष्ट करने वाली है ॥ ३४ ॥

(सभी चलते हुए)

बन्दी—(द्रौपदी प्रति)

शम्भोर्मूर्ध्नि गतागतानि कुरुते या चन्द्रलेखाङ्किते
तस्या शान्तनवोऽयमुज्ज्वलयशा स्वर्गापगाया सुत ।
वन्दित्वा तमुदग्रभार्गवशरश्रेणीव्रणालङ्कृतम्
भीष्म सुभ्रु ! तत स्वयवरनृपान् प्रत्येकमालोकय ॥ ३५ ॥

सखी—दुवदणदिनि ! गङ्गातणओ सतणवो एसो । ता गुरुत्तरेण पणमिज्जदु । [द्रुपदनन्दिनि ! गङ्गातनय शान्तनव एष । तद्गुरुत्वेन प्रणम्यताम् ।]

द्रौपदी—जो किल कुमारस्सबह्मआरी । णमो णमो कोरवपाण्डवाण पिदामहस्स । [य किल कुमारसब्रह्मचारी । नमो नम कौरवपाण्डवाना पितामहाय ।]

(सर्वे परिक्रामितकेन)

बन्दी—(स्वगतम्) अये ! भगवतो भीष्मादनूनगरिमा द्रोणाचार्य एष । (सप्रकाशम्)

बन्दी—(द्रौपदी से)

हे सुन्दर भ्रुवो वाली ! जो शिव के चन्द्रलेखा से अलकृत मस्तक पर सचरण करती है, उन स्वर्ग-नदी गङ्गा के पुत्र, ये उज्ज्वल यश वाले शान्तनुनन्दन भीष्म है । भार्गव परशुराम के बाण-समूह के लगने से व्रणो के द्वारा अलकृत इन भीष्म को प्रणाम कर फिर स्वयवर मे आये राजाओ को क्रम से देखो ॥ ३५ ॥

सखी—द्रुपदनन्दिनि ! ये गङ्गापुत्र शान्तनुतनय भीष्म है । इन्हे गुरुतुल्य समझ कर प्रणाम करो ।

द्रौपदी—ये कुमार जन्म से ही ब्रह्मचारी है । कौरव-पाण्डवो के पितामह को प्रणाम है ।

(सब चलते हैं)

बन्दी—(मन में) अरे ! ये भीष्म से अन्यून गरिमा वाले द्रोणाचार्य है । (प्रकट में)

सदाशिवप्रशिष्योऽयमवधि सर्वधन्विनाम्।
आकर्णपलित सुभ्रु ! द्रोणाचार्य प्रणम्यताम्॥ ३६ ॥

द्रौपदी—जो कोरवपण्डवाण धणुव्वेअविज्जागुरु । [य कौरवपाण्डवाना धनुर्वेद-विद्यागुरु ।]

(वन्दी निजदो स्तम्भसम्भावनागर्वचर्विततविवेकान्नृपतीनवलोकयति)

द्रोण —

शिष्योऽस्मि भार्गवमुने कुरुपाण्डवाना
कोदण्डकर्मणि गुरुस्तदिद ब्रवीमि।
हे भूभुजो जयवपूषि धनूषि धत्त
मुक्त्वार्जुनं तु भुवि विध्यति कोऽत्र राधाम्॥ ३७ ॥

द्रौपदी—णमो दे दोणस्स सकलकोरवपाण्डवाण गुरुस्समुक्खस्स । [नमस्ते द्रोणाय सकलकौरवपाण्डवाना गुरूणा मुख्याय ।]

(सर्वे परिक्रामितकेन)

हे सुभ्रु ! ये सदाशिव के प्रशिष्य समस्त धनुर्धारियो मे श्रेष्ठ, कर्णपर्यन्त श्वेत बाल वाले द्रोणाचार्य है, इन्हे प्रणाम करो ॥ ३६ ॥

द्रौपदी— जो कौरव-पाण्डवो के धनुर्वेद-विद्या के गुरु है ।

(बन्दी अपने बाहुस्तम्भ के देखने के गर्व से नष्ट विवेक वाले राजाओ को देखता है ।)

द्रोण— मै भार्गव परशुराम का शिष्य हूँ और कौरव-पाण्डवो का धनुर्विद्या मे गुरु हूँ । मैं कहता हूँ कि हे राजाओ ! जयशरीर और धनुष को पृथ्वी पर रख दो । अर्जुन को छोडकर कौन राधा का वेध करेगा ? ॥ ३७ ॥

द्रौपदी—समस्त कौरव-पाण्डवो के गुरुओ मे प्रधान द्रोणाचार्य को नमस्कार है ।

(सभी लोग घूमकर)

बन्दी—

दूरोदञ्चिमरीचिरत्नरचनाचित्र तनुत्र तनो-
रुत्कृष्य त्रिदशेश्वराय ददतो यस्य स्मित चक्षुषा।
पाञ्चाली वदनेन्दुसुन्दरतया तेनैव पर्यश्रुणा-
सोऽय पश्यति दुर्धर धनुरिद राधा च राधासुत ॥ ३८ ॥

(विचिन्त्य स्वगतम्) अहो । महाप्रभाव भार्गव धनुर्यदमुना मम चक्षुर्ज्ञानमुन्मीलित येनात्र प्रभाव भाव च भूपतीना प्रत्यक्षमिव पश्यामि ।

सखी—सहि । दाणकित्तिसतापिदसुअणकणो एसो । [सखि । दानकीर्तिसमर्पितसुवर्ण कर्ण एष ।]

द्रौपदी—जोदुज्जोहणपसादलद्धचम्पावदित्तणो । [यो दुर्योधनप्रसादलब्धचम्पापतित्व ।]

बन्दी—(स्वगतम्) अहो । महात्मनामपि कैतवानुगृहीता वृत्तय ।

देदीप्यमान किरणो वाले रत्नो की सजावट से युक्त जिस कवच को इन्द्र के लिये प्रदान करते समय कर्ण के नेत्र स्मित से परिपूर्ण थे, वही कर्ण इस समय द्रौपदी के मुखचन्द्र की सुन्दरता के कारण अश्रुपूरित नेत्रो से इस दुर्धर्ष धनुष एव उस लक्ष्य-विशेष की ओर दु ख से देख रहा है ।

(थोडी देर विचार करता हुआ अपने मन मे) अहा ! यह भार्गव का धनुष महा प्रभावशाली है, जिससे मेरे नेत्र और ज्ञान दोनो खुल गये है, क्योकि इस धनुष के प्रभाव से मै राजाओ का प्रभाव प्रत्यक्ष देख रहा हूँ और उनके भावो का भी प्रत्यक्ष की तरह जान रहा हूँ ।

सखी—सखि । दान कीर्त्ति की प्राप्ति के लिये याचको को सुवर्ण समर्पित करने वाला यह महादानी कर्ण है ।

द्रौपदी— जो दुर्योधन की प्रसन्नता के कारण चम्पानगरी का राजा है ।

बन्दी— अपने मन मे अहो ! बड़े लोगो के चरित्र भी कपट से भरे होते है, क्योकि यह कर्ण कहता है कि—

यदेष —

दुर्नम त्विह न भार्गव धनु, सशये न च सता प्रवृत्तय ।
अङ्गराज इति चिन्तयन्निव भ्राजते, व्रज पुर कुरुद्वहम्॥ ३९ ॥

(सर्वे परिक्रामितकेन)

(स एव प्रकाशम्)

यौवराज्याभिषेकार्हो वीरदुर्योधनानुज ।
दु शासनो महावेष एष मञ्च विमुञ्चति ॥ ४० ॥

द्रौपदी—जो दूसल पहुठीण एक्कोणसदस्स जेट्ठो दुज्जोहणणरेन्दस्स। [यो दु शलप्रभृतीनाम् एकोनशतस्य ज्येष्ठो दुर्योधननरेन्द्रस्य ।]

धृष्टद्युम्न—(स्वगतम्)

यथार्थनामा दु शासन एवायम् ।

यह महावीर कर्ण—भार्गव धनुष को चढाना कोई कठिन कार्य तो नही, पर बडे लोग सशय युक्त कार्यो मे प्रवृत्त भी नही होते—मानो ऐसा सोचता हुआ वह अपने स्थान पर ही स्थित रह गया है ॥ ३९ ॥

अत आगे बढो, जहाँ कुरुवशी लोग है ।

(सभी घूमने लगते है)

(वही बन्दी प्रकटरूप मे)

युवराज पद पर अभिषेक करने योग्य वीर दुर्योधन का यह भाई दु शासन, जो सुन्दर वेश से अलङ्कृत है, अब लक्ष्य वेधने के लिये अपने मञ्च से उतर रहा है ॥ ४० ॥

द्रौपदी—वही दुःशासन, जो दुर्योधन के दु शल आदि ९९ भाइयो मे सब से ज्येष्ठ है—

धृष्टद्युम्न—(मन ही मन) यह अपने दु शासन नाम को सार्थक कर रहा है—

चाप प्रति त्रिचतुराणि पदानि दत्त्वा कृष्णाहठग्रहनिमित्तविषण्णचेता ।
दु शासनो नृपतिचक्रविमुक्ततारहुङ्कारलज्जितमना शनकै प्रयाति ॥ ४१ ॥

द्रौपदी—अदिमेत्तचण्डचरिदो एसो । [अतिमत्तचण्डचरित्र एष ।]

बन्दी—(निरुप्य) नमो नमो विष्णुकोदण्डाय सपाणिबन्धम् । (स्वगतम्)

द्रौपदी परिणयन्तमर्जुन विद्धराधमवलोक्य मायया ।
दोर्बल विफलमात्मनो विदन् व्रीडयैष विनतो निवर्तते ॥ ४२ ॥

(परिक्रामितकेन)

गान्धाराधिपते पुत्र सुबलस्य महीयस ।
मातुल कुरुराजस्य राजते नृपतिर्गुणै ॥ ४३ ॥

द्रौपदी—जो जूदकेदवविअक्खणो सुणीअदि । [यो द्यूतकैतवविचक्षण श्रूयते ।]

धनुष को चढाने के लिये तीन-चार कदम जाकर, तदनन्तर द्रौपदी को हठात् ग्रहण करने के निमित्त कुछ दु खी होता हुआ यह दु शासन राजाओ के उच्च हुङ्कार से लजाता हुआ धीरे-धीरे अपने मञ्च की ओर लौट रहा है ॥ ४१ ॥

द्रौपदी— इसका चरित्र अत्यन्त उच्छृङ्खल तथा बर्बरता से पूर्ण है ।

बन्दी— विष्णु भगवान् के इन महाधनुष को हाथ जोड कर बारबार नमस्कार करता हूँ (फिर अपने मन में)

(धनुष की) माया से लक्ष्य को भेदन कर द्रौपदी के साथ विवाह करते हुये अर्जुन को देखता हुआ एव अपने बाहुबल को वृथा समझता हुआ यह दु शासन अपना अहङ्कार छोडकर लज्जा से मञ्च की ओर लौटा रहा है ॥ ४२ ॥

(फिर घूमते हुये)

गान्धाराधिपति महामहिमा से युक्त महाराज सुबल का पुत्र, जो दुर्योधन का मामा लगता है, वह राजा शकुनि राजोचित गुणो से युक्त होकर मञ्च पर विराजमान है ॥ ४३ ॥

द्रौपदी— वे ही शकुनि, जो कपटद्यूत खेलने मे महाप्रवीण सुने जाते है ?

सखी—आम् । एदस्स किल हिअअचिन्निदा पासआ णिवडन्ति । भीमसेणस्स उण हक्किदा । [आम् । एतस्य किल हृदयचिन्तिता पाशका निवर्तन्ते । भीमसेनस्य पुन हस्तकृता ।]

बन्दी—

यात्रावतोऽस्य चतुरङ्गचमूसमुत्थे पासूत्करे वियति सर्पति वीतरन्ध्रे ।
दिङ्नागनागपतिकेशवकच्छपाना मूर्ध्नि क्षणाद्भवति भूवलयस्य भार ॥

(स्वगतम्)

धारित द्रुपदजास्वयवरे कार्मुक शकुनिना करेण यत् ।
तस्य सर्वजनहासहेतवे कन्धरा समधिरुह्य तत्स्थितम् ॥ ४५ ॥

(पुनरवलोक्य विहस्य च) कथम्, विमुक्तराधावेधाभिमानस्य स्वयवरविदुत्तीर्ण स्कन्धाद्धनु ।

(सर्वे परिक्रामितकेन)

सखी— हाँ, वही शकुनि, जो अपने मन मे सकल्प से जुए के दाव को पलट सकते है, जब कि भीमसेन उसे अपने हाथ मे लेकर पलटते है—

बन्दी— दिग्विजय के लिये यात्रा करने वाले इस शकुनि के चतुरङ्गिणी सेना के द्वारा जो धूलि उठती है, उससे आकाश आच्छादित हो जाता है तथा पृथ्वी-मण्डल का भार दिग्गज, शेष, वराह एव कूर्म के शिर पर थोडी देर के लिये हो जाता है ॥ ४४ ॥

(फिर अपने मन में)

द्रौपदी के स्वयवर मे जिस धनुष को शकुनि ने उठाया, वही धनुष सभी लोगो मे उपहास कराने के लिये ग्रीवा तक जाकर रुक गया (उसे ऊपर ले जाना शकुनि के लिये कठिन हो गया) ॥ ४५ ॥

(फिर देखकर हँसता हुआ) अरे ! स्वयवर के रहस्य को जानने वाला यह धनुष तो अब 'शकुनि के लक्ष्यवेध का अभिमान दूर हो चुका है' ऐसा समझ कर मानो स्वय ही उसके कन्धे के नीचे आ गया ।

(फिर सभी घूमते हैं)

बन्दी—

सिन्धुयन्त्रितयात्रोऽय सिन्धुराजो जयद्रथ ।
सिन्धुपानोत्तमहय सिन्धुरप्रतिमो बली ॥ ४६ ॥

अस्यासकृद्दलितदाडिमबीजलौल्या-
न्मुक्ताफलेषु करिणा रुधिरारुणेषु।
व्योम्न शुकान्निपततस्तरसा निरीक्ष्य
नाकस्त्रियो बहु हसन्ति सहस्ततालम् ॥ ४७ ॥

द्रौपदी—जो दुज्जोहणवहिणीवदी । [यो दुर्योधनभगिनीपति ।]

वन्दी—कथम् । धनुरारोपण प्रत्ययमुदास्ते ।

दु शलागुणगणेन रञ्जितो लज्जितश्च कुरुराजसन्निधौ।
कौतुकागमनमात्मनो विदन् स्वासनाच्चलति नो जयद्रथ ॥ ४८ ॥

(सर्वे परिक्रामितकेन)

जिसकी यात्रा सिन्धु के वेग से रुक जाती है तथा सिन्धु मे जल पीने के कारण श्रेष्ठ घोडो वाला, हाथी के समान अत्यन्त बलशाली सिन्धु देश का राजा यह जयद्रथ है ॥ ४६

इस जयद्रथ के रुधिर के समान लाल वर्ण वाले हाथियो के गिरे हुये मोतियो को अनार के दाने समझ कर उस पर बारम्बार गिरते हुये शुको को देख कर देव-स्त्रियॉ ताली बजा-बजा कर बहुत हॅसती है ॥ ४७ ॥

द्रौपदी— जो जयद्रथ दुर्योधन का बहनोई है ।

बन्दी—अरे । यह क्यो धनुष के उठाने मे अपनी उदासीनता प्रकट कर रहा है ।

दु शला के गुण-गणो पर मुग्ध हुआ एव दुर्योधन के सन्निधान मे लज्जा का अनुभव करता हुआ यह जयद्रथ ‘मै तो इस स्वयवर मे कौतुक देखने के लिये आया हूँ (धनुष उठा कर लक्ष्य-भेद के लिये नही)’ ऐसा कहता हुआ अपने आसन से नही उठ रहा है ॥ ४८ ॥

(फिर सभी घूमते है)

बन्दी—

दुर्योधनो नृपकिरीटविटङ्करत्नरश्मिच्छटाच्छुरितपादयुगाङ्गुलीक ।
हेलाचलच्चमरनर्तितकर्णपूर शूर शरासनविदा प्रथमोऽयमास्ते ॥ ४९ ॥

अपि च—

पादो वाससि सान्द्रकुङ्कुमरसन्यासप्रसक्ताकृति-
र्जातो दिग्विजयेन यै प्रणयिता नीत प्रणामाञ्जले ।
ते प्रत्यग्रकपालपात्ररुचिभिस्तारास्थिहारार्थिभि
कङ्काल नवमीप्सुभि प्रमुदितै कापालिकैर्वीक्षिता ॥ ५० ॥

द्रौपदी—जो खण्डपरसुचूडामणिणो कुलालङ्करण। [य खण्डपरशुचूडामणे कुलालङ्करणम् ।]

सखी—आम सहि । सो ज्जेव्व एसो । [आम् सखि । स एव एष ।]

प्रणाम करते समय राजाओ के मुकुट मे जडे गये मनोहर रत्नो की छटा से जिसके दोनो चरणो की अङ्गुलियॉ सुशोभित हो रही है तथा चलते हुए चामरो के द्वारा जिसके कर्णयुगल के ताटङ्क हिलोरे ले रहे है, ऐसा यह महावीर धनुर्धारियो मे अग्रगण्य दुर्योधन दिखाई दे रहे है ॥ ४९ ॥

और भी

दिग्विजय के कारण प्रतिपक्षी राजाओ के वस्त्र मे जिसके कुङ्कुम-रस युक्त पैर के रखने से उसमे उस पैर की आकृति की छान पड गई है तथा जिनके पैरो ने प्रणाम करने के लिए अञ्जलि बॉधे हुये राजाओ पर अपनी कृपा प्रकट कर दी है, वे ही राजा नवीन कपाल का पात्र चाहने वाले एव ताराओ के समान स्वच्छ हड्डियो की माला पहनने की इच्छा वाले तथा नवीन कङ्काल चाहने वाले इन कापालिको के द्वारा अत्यन्त प्रेमपूर्वक देखे जा रहे है ॥ ५० ॥

द्रौपदी— जो चन्द्रकुल का कुलाभरण है ।

सखी— हॉ सखी, यह वही है ।

द्रौपदी—अत्थि एव्व । कि पुणो षमुद्दीविदजदुभवणत्तणेण विसासणदाणत्तणेण अ छलप्पहारी एसो । [अस्त्येवम् । कि पुन समुद्दीपितजतुर्भवनत्वेन विषासनदानत्वेन च छलप्रहारी एष ।]

बन्दी—किमाह महाराजदुर्योधन ।

निर्विशन्तु निजबाहुविक्रम शाङ्‌र्गनाम्नि धनुषीह पार्थिवा ।
साभिमानहृदयस्तु मादृश क पणेन परिणेतुमिच्छति ॥ ५१ ॥

(विचिन्त्य स्वगतम्) कथम् । अभिमानाङ्गीकरणेन परिहार एष ।

(परिक्रामितकेन) एष सभागवतो वासुदेवस्यापि वन्दनीयो बलभद्र ।

(प्रकाशम्)

कि किं कि चुचुचुम्बनैर्मुमुमुधावक्त्राम्बुजस्याग्रतो
दे दे देहि पिपिप्रिये सुसुसुरा पात्रेऽत्र रे रेवति ।
मा मा मा विविलम्बन कुकुकुरु प्रेम्णा हली याचते
यस्येत्थ मदघूर्णितस्य तरसा वाच स्खलन्त्याकुला ॥ ५२ ॥

द्रौपदी— हॉ, यह तो ठीक ही है किन्तु लाक्षागृह मे पाण्डवो को जलाने के कारण, भीमसेन को विष देने के कारण यह तो छल से प्रहार करने वाला है ।

बन्दी— तो महाराज दुर्योधन ने क्या कहा ? सुने—

भले ही राजा लोग इस शाड्‌र्ग धनुष पर अपना पराक्रम प्रकट करे, किन्तु मेरे जैसा साभिमान हृदय वाला कौन पुरुष शर्त्त पर रखी गई इस द्रौपदी से विवाह की इच्छा करेगा ॥ ५१ ॥

(विचार कर मन में) अभिमान की आड मे यह धनुष नही उठाना चाहता ।

(फिर घूम कर) ओह ! यह तो भगवान् वासुदेव की वन्दनीय बलभद्र है ।

(प्रकट मे)

चु चु चुम्बन व्यर्थ है, हे पि पि प्रिय रे रे रेवति ! मेरे सुख-कमल के आगे रखे गये इस पात्र मे सु सु सुरा दो दो दो, मा मा मा (मत) वि वि विलम्ब करो । इस प्रकार प्रेम से बलभद्र याचना करते है तथा मद्य मे उन्मत्त हुये जिस बलभद्र की वाणी इस प्रकार गद्-गद् होकर निकलती है ॥ ५२ ॥

अपि च—

नीलांशुकं नलिनदाम च यस्य भूषा,
यत्कीर्तिकारि मधुरं मधु, रेवती च।
लीलासु धृष्टधनुरत्र हली सहेलम्,
शारैः स एष खलु खेलति खेलगामी॥ ५३॥

द्रौपदी—जो किल एरावणवारणो विअ सदासदो सदा सच्छन्दो क्ष। [य किल ऐरावणवारण इव सदामदः सदा स्वच्छन्दश्च।]

बन्दी—किमाह कामपालः।

रेवतीं त्रिभुवनैकसुन्दरीं न प्रकोपयति रोहिणीसुत।
तेन नैष विदधाति कौतुकी दृग्विभागमपि कृष्णकार्मुके॥ ५४॥

पुनर्बन्दी—

नीलाम्बर एवं नीलकमलों की माला जिनके आभूषण हैं एवं मधुर पुष्परस युक्त मद्य तथा रेवती जिनके यश को प्रशस्त करते हैं तथा जो लीला में कभी-कभी धनुष चला लेते हैं, वे ही क्रीडाप्रेमी बलभद्र इस स्वयंभर-भूमि में जुआ खेल रहे हैं॥ ५३॥

द्रौपदी— जो ऐरावत हाथी की तरह सदा मद से मस्त एवं स्वच्छन्द है।

बन्दी— अरे! यह कामपाल क्या कह रहा है—

बलभद्रजी त्रिभुवन में एकमात्र परम सुन्दरी अपनी पत्नी रेवती को क्रुद्ध नहीं करना चाहते, इसलिये वे इस शार्ङ्ग धनुष को अपने नेत्र के कोन से भी नहीं देखना चाहते, वे तो स्वयंवर रूप क्रीडा के दर्शक मात्र हैं॥ ५४॥

बन्दी फिर से—

य पीयूषभुजा पुर. प्रहरता दम्भोलिपाणिं रणे
निर्जित्योर्जितशाङ्‍र्गनिर्गतशरश्रेणीभिरुद्दामभि ।
सत्यावाञ्छितमौलिबन्धरचनै पुष्पै· सदा सुन्दरा-
श्चक्रे नन्दनपारिजातकतरून् विश्वम्भरासाक्षिण ॥ ५५ ॥

वृषतुरगकरीन्द्रस्यन्दनाद्याकृतीना
किमपरमसुराणा मन्थिता सोऽयमास्ते।
कृतसुरपतितोष षोडशस्त्रीसहस्र-
प्रणिहितपरिरम्भस्यास्पद पद्मनाभ ॥ ५६ ॥

जस्स किल कलअण्ठी मञ्जुजम्पिनी रुकिणी पढमकलत्र जस्स कञ्चणमाला सत्यभामा प्रमदावण हिअअस्स । [यस्य किल कलकण्ठी मञ्जुजल्पिनी रुक्मिणी प्रथमकलत्र, यस्य काञ्चनमाला सत्यभामा प्रमदाऽवन हृदयस्य ।]

बन्दी—किमाह देवो वासुदेव ।

जिन श्रीकृष्ण ने युद्ध में प्रहार करने वाले देवताओ के आगे ही वज्रपाणि इन्द्र को हरा कर अत्युत्कट शाङ्‍र्ग धनुष से निकले हुये अपने बाणो से सत्यभामा द्वारा अभिलषित वेणी मे गूँथने योग्य पुष्पो से सदा मनोहर लगने वाले नन्दन वन के पारिजात वृक्षो को लाकर पृथ्वी मे आरोपित किया ॥ ५५ ॥

वृषभासुर, केशी, कुवलयापीड एव शकट आदि रूप धारण करने वाले असुरो के वधकर्त्ता, इन्द्र को अपने पराक्रम से सतुष्ट करने वाले एव १६ हजार स्त्रियो के आलिङ्गन के पात्र यह वही भगवान् श्रीकृष्ण सामने है ॥ ५६ ॥

जिसकी सुन्दर कण्ठ वाली एव मञ्जुभाषिणी रुक्मिणी पहली पट्टरानी है तथा सोने की माला वाली सत्यभामा उनके हृदय की विश्रामस्थली है ।

बन्दी—तब भगवान् वासुदेव ने क्या कहा ?—

यस्मिन् मदस्य मदनस्य च भूर्ममार्यो
यस्मिन्नमी च यदुवशभुव कुमारा ।
नन्वत्र सोऽहममुना कमलावतार
स्त्रीचक्रकेलिचतुरश्चरितेन लज्जे ॥ ५७ ॥

(परिक्रामितकेन बन्दी)

वल्गाच्चाणूरचूर्णीकरणसहभुव पूतनाफूत्कृतीनाम्
कर्तार कसवशप्रशमपरशव केशिन क्लेशकारा ।
यस्यासन् मानदर्पप्रबलकुबलयापीडपीडाप्रगल्भा
क्रीडाडिम्भस्य लीलोद्धृतधरणिधरा केलय कालियारे ॥ ५८ ॥

तस्यैष शम्बरमहासुरसुन्दरीणाम्
सिन्दूरमण्डनहरेण पराक्रमेण ।
शश्वत्प्रकामकमनीयजनोपमानम्
प्रत्यक्षपञ्चविशिखस्तनय पुरस्तात् ॥ ५९ ॥

जिन स्त्री-रत्नो के व्यसन मे पड कर मेरे जेठे भाई श्रीबलभद्र मद्य एव काम के विषय से अभिभूत हो गये है तथा जिसके व्यसन मे सभी यदुवशी कुमार भी मद्य एव काम के व्यसनी हो गये हैं, मै उन स्त्रियो के फेरे मे क्यो पडूँ ? मै तो समस्त लक्ष्मी (शोभा) का अवतार हूँ और स्त्री-समूह से क्रीडा करने मे निपुण भी हूँ, अत मै स्वयवर मे किसी से विवाह करने मे लज्जा का अनुभव करता हूँ ॥ ५७ ॥

जिस कालिय नाग के शत्रु श्रीकृष्ण की बाल-लीलाएँ पैतरा करने वाले चाणूर को चूर्ण कर देने की साक्षी है, जो पूतना को कण्ठावरोधपूर्वक रुलाने वाले है, केशी नामक दैत्य को क्लेश देने वाली है, इसी प्रकार मान और दर्प से प्रबल हुये कुबलयापीड को पीडा करने मे प्रगल्भ है और गोवर्धन को ऊपर उठाने वाली है ॥ ५८ ॥

शम्बरासुर की नारियो के सौभाग्य को उच्छेद करने वाले अपने पराक्रम से निरन्तर प्रकृष्टाभिराम जनो के उपमान साक्षात् कामदेव ही श्रीकृष्ण के प्रद्युम्न नामक पुत्र रूप मे जन्म लेकर ये आगे दिखाई दे रहे है ॥ ५९ ॥

द्रौपदी—जो किल जाअवकुमाराण मज्झे णिरुवमरूवरेहाजअपडाअ अविलम्ब अवलम्बेदि। [य किल यादवकुमाराणा मध्ये निरुपमरूपरेखाजयपताकामविलम्बमवलम्बते।]

बन्दी—आर्य धृष्टद्युम्न।

उद्यत क्रतुकृशानुजन्मन कर्तुमेष धनुषोऽधिरोपणम्।
शाङ्गिर्णा भगवता ससम्भ्रमं भ्रूविटङ्कघटनेन वार्यते॥ ६०॥

(परिक्रामितकेन)

धनुर्विद्यारहस्येषु शिष्योऽय सव्यसाचिन।
प्रद्युम्नस्य सहाध्यायी सात्यकि सत्यसङ्गर॥ ६१॥

अपि च—

य सत्यस्य निधि श्रियां च सरणि साम्ना च धाम्ना च यो
यो दाता च दयालुरेव च पद कीर्तेश्च नीतेश्च य।
तस्यैतस्य स एष दूषणकण कारुण्यपुण्यात्मन
पात्रापात्रविवेचन न यदभूत्सर्वस्वदानेष्वपि॥ ६२॥

द्रौपदी— जो यादव-कुमारो के मध्य मे निरुपम रूप रेखा के विजयपताका के रूप मे शीघ्रता से स्थित हुये दिखाई दे रहे है।

बन्दी—आर्य धृष्टद्युम्न।

द्रौपदी की प्राप्ति की इच्छा से यह प्रद्युम्न धनुष को उठाने के लिये ज्यो ही उठे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण अपने भ्रुवो के सकेत से शीघ्र ही उनको मना कर रहे है॥ ६०॥

(फिर सभी घूमते है)

धनुर्विद्या के रहस्य मे अर्जुन का शिष्य, सत्यप्रतिज्ञ, प्रद्युम्न का सहपाठी यह सात्यकि विराज रहा है॥ ६१॥ और भी—

जो सात्यकि सत्य के भण्डार है, लक्ष्मी के खजाने है, शान्ति एव तेज के राजपद्धति है, जो दाता एव दयालु भी है तथा कीर्त्ति एव व्यवहार-मार्ग के स्थान है। करुणा एव पुण्य के मूर्त्तिमान् शरीर होने पर भी इन महात्मा मे एक यही दोष है कि सर्वस्व दान करते समय भी इनको पात्रापात्र का विवेक नही हुआ॥ ६२॥

द्रौपदी—जो जाअवकुमारो भविअ अणासादिदकादम्बरीरसो । ए एदस्स दोसो गुणो वा कीरदु । [यो यादवकुमारो भूत्वा अनासादितकादम्बरीरस स एतस्य दोष गुण वा कीर्तयतु ।]

बन्दी—

यागकुण्डशिखिगर्भसम्भव बन्द्यते न तु करेण बध्यते ।
इत्युदीर्य चतुरोक्ति-सात्यकि पूजया पारिहरत्यय धनु ॥ ६३ ॥

(परिक्रामितकेन)

शिशुपालो महीपालो मेकलाना कुलोद्वह. ।
अय स गजनिर्घोषो दमघोषसुत पर. ॥ ६४ ॥

पाणिप्रस्थैर्बकुलसुमन· सौरभं यो मिमीते
दम्पत्योर्य सुरतसमये सौख्यसख्या करोति ।
यश्च ज्योत्स्ना चुलुकपुटकै काममाचामतीन्दो
शक्त स्तोतु बत स निखिलान्यस्य कीर्त्यद्भुतानि ॥ ६५ ॥

द्रौपदी— जो यदुवश मे जन्म लेकर मद्य के रस का आस्वादन न किया हो, वही इनके दोष एव गुणो की गणना कर सकता है ।

यज्ञकुण्ड की अग्नि के गर्भ से उत्पन्न हुआ यह धनुष मेरे द्वारा वन्दनीय ही है, हाथ से तोडने योग्य नही है, सम्भाषण-पटु सात्यकि ऐसा कहता हुआ धनुष का परित्याग कर रहा है ॥ ६३ ॥

(फिर सभी घूम रहे है)

मेकलदेश के राजा, हाथी के समान गम्भीर शब्द करने वाले तथा कुल मे श्रेष्ठ दमघोष के पुत्र ये शिशुपाल दिखाई दे रहे है ॥ ६४ ॥

जो पुरुष पाणि के वाट से बकुल के पुष्पो की सुगन्धि का नाप-तोल कर सकता है, जो रतिकाल मे पति-पत्नि के समागम से उत्पन्न सुख की गणना कर सकता है तथा जो अपने चुल्लू से चन्द्रमा की चाँदनी को अच्छी तरह पी सकता है, वही इस शिशुपाल के सपूर्ण कीर्त्ति की विचित्रता को कह सकता है ॥ ६५ ॥

द्रौपदी—जो णिज्जिदसअलसुरासुरो। (यो निर्जितसकलसुरासुर ।)

बन्दी—

दक्षिण करमुपैति वामतो वाममञ्चति च दक्षिणादिति।
दूरतोऽस्य नृपतेर्गुणार्पणे धारणेऽपि धनुषो विडम्बना॥ ६६॥

(परिक्रामितकेन)

सत्यसन्धो जरासन्ध क्रान्तदिग्वलयो बलै ।
अत्रैष राजते राजा मागधो मागधै स्तुत ॥ ६७॥

अस्यासम समरकर्म दिदृक्षमाणै-
र्दोषद्वय फणिभिरापि चमूरजस्त ।
यत्कूणितेक्षणतया न कबन्धनृत्य
दृष्ट श्रुता न च महाभटसिंहनादा ॥ ६८॥

द्रौपदी— वही, जिसने देवता एव असुरो को जीत लिया है ?

इस राजा को धनुष पर डोरी चढाने की बात तो दूर रही, धनुष को धारण करते हुये भी इसे कोई देख नही सकता, केवल बाण छोडते समय इसका दाहिना हाथ बाई ओर तथा बायाँ हाथ दाहिनी ओर आता हुआ दिखलाई पडता है ॥ ६६ ॥

(सभी घूम रहे हैं)

अपनी सेनाओ के आक्रमण से दिग्विजय करने वाले सत्यप्रतिज्ञ, बन्दियो के द्वारा स्तुत, मगधदेशोत्पन्न ये जरासन्ध नाम के राजा है ॥ ६७ ॥

इस जरासध के रण-कौशल को देखने के लिये आये हुये सर्पो ने इसकी सेना से उठी हुई धूलि के द्वारा दो हानियाँ प्राप्त कर ली। प्रथम तो यह धूलि के भर जाने के कारण इनकी आँखे बन्द हो गई, जिससे कबन्ध का नृत्य नही देखा तथा दूसरा (ये चक्षु श्रवा होने से आँखो से सुनने के कारण उनके बन्द होने से) महाभटो के सिंहनाद को न सुन सके ॥ ६८ ॥

द्रौपदी—जो जणणीजणिददेहखण्डणो जराए रक्खसीए सन्धिदो त्ति जरासन्धो वुच्चदि। [यो जननीजनितदेहखण्डनो जरया राक्षस्या सन्धित इति जरासन्ध उच्यते।]

बन्दी—

अस्य वैष्णवमिद महाधनु स्वप्रभावविभवेन भूपते।
अम्बरे भुवि दिशा च सञ्चये दर्शयत्यतनुकार्मुकावली ॥ ६९ ॥

(परिक्रामितकेन) कथम्। एते राजानो युगदुपस्थिताश्चापमारोपयितु विडम्बिताश्च। तथा हि—

जात कीकसभङ्गत शकपतेर्दोर्दण्डयो खण्डनं,
निष्ठ्यूता रमठेश्वरेण वदनात् कीलालकल्लोलिनी।
जानुभ्या जगती गतश्च तरसा पाण्ड्य प्रचण्डोऽप्यय,
कोदण्डेन न खण्डिता क्षितिभुजो दामोदरीयेण के ॥ ७० ॥

(सविषादम्)

द्रौपदी— जो दो माता के द्वारा अलग-अलग दो टुकडो मे जन्म लेने पर जरा नाम की राक्षसी से उन दो टुकडो को जोड दिये जाने के कारण जरासध नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बन्दी—अरे! भगवान् विष्णु का यह धनुष तो अपने प्रभाव-शक्ति से इस राजा को पृथिवी मे, आकाश मे एव दशो दिशाओ मे बडे-बडे अनेक धनुषो की पक्ति के रूप मे दिखलाई पड रहा है ॥ ६९ ॥

(फिर घूम कर) अरे! ये सभी राजा लोग एक साथ मिलकर धनुष को चढाने के लिये एकत्रित हो उसे उठाने लगे, क्योकि—

हड्डी के टूट जाने से शकपति की भुजाएँ टूट गई, रमठ देश के स्वामी तो अपने मुख से रक्त की धारा ही वमन कर रहे है ओर यह पाण्ड्य देश का स्वामी अत्यन्त बलवान होते हुये भी दोनो घुटनो के बल पृथ्वी पर जा गिरा, इस प्रकार इस वैष्णव महाधनुष के द्वारा ऐसा कौन राजा है, जो खण्डित न हुआ हो? ॥ ७० ॥

(अत्यन्त खेद के साथ)

धिङ्मन्त्र शकुने कुलक्षयकर दुर्योधन धिङ्नृप
धिग् भीष्म च पितामह गुरुमपि द्रोणं सपुत्रं च धिक् ।
यद्दग्धा जतुधाम्नि पाण्डुतनया जीवेत्स चेदर्जुनो
राधायन्त्रमविद्धमत्र न भवेत् कन्या न च द्रौपदी ॥ ७१ ॥

धृष्टद्युम्न —

वैकुण्ठकार्मुकहठाहरणैककण्ठे दोर्दण्डमण्डलविखण्डितराजचक्रे ।
द्राग् द्रौपदी नमितकण्ठविलोठिहारवश्लिष्टयष्टिगणनां गुणिना करोति ॥ ७२ ॥

सखी—कि पुण एसो भरिदभुवणकोलाहलकलअल । [कि पुनरेष भरितभुवनकोलाहल कलकल ।]

बन्दी—(अवलोक्य सहर्षम्)

धृष्टद्युम्ने विषण्णे हसति मुरजिति द्रौपदीचित्तनिघ्ने
कोदण्डप्रौढिगाढग्लपितगुरुबले चात्र राज्ञा समाजे ।

शकुनि की मन्त्रणा को धिक्कार है, कुलनाशक राजा दुर्योधन को धिक्कार है, पितामह भीष्म एव अश्वत्थामा युक्त गुरु द्रोणाचार्य को भी धिक्कार है, जिनके कारण पाण्डुपुत्र लाक्षा-भवन मे जला दिये गये, यदि आज अर्जुन रहता तो यह लक्ष्य अविद्ध न रहता और न तो द्रौपदी कन्या के रूप मे दिखलाई पडती ॥ ७१ ॥

विष्णु के धनुष की प्रत्यञ्चा चढाने की उत्कण्ठा रखने वाले समस्त राजाओ के बाहुदण्ड के मण्डल के खण्डित हो जाने से इस राजसमूह युक्त समाज मे द्रौपदी प्रणाम के लिये झुके हुये कण्ठ पर लोटने वाले हार के दानो से गुणियो की गणना करना चाहती है, उसे जयमाला पहनाना चाहती है—

सखी— अरे ! कोलाहल भरे इस भुवन मे यह हल्ला-गुल्ला क्यो हो रहा है ?

बन्दी—(आगे देख कर प्रसन्नता के साथ)

राजसमाज मे धृष्टद्युम्न के दु खी होने पर, श्रीकृष्ण के हँसने पर, द्रौपदी के चित्त के अधीर होने पर, धनुष की कठोरता से बडे-बडे लोगो के अभिमान चूर्ण हो जाने पर ईषत् कम्पमान कृष्णाजिन वाले, हाथ मे कमण्डलु धारण करने वाले, वल्कलधारी ब्राह्मणो के अन्तराल से धनुष की ओर देखता हुआ कोई तरुण दिखलाई पड रहा है ॥ ७३ ॥

प्रेङ्खत्कृष्णाजिनाना करकटकजुषा वल्कलव्याकुलानां
विप्राणा कोऽपि मध्यादवतरति युवा कार्मुके दत्तदृष्टि ॥ ७३ ॥

अपि च—

व्रीडानतेषु वदनेषु च भूपतीना
सञ्चारयन् विकचपङ्कजचारुचक्षु ।
अभ्येति मत्तगजखेलगति स एष
साभ्यर्थन मुनिजनेन निषिध्यमान ॥ ७४ ॥

अर्जुन—(कतिचित्पदानि गत्वा चतुर्दिशमवलोक्य)

एतत्कृष्णस्य शाङ्‌र्ग ननु धनुरतनु प्राणदोर्दण्डचण्डै-
र्दूराद्भूपप्रकाण्डै सपदि परिहृत शिञ्जिनीसयतेषु ।
मध्ये राजा प्रतिज्ञा मम पुनरियती मे भुजायन्त्रयोगे,
प्रत्येक पर्वमुद्रा त्रुटनि तडिति वा जायते कार्मुक वा ॥ ७५ ॥

(सरभस परिक्रम्य धनुरारोपण नाटयन्)

और भी—

लज्जा के कारण झुके हुये राजाओ के ऊपर अपनी खिले हुये कमल के समान दृष्टि डालता हुआ मुनिगणो के द्वारा सविनय बारम्बार मना करने पर भी मस्त गजराज के समान चलता हुआ यह तरुण इस धनुष की ओर आ रहा है ॥ ७४ ॥

अर्जुन—(कुछ दूर जाकर चारो दिशाओ की ओर देखते हुये)

जिसके मौवी पर बाण रखा गया है ऐसा यह विशाल श्रीकृष्ण का शाङ्‌र्ग धनुष बलशाली भुजा वाले श्रेष्ठ राजाओ ने शीघ्र ही दूर से त्याग दिया किन्तु मै इस राजसमाज मे प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरे भुजायन्त्र मे पड जाने पर इसकी गॉठ-गॉठ टूट जायगी अथवा यह धनुष विद्युन्मण्डल मे समा जायगा ॥ ७५ ॥

(बलाद् घूमता हुआ धनुष आरोपण का नाटक करता है)

मद्बाहुयन्त्रयुगयन्त्रितमाततज्य
न स्याद्धनु कथमिद हि रथाङ्गपाणे ।
तुन्नाटनिर्यदि न याति च भूमिपृष्ठ-
माशेषमा च कमठाधिपमभ्युपेयात् ॥ ७६ ॥

भीम—वत्स नकुल ! भिदुरा भूमिरिति मा कदाचन कदर्थितकोदण्डरत्नकोटि स्यात् किरीटी । तत्तस्याधस्ताद्धस्त दाढर्याय निदधे ।

(इति तथा करोति)

नकुल—

धत्से जर्जरता न मेदिनि ! मुधा मा शेष ! शङ्का कृथा-
स्तुभ्य कूर्मपते नमस्त्यज भिय दिक्कुञ्जरा स्वस्ति व ।
यज्जिष्णुर्भुजयोर्बलेन नयति ज्या हेलयैवाटनी
धत्ते पाणितल तलेऽस्य धनुषो वाम हिडिम्बापति ॥ ७७ ॥

(अर्जुन आरोपयति)

श्रीकृष्ण के इस धनुष की प्रत्यञ्चा मेरे बाहुरूपी यन्त्र मे यन्त्रित होकर क्यो नही चढेगी ? यदि दोनो किनारो के टूट जाने पर यह धनुष पृथ्वी पर न रुका तो शेष या कच्छप पर्यन्त जाकर अवश्य रुकेगा ॥ ७६ ॥

भीम— वत्स नकुल ! पृथ्वी फट रही है ऐसा समझकर कही अर्जुन इस धनुष को तोडने मे कार्पण्य का अनुभव न करे, इसलिए उसकी दृढता के लिये मै अपना हाथ इस धनुष के नीचे लगा दे रहा हूँ ।

(ऐसा कहता हुआ वैसे ही करता है ।)

नकुल—हे पृथ्वि ! अपनी जीर्णता छोडो, हे शेषराज ! व्यर्थ का सदेह मत करो, हे कूर्मराज ! आपको नमस्कार है । आप अपना भय दूर करे, क्योकि अर्जुन अपने बाहुबल के पराक्रम से इस वैष्णव धनुष की प्रत्यञ्चा चढा रहे है, अत भीमसेन अपना बॉया हाथ इस धनुष के नीचे लगा रहे है, अब आप लोगो को कोई भय नही होना चाहिए ॥ ७७ ॥

(अर्जुन धनुष चढा रहे हैं)

सखी-भअवदि । मिधुणसघट्टणेक्कदेवदे कुण्डिदे णीसेसणरेन्द्रचक्के एक्कमेक्कविप्पवीरसमुज्जमसेस वट्टदि सअवरविडम्बण । (अर्जुन वाण मोक्ष नाटयति) [भगवति । मिथुनसद्घटनैकदेवते । कुण्ठिते नि शेषनरेन्द्रचक्रे एकमेकविप्रवीरसमुद्यमशेष वर्तते स्वयवरविडम्बनम् ।]

आकर्णाञ्चितचापमण्डलमुचा बाणेन यन्त्रोदर-
च्छिद्रोत्सङ्गविनिर्गतेन तरसा विद्धा च राधाऽमुना ।

(द्रौपदीमवलोक्य)

तुल्य शोषण-मोहन-प्रभृतय प्रक्षेपकुण्ठक्रमा
कामेन द्रुपदात्मजाहृदि हठान्यस्ता स्वय चेषव ॥ ७८ ॥

सखी—अच्छरीअ अच्छरीअ । असलिलकुवलअकुसुम विअ कुसुमकोदण्डतिग्गक्खेवणमोहणोदअ इन्दआल । से दिट्ठी विप्पवीरवदणे णिवडन्तीण विरमदि । [आश्चर्यमाश्चर्यम असलिलकुवलयकुसुममिव कुसुमकोदण्डतिर्यक्क्षेपणमोहनोद्गतमिन्द्रजालम् । तस्या दृष्टिर्विप्रवीरवदने निपतन्ती न विरमति ।]

सखी—(अर्जुन बाण छोडने का अभिनय करते है) भगवति । विवाह की अधिष्ठात्रि देवि । अब इस स्वयवर मे समस्त राजसमूह कुण्ठित हो गया है, केवल इसी एक ब्राह्मण का समुद्यम शेष रह गया है ।

कर्ण-पर्यन्त धनुषमण्डल को खीचकर उससे बाण को छोडने वाले इस अर्जुन ने यन्त्र केभीतर के छिद्र के मध्य मे प्रविष्ट होने वाले अपने बाणो से राधा का भेदन कर दिया ।

(फिर सखी द्रौपदी की ओर देखकर)

इधर कामदेव ने भी द्रौपदी के चित्त मे पर्याय-क्रम के बिना ही एक-सा शोषण, मोहन आदि अपने बाणो को बलात् चुभा दिया ॥ ७८ ॥

सखी— आश्चर्य है । आश्चर्य है । बिना जल के ही खिले हुये कमल-पुष्प के सदृश कामदेव के द्वारा फेके गये मोहनादि बाणो से यह इन्द्रजाल उत्पन्न हो गया कि इस द्रौपदी की दृष्टि इस ब्राह्मण के मुख की ओर एकटक टकटकी लगाये दिखलाई पड रही है ।

अर्जुन —कथम् ? राधावेधानन्तरमियमस्मासु स्निह्यति । यत —

जैत्र तन्त्र कुसुमधनुष प्रेमसर्वस्वदूता
सत्यङ्कारा प्रणयविततेस्तुष्टये मुष्टियोगा ।
विन्यस्यन्त श्रवसि सुतनोर्मेचिकाम्भोजभूषा-
मुत्कण्ठन्ते मयि निपतितु नर्तिताक्षा कटाक्षा ॥ ७९ ॥

बन्दी—हा ! ह ! धिक् कष्टम् ।

ध्रुवमिदमुपदिष्ट कैश्चिदाचार्यपादै-
र्यदुत जनकशोकस्यैकहेतु कुमारी ।
अकलितकुलशीलोऽप्येष यत्कोऽपि धन्वी
द्रुपददुहितुरस्या वाञ्छति स्वामिभावम् ॥ ८० ॥

अर्जुन —हे हो बन्दिवृन्दारक ! किमत्र कुलान्वेषणेन, कि वा शीलपर्यालोचनया । धनुरारोपणमात्रपरिणेया द्रौपदी ।

(नेपथ्ये)

अर्जुन— यह राधा वेध के अनन्तर हमसे स्नेह करने लगी । क्योकि—

जो कटाक्ष कामदेव का विजयशील शासन है, प्रेम का सदेशवाहक दूत है एव प्रेम की अभिवृद्धि के लिये सत्य का शपथ है, अपने प्रिय को सतुष्ट करने के लिये महामाङ्गलिक योग है, ऐसे इस चञ्चलाक्षी द्रौपदी के कटाक्ष कानो पर नीलकमल का आभूषण पहना कर अब मेरे ऊपर गिरना ही चाहते है ॥ ७९ ॥

बन्दी—ओ धिक्कार है, धिक्कार है, महानद्य अनर्थ हो गया ।

किन्ही आचार्यचरणो ने यह ठीक ही उपदेश किया है कि पिता के दु ख का एक प्रधान कारण कन्या होती है, क्योकि (इस स्वयवर मे राधा को वेधकर) अज्ञात कुलशील वाला यह धनुर्धर द्रौपदी का स्वामी बनना चाहता है ॥ ८० ॥

अर्जुन— अरे बन्दियो मे श्रेष्ठ ! यहाँ कुल एव शील के अन्वेषण की क्या आवश्यकता है ? द्रौपदी से विवाह करने के लिये तो धनुष के चढाने मात्र की शर्त्त थी ।

(पर्दे की आड से)

हे हो महाब्राह्मणस्त्वामेव नृपतय समुदिता भाषन्ते—

सायकश्च त्वया मुक्तो यन्त्र वातेन चाहतम् ।
तन्मा वृथा विकत्थस्व न राधा विद्धवानसि ॥ ८१ ॥

(पुन साक्षेपम्)

रे रे ब्राह्मण । मुञ्च विप्लवमिम श्रुत्यर्थवीथी स्मर
क्षत्रस्याथ ननु स्वयवदविधावेकाधिकार स्थित ।
तच्चेन्नाद्रियसे स्मरार्द्रहृदयो दण्ड्यस्त्वमुर्वीभुजा,
तत्सङ्कर्षणकार्मुक समुदिता नैते क्षमन्ते नृपा ॥ ८२ ॥

(अर्जुन –तान् प्रति)

कस्य द्रोणो धनुषि न गुरु स्वस्ति देवव्रताय
त्यक्ताभ्यास कुलपतिरसौ श्रीसमुत्थैर्विलासै ।
रे कर्णाद्या शृणुत तदिमा ब्राह्मणस्यास्य वाणी
राधायन्त्र रचयत पुनर्विद्धमप्यस्त्वविद्धम् ॥ ८३ ॥

हे हो ब्राह्मण । सभी राजा लोग तुम्हे इस प्रकार कह रहे है—

तुमने बाण छोडा किन्तु उसी समय पवन के चलने से लक्ष्य टूटकर गिर गया, अत व्यर्थ का घमण्ड मत करो, तुमने राधा का भेदन नही किया है ॥ ८१ ॥

(फिर आक्षेप करते हुये)

हे हे ब्राह्मण । धर्म का अतिक्रमण छोड दो, वेदोक्त मार्ग का स्मरण करो, स्वयवर मे केवल एक क्षत्रिय मात्र के अधिकार की विधि है, यदि काम के वशीभूत होकर तुम इसका अनादर करोगे तो अवश्य ही इस राजसमाज मे दण्डनीय होगे, यहाँ एकत्रित राजा लोग तुम्हारे द्वारा चढाये गये धनुष के अपराध को क्षमा नही करेगे ॥ ८२ ॥

(अर्जुन उन राजाओ से)

धनुर्विद्या मे द्रोण किसके गुरु नही है ? भीष्म का कल्याण हो, कुलपति (द्रुपद) ने राजविलासो के कारण धनुष का अभ्यास छोड दिया है, अत हे कर्णादि राजाओ । तुम लोग पुन राधायन्त्र का निर्माण करो, यदि मैने इसका वेधन नही किया है तो फिर भी मै उसका भेदन कर सकता हूँ ॥ ८३ ॥

सखी—सहि इदो तरलिदतारहारअणेक्कसमुक्कमुत्त उच्चण्डचित्तचण्डिमाकण्णञ्चिदकोदण्डमण्डल आलिहिदभिण्डिवाल आहिदसघट्टपट्टिस सकुलकेसभूसणालङ्किदकङ्कणअ च समन्तदो समुत्थरिदि विन्द णरेन्दाण। [सखि। इतस्तरलितताररहारकानैकसम्मुक्तमुक्तम्, उच्चण्डचित्तचण्डिमाकर्णाञ्चितकोदण्डमण्डलम्, आलिखितभिन्दिपालम्, आहितसङ्घट्टपट्टिश, सकुलकेशभूषणालङ्कृतकङ्कणकञ्च समन्तत समुत्तिष्ठते वृन्द नरेन्द्राणाम् ।]

बन्दी—

सद्घट्टोत्पिष्टचूडाच्युतमणिकणिकाकर्बुरैर्बाहुदण्डै-
स्तूणोत्कर्णास्त्रदण्डा क्षितिपतय इमे सर्वत सरभन्ते।
अप्रेक्षित्वा विलोला द्रुपददुहितर विद्धराधाशरव्यम्
बाण कोदण्डदण्डे विदधदयमितो वर्तते विप्रवीर ॥ ८४ ॥

(नेपथ्ये)

सखी— सखि। इधर तारा के समान चमकते हुये उज्ज्वल हारो के टूट जाने से जिनकी अनेक मोतियॉ बिखर गई है, प्रचण्ड कोप के कारण जिन्होने कान तक धनुष खीच लिया है तथा जिन लोगो ने भिन्दिपालो को सजा लिया है और पट्टिश आदि शस्त्रो की सघटना कर ली है, एव जिनके केश, भूषण, अलङ्कार एव कङ्कणादि अस्त-व्यस्त हो गये है, ऐसे राजाओ का समूह इधर चारो ओर से आ रहा है।

बन्दी—परस्पर के सम्मर्द्दन से चूर्ण होकर मस्तको से गिरी हुई मणियो के कण के कर्बुर (चितकबरे) वर्ण वाले, बाहुओ द्वारा तरकस से बाणो को निकाल कर और उसे धनुष पर चढाकर एक ओर ये राजा-गण चारो ओर से युद्ध की तैयारी कर रहे है और दसूरी ओर चञ्चल हुई राजकुमारी द्रौपदी को बिना देखे ही राधा लक्ष्य को भेदन करने वाले बाण को धनुष पर चढाये हुये यह विप्रवीर अर्जुन आते हुए दिखलाई पड रहे है ॥ ८४ ॥

(नेपथ्य मे)

देवस्य द्युमणे कुले नृपतयो ये ये च चूडामणे
श्रीकण्ठस्य निवेदयामि तदिदं तेषा द्वयेषामपि।
विप्रश्चीवरवान् सहायरहित कोऽप्येष व पश्यतां
राधावेधकरो हठेन हरते कीर्त्या सम द्रौपदीम् ॥ ८५ ॥

भीम—वत्स धनञ्जय ! त्व कराकलितद्रौपदीक एव मामनुवर्तस्व । अह राजचक्रस्य पुरतो भवामि । (तथा भवति)

नकुल—आर्य ! इम तालतरुमायुधीकुरु ।

(भीमस्तथा करोति)

बन्दी—उत्पाटितमहातालक्लृप्तचण्डगदाधर ।
विप्रवीरो द्वितीयोऽपि पार्थिवाना पुर स्थित ॥ ८६ ॥

(राजलोकमवलोक्य)

सूर्यवश एव चन्द्रवश मे जो-जो राजा यहाँ उपस्थित है, उन दोनो वश के राजाओ से मै यह निवेदन करता हूँ कि राधालक्ष्य का भेदन करने वाला असहाय वल्कलधारी यह कोई ब्राह्मण आप लोगो के देखते-देखते आपकी कीर्त्ति के साथ ही द्रौपदी को लिये जा रहा है ॥ ८५ ॥

भीम— वत्स धनञ्जय ! तुम द्रौपदी का हाथ पकडे हुये मेरे पीछे-पीछे आओ, मै सभी राजाओ के समाने चलता हूँ । (ऐसा ही करता है)

नकुल— आर्य ! इस तालवृक्ष का आयुध बना लीजिये ।

(भीम वैसा ही करते है)

बन्दी— उखाडे गये महताल के वृक्ष से बनाई गई प्रचण्ड गदा को धारण करने वाला यह दूसरा भी ब्राह्मण राजवृन्द के सामने डट गया ॥ ८६ ॥

(राजसमूह की ओर देखता हुआ)

अर्जुन—

अयमहमिह विप्र प्रोतराधारहस्य-
स्त्रिभुवनजयमुद्रा द्रौपदी चेयमत्र।
कलयथ यदि दोष्णश्चापदण्डप्रचण्डा-
स्त्यजत रथगजस्थास्तत्पुरस्योपकण्ठम् ॥ ८७ ॥

(बन्दी विचिन्त्य)

वीर्य वचसि विप्राणा क्षत्रियाणा भुजद्वये।
इदमत्यन्तमाश्चर्य भुजवीर्या हि यद् द्विजा ॥ ८८ ॥

(अर्जुनस्तदेव पठति)

(नेपथ्ये) साधु ब्राह्मण ! साधु । क्षात्र मार्गमनुवर्तसे ।

भीम—यद्येवम्—

अर्जुन— राधारहस्य का भेदन करने वाला यह ब्राह्मण मै हूँ और त्रिभुवन की विजयपताका-स्वरूप यह द्रौपदी यही सामने है, अत हे राजाओ ! धनुष धारण करने से कर्कश बाहुओ का गर्व यदि आप मे हो तो शीघ्र ही इस नगर का सामीप्य छोड दो, मैदान मे चलो ॥ ८७ ॥

(बन्दी सोचकर)

ब्राह्मणो के वचन मे वीर्य होता है, क्षत्रियो की दोनो भुजाओ मे वीर्य होता है किन्तु यह अत्यन्त आश्चर्य है कि यह ब्राह्मण अपनी भुजाओ मे वीर्य धारण करता है ॥ ८८ ॥

(अर्जुन फिर वही पढ़ते है)

(नेपथ्य में) हे ब्राह्मण । ठीक है, ठीक है, जो तुम क्षत्रिय-धर्म का अनुसरण करते हो—

भीम— यदि यह बात है तो—

प्रसर्पतु रणाङ्गणे रुधिरकेलिकल्लोलिनी
भवन्तु फलिता इव द्विरदमुण्डपिण्डैर्दिश ।
नृमासकवलान्तरेष्वपि च साग्निलेखैर्मुखै,
कृतान्तजयमङ्गल विदधतु ध्वनिं फेरवा ॥ ८९ ॥

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

इति प्रचण्डपाण्डवापरनाम्नि बालभारते
नाटके प्रथमोऽङ्क ।

युद्ध-रक्त की सरिता प्रवाहित हो, हाथियो के मुण्डरूपी पिण्ड से दिशाएँ फलयुक्त हो एव सियार मनुष्य का मास खाते हुये बीच-बीच मे अग्निलेखा से युक्त अपने मुखो से काल का विजयमङ्गलगीत गावे ॥ ८९ ॥

(ऐसा कहकर सभी चले जाते हैं)

प्रथम अङ्क समाप्त ।

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(तत प्रविशति विदुर. सशारोपकरणश्च पुरुष)

विदुर.—

आ देवाद्दिव्यपङ्केरुहसदनजुषोऽस्मिन्महाराजवशे
विष्वक्सेनावताराद् विजयिनि जगतामत्र चित्रप्रसूते ।
हे विश्वे लोकपालास्त्वमपि वसुमति ! ब्रूहि वाच पवित्रा-
मिन्दोरन्यस्य दृष्टो यदि किल कलया स्यात्तताङ्क शशाङ्क ॥ १ ॥

तत्रैव गोत्रे सम्प्रति तु—

वाच्य यत्र दुरुक्तय कुचरित नानाविधा वाणिका,
लाभ सान्द्रतमो रस किमपर भावश्च मोहो महान् ।
शैलूषै कितवैरनेककपटश्रेणीमहानाटक,
द्यूत यत्किल तत्र कौरवपति प्रस्तावनाया स्थित ॥ २ ॥

(विदुर एव जुए का उपकरण लिये हुए पुरुष का प्रवेश)

विदुर— हे विश्वेदेवो ! हे लोकपालो ! एव हे भगवति पृथ्वि ! तुम भी सत्य-सत्य कहो ! ब्रह्मा से लेकर विचित्र सृष्टि करने वाले विष्वक्सेन के अवतार-पर्यन्त, जगद्विजयी इस महाराजवश मे उत्पन्न हुये चन्द्रमा के अतिरिक्त और किसी मे क्या तुमने कला मात्र भी कलङ्क देखा है ? ॥ १ ॥

इस समय उसी चन्द्रवश मे—

नटो एव धूर्तो द्वारा अनेक कपट की परम्परा से युक्त द्यूत का महानाटक हो रहा है, जिस द्यूतरूप महानाटक के सूत्रधार दुर्योधन है, जिसमे अश्लील वचन ही सवाद है, अनेक प्रकार का क्रूराचरण ही जिसमे सजावट एव नृत्य है, घोर तमोगुण रूप फल ही जिसमे रस है और क्या कहे ? महान् मोह ही उसमे भाव है ॥ २ ॥

पुरुष—अज्जधम्मावदार विदुर ! कि पुण एव्व भणीअदि जदो जूदमहत्तरा एव्व मन्तअन्ति । [आर्य धर्मावतार विदुर ! कि पुनरेव भण्यते यतो द्यूतमहत्तरा एव मन्त्रयन्ते ।]

रणन्तमणिणेउरा रणरणन्तहारच्छडा
कणन्तमणिकङ्कणा मुहरमेहलामालिआ ।
भवन्ति भवणङ्गणे घणघणाउले ते पर
पसण्णदिण सामिणो इह जिणन्ति जू एण जे ।। ३ ।।

[रणन्मणिनूपुरा रणरणद्हारच्छटा
क्वणन्मणिकङ्कणा मुखरमेखलामालिका ।
भवन्ति भवनाङ्गणे घनघनाकुले ते पर
प्रसन्नदिनस्वामिन इह जयन्ति द्यूतेन ये ।।]

विदुर—भद्र ! तिमिङ्गिलगिल-न्यायोऽय शृङ्गयति नापि जीवति ।

(विचिन्त्य)

पुरुष— महात्मा विदुर ! आप ऐसा क्यो कह रहे है, क्योकि द्यूत-विशारद लोग तो ऐसा कहते है—

जो लोग जूए मे दूसरो को जीत लेते हैं, वे सपत्तिशाली सुन्दर भवनो मे निवास करते है और उनके घर मे मणियो के नूपुरो का झकार होता है, हारो एव मणियो के कङ्कण उनके घर मे शब्दायमान होते रहते है तथा अनेक प्रकार के मेखलाओ की माला से उनका घर मुखरित होता रहता है और वे अच्छे दिनो के स्वामी हो जाते है ।। ३ ।।

विदुर—प्रिय ! यह तिमिङ्गलगिल-न्याय ही फैल रहा है, जो बहुत काल तक नही चलता—

श्रीनिर्वासनडिण्डिम क्वणरव सद्म स्थिर छद्मना,
सत्योत्सारणघोषणा तत इतो लज्जानिवापाञ्जलि ।
द्वार ह्यार्ययश पराभवपद गोष्ठी गरिष्ठापदा
द्यूत दुर्नयवारिधिर्निपतता कस्तत्र हस्तग्रह ॥ ४ ॥

पुरुष—अज्जधम्मावदार विदुर ! कि पुण एव्व सखेद मन्तीअदि । [आर्य धर्मावतार विदुर ! कि पुनरेव सखेद मन्त्रयते ।]

विदुर—भद्र चण्डातक ! शृणु यन्मन्त्र्यते । (पुनस्तदेव पठति ।)

पुरुष—अविण भोदु । सुसच्छचित्तो मित्तेसु, सिणिद्धो बधूसु, णिव्वाजरत्तो कलत्तेसु, विणअभगुरो गुरुसु, प्रसादणिच्चो भिक्खेसु जुहिट्ठिरो । ता कि ति एसो कोरवेन्दस्स विसेसपरिफद्धो । [अविघ्न भवतु । सुस्वच्छचित्तो मित्रेषु, स्निग्धो बन्धुषु, निर्व्याजरक्त कलत्रेषु, विनयभङ्गुरो गुरुषु, प्रसादनित्यो भिक्षुषु युधिष्ठिर । तत्किमित्येष कौरवेन्द्रस्य विशेषपरिस्पर्द्ध ।]

विदुर—किमुच्यते—

यह द्यूत ऊँचे शब्दो से महालक्ष्मी के निकालने की भेरी है एव कपट का निश्चित घर है, उधर सत्य को दूर करने की घोषणा है तो इधर लज्जा के लिए पिण्ड एव जल का तर्पण है, द्यूत श्रेष्ठ यश को पराभूत करने का द्वार है और भारी विपत्ति का सभास्थल है, अधिक क्या कहे ? गिरने वालो के लिए तो यह दुर्नीति का समुद्र है, जहॉ कोई अविलम्ब नही ॥ ४ ॥

पुरुष—आर्य ! धर्मावतार विदुर ! आप इस प्रकार निर्विण्ण होकर क्यो कह रहे है ?

विदुर—भद्र चण्डातक ! जिस कारण मै एसा कह रहा हूँ, उसे फिर सुनो । (पुन 'श्रीनिवासन' आदि पढते है ।

पुरुष—महाराज युधिष्ठिर को कोई विघ्न न हो, जो महाराज मित्रों मे प्रसन्नचित्त रहते है, बान्धवो मे प्रेम करते हैं, स्त्रियो मे कपटरहित अनुराग करते है, बडे लोगो मे श्रद्धा से झुके रहते है और याचको को देखकर प्रसन्न रहते है, फिर उन्ही महाराज युधिष्ठिर से दुर्योधन इतना क्यो जलते है ?

विदुर— और क्या कहे ?

युधिष्ठिरो धर्ममयो महाद्रुम स्कन्धोऽर्जुनो भीमसेनोऽस्य शाखा।
माद्रीसुतौ पुष्पफले समृद्धे मूल कृष्णो ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च॥ ५॥

कौरवपतिस्तु तस्य प्रत्युदाहरणम्। तथाहि—

दुर्योधनो मन्युमयो महाद्रुम स्कन्ध कर्ण शकुनिस्तस्य शाखा।
दु शासन पुष्पफले समृद्धे मूल राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी॥ ६॥

यदयमाहूय वारणावतात् प्रेमप्रणयाभ्या नाम शकुनिकर्णकुरुपतिप्रेरितेन धृतराष्ट्रेण युधिष्ठिरोऽभिहित । यदुत वत्स युधिष्ठिर । दुर्योधनाकारितेऽत्र सदसि भ्रातृद्यूत प्रवर्तयितव्यमिति ।

पुरुष—तदो तेण कि पडिवण्ण । [ततस्तेन कि प्रतिपन्नम् ।]

विदुर—यत्पाशसयतो वन्य करीव प्रतिपद्यते तथा चाभिहित तेन ।

राजसूयक्रतोर्यज्वा पाण्डुपुत्रो युधिष्ठिर ।
आहूतो न निवर्तेत द्यूतादपि रणादपि॥ ७॥

युधिष्ठिर धर्ममय महावृक्ष है, जिसके अर्जुन तना है, भीमसेन शाखा है, नकुल, सहदेव उत्तम पुष्प एव फल है, परमात्मा श्रीकृष्ण उसके मूल है तथा उनका भी मूल वेद है और उस वेद के भी मूल ब्राह्मण है ॥ ५ ॥

ओर दुर्योधन ठीक इससे उलटे है । जैसा कि—

दुर्योधन पापरूप महावृक्ष है, जिसका तना कर्ण है, शकुनि शाखा है, दु शासन बडे-बडे पुष्प एव फल है एव अदूरदर्शी धृतराष्ट्र राजा उसके मूल है ॥ ६ ॥

इस राजा धृतराष्ट्र से वारणावत से युधिष्ठिर को बुलाकर शकुनि, कर्ण एव दुर्योधन की प्रेरणा से अत्यन्त प्रेम एव प्रणय दिखलाते हुये उनसे ऐसा कहा— वत्स युधिष्ठिर । दुर्योधन के द्वारा विरचित इस सभाभवन मे भाइयो के जूए मे तु सम्मिलित हो जाओ ।

पुरुष— तब महाराज युधिष्ठिर ने कह दिया

विदुर— फिर तो धृतराष्ट्र की आज्ञा से महाराज युधिष्ठिर वन्य हाथी के समान पाश मे बँध गये और उनसे कहा कि —

राजसूय यज्ञ को करने वाला पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर ललकारने पर न द्यूत से पीछे हट सकता है और न रण से ही पीछे भाग सकता है ॥ ७ ॥

पुरुष—अज्जेव्व अह सअणिणा पउणीकदे अक्खे ससार सारिफलह च समप्पिअ सपेसिदोम्हि सहामज्झे। ताअज्जकेधेसु। कि पुण कारण दुज्जोहरणस्स दुज्जण-त्तणे। [अद्यैवाह शकुनिना प्रगुणीकृतेऽक्षे ससार शारिफलकञ्च समर्प्य सम्प्रे-षितोऽस्मि सभामध्ये। तदार्थ कथयतु। कि पुन कारण दुर्योधनस्य दुर्जनत्वे ?]

विदुर—श्रुतो मया कुयान्तरितेन शकुनिना सह मन्त्रयमाणो महाराजदुर्योधन।

तत्रोत्सर्पिणि राजसूयसमये राज्ञ पृथाजन्मनो
द्वीपेशैर्विनयान्वितैरुपचित चित्रैर्महाप्राभृतै।
प्रत्यक्षीकृतवान् यदस्मि विभव कोशाधिकारे स्थित-
स्तेनाद्यापि निरौषधो मनसि से दाहज्वरो जृम्भते॥ ८॥

अपि च—गान्धाराधिपते मातुल।

पुरुष— आज ही शकुनि ने मुझे तैयार किये हुए अक्ष एव ससार शारिफलक (कौडियों) को देकर सभा मे भेजा है तो आप ही बतावे कि दुर्योधन की इस प्रकार की धृष्टता का क्या कारण है ?

विदुर— मैने भीत के आड से शकुनि से मन्त्रणा करते हुए दुर्योधन द्वारा ऐसा सुना है कि—

कुन्ती-पुत्र महाराज युधिष्ठिर के द्वारा सपादित राजसूय महायज्ञ मे अनेक द्वीप-द्वीपान्तरो के स्वामियो द्वारा दिये गये विचित्र उपायनो से एकत्र जिस धनराशि को कोषाध्यक्ष पद पर नियुक्त रहकर मैने देखा, उससे उत्पन्न हुआ मात्सर्यरूप मेरा दाहज्वर जिसकी कोई ओषधि नही है, आज भी बढ़ ही रहा है॥ ८॥

और भी—गान्धाराधिपते मामा शकुनि।

मायामयेऽसमसभासलिले महाम्बु
त्यक्त्वान्यतो व्रजति मय्यनभिज्ञभावम्।
यत्कृष्णया विहसित सह फाल्गुनेन
तन्मे मन कुसुमभावमिद लुनाति॥ ९॥

(नेपथ्ये)

देवश्चन्द्रकुलप्रकाण्डतिलक षाड्गुण्यवाचस्पति-
र्वीरो निर्मलकीर्तिनिर्झरगिरिर्भूखण्डविद्याधर ।
सप्तद्वीपजयैकलम्भित-महाश्वेतातपत्रोन्नति
पाण्डु. पाण्डुयशस्करो विजयते पृथ्वी पृथानन्दन ॥ १० ॥

पुरुष—किण्णरकठो एसो जुहिट्ठिरबन्दी पढदि । [किन्नरकण्ठ एष युधिष्ठिरबन्दी पठति ।]

(पुनर्नेपथ्ये)

माया से बनाये गये सभा के ऊँचे-नीचे जल मे उसका रहस्य न समझ कर मै जल को स्थल समझ कर जब चल रहा था, उस समय अर्जुन के साथ बैठी हुई द्रोपदी ने जो उपहास किया था, वह उपहास मेरे मन की कोमलता को नष्ट कर रहा है ॥ ९ ॥

(पर्दे से)

चन्द्रकुल मे सर्वश्रेष्ठ, सधिविग्रहादि षड्गुणो के ज्ञान मे बृहस्पति के समान, योद्धा, निर्मल यशरूपी झरने के उद्गमभूत पर्वत, भूखण्ड मे विद्याधर के समान मनोहर एव त्रिभुवन के विजय से अकेले एकछत्र से समुन्नत पाण्डु के यश को बढाने वाले पृथा (कुन्ती) को आनन्द देने वाले साक्षात् पाण्डु की प्रतिमूर्ति देव युधिष्ठिर इस पृथ्वीमण्डल मे विजयी रहे ॥ १० ॥

पुरुष— किन्नरो के समान कण्ठ वाला यह किन्नरकण्ठ नामक युधिष्ठिर का बन्दी पढता है ।

(पुन नेपथ्य में)

नाले शौर्यमहोत्पलस्य विपुले सेतौ समिद्वारिधे
शश्वत्स्वर्गभुजङ्गचन्दनतरौ क्रीडोपधाने श्रिय ।
आलाने जयकुञ्जरस्य सुदृशा कन्दर्पदर्पे चिर
श्रीदुर्योधनदोष्णि विक्रमधने लीन जगन्नन्दति ॥ ११ ॥

पुरुष—एसो दुज्जोहणमाअधो कलकण्ठो नाम । [एष दुर्योधनमागध कलकण्ठो नाम ।]

विदुर.—सम्प्राप्तावेतौ युधिष्ठिरदुर्योधनौ सभाम् । एते च भीष्मद्रोणकृपहार्दिक्य-कर्णसोमदत्ताश्वत्थामादय कौरवेश्वरभ्रातृशत च प्रविशन्ति । तदावामपि प्रविशाव ।

(इति निष्क्रान्तौ)

इति विष्कम्भक ।

(तत प्रविशति युधिष्ठिरो भीमसेनश्च दुर्योधन शकुनिश्च, तयोस्ताम्बूल-करङ्कधारिण्यौ सुनन्दा सुरेखा च) ।

शौर्यरूपी कमल की नाल, युद्ध रूपी समुद्र का सेतु, स्वर्गरूपी भुजङ्ग के निवास के लिए चन्दनत, लक्ष्मी के क्रीडा का आधारभूत उपधान तकिया, विजयरूपी हाथी का आलान, स्त्रियो के लिए कन्दर्पस्वरूप, अत्यन्त पराक्रमशील जिस दुर्योधन की भुजाओ के अधीन यह जगत् है, वह उनका अभिनन्दन करता है ॥ ११ ॥

पुरुष— यह दुर्योधन का स्तुति-पाठक कलकण्ठ नाम वाला है ।

विदुर—युधिष्ठिर एव दुर्योधन आ गये तथा भीष्म, द्रोण, कृप, हार्दिक्य, कर्ण, सोमदत्त, अश्वत्थामा आदि एव कौरवो के सौ भ्राता सभा मे प्रवेश करते है, तो चलो हम दोनो भी सभा मे चले ।

(ऐसा कहकर दोनो चलते है ।)

विष्कम्भक समाप्त ।

(इसके अनन्तर युधिष्ठिर, भीमसेन, दुर्योधन और शकुनि का प्रवेश, उनके साथ ही ताम्बूलकरङ्कवाहिनी सुनन्दा एव सुरेखा का प्रवेश)

युधिष्ठिर.—

विवर्तयाक्षाञ्छकुने। शारक्रीडा प्रवर्तय।
धृतराष्ट्रस्य पाण्डोश्च ममाज्ञा मौलिमृच्छति॥ १२॥
राजसूयक्रतोर्यज्वा पाण्डवोऽह युधिष्ठिर।
आहूतो न निवर्तेय द्यूतादपि रणादपि॥ १३॥

शकुनि—(स्वगत दक्षिण पाणिमुद्यम्य)

हहो हस्त कृतास्त्र। दानसलिलप्रक्षालित। स्वस्ति ते
लोकेष्वक्षविचक्षणश्च शकुनि स्वाङ्गेऽपि भक्तस्त्वयि।
वीरे माननिधौ पराक्रमधने यद्भागिनेये मम
श्री पार्थप्रथमादपास्य भवता कार्या हि दुर्योधने॥ १४॥

(प्रकाशम्) तदार्य। पण क्रियताम्।

युधिष्ठिर— हे शकुनि अक्ष को निकालो और पासा फेको, क्योकि धृतराष्ट्र एव पाण्डु की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है॥ १२॥

राजसूय-यज्ञ का कर्त्ता मै पाण्डव युधिष्ठिर ललकारने पर न तो जूए से भागूँगा ओर न तो युद्ध से ही पलायन करूँगा॥ १३॥

शकुनि—(अपने मन मे, दाहिना हाथ उठाकर)

हे दान के जल से प्रक्षालित, हे अस्त्र को धारण करने वाले, हे मेरे हाथ तुम्हारा कल्याण हो। द्यूत-विशारद शकुनि अपना अङ्ग होते हुए भी तुम्हारा सेवक है, अत तुमसे प्रार्थना है कि तु युधिष्ठिर से राज्यश्री को हटा कर वीर माननिधि, पराक्रमैकधन, मेरी भगिनी के पुत्र दुर्योधन मे स्थापित कर दो॥ १४॥

(प्रकट रूप से) तो आर्य युधिष्ठिर बाजी लगाइये।

युधिष्ठिर —

हारोऽय केरलस्त्री-विहसितशुचिभि पङ्क्तिभिर्मौक्तिकाना
शुभ्रेणैकाकृतीना कृतसकलसभागर्भचन्द्रोदयश्री ।
भ्रातृद्यूते पणो मे रजनिचरपतेरर्जितो राजसूये
यस्यैतन्मध्यरत्न तिरयति ककुभ कौङ्कुमीभि प्रभाभि ॥ १५ ॥

भीम —भवतस्तु क पण ?

दुर्योधन —

राजावलीक्रमायातो रत्नकोषपणो मम ।
शकुन्तलाद्याभरणैर्य पुनाति च पाति च ॥ १६ ॥

(अभो क्रीडत)

शकुनि —जित महाराजदुर्योधनेन । हहो युधिष्ठिर ! हारितो हार ।

(दुर्योधन सुरेखाया कण्ठे परिधत्ते)

युधिष्ठिर— केरल देश की स्त्रियो की हँसी के समान, स्वच्छ वर्ण वाले एक तरह के मोतियो के प्रकाश से सम्पूर्ण सभा मे चन्द्रोदय की शोभा को प्रदान करने वाला यह मेरा हार इस जूए मे दॉव पर है, जिसे राक्षसराज ने मुझे राजसूय-यज्ञ मे दिया था, जिसके मध्य का सुमेरु अपनी कुङ्कुम वर्ण की प्रभा से सम्पूर्ण दिशाओ के प्रकाश को तिरस्कृत कर देता है ॥ १५ ॥

भीम— तो दुर्योधन ! तुम्हारी क्या बाजी है ?

दुर्योधन— मेरे पूर्वज राजाओ की वश-परम्परा से प्राप्त समस्त रत्नो का कोष ही मेरा पण है, जो शकुन्तला आदि रानियो के आभूषण को पवित्र भी करता है और रक्षा भी करता है ॥ १६ ॥

(दोनो खेलते है)

शकुनि—महाराज दुर्योधन की जीत हुई और युधिष्ठिर हार को हार गये ।

(दुर्योधन सुरेखा के गले मे हार डाल देता है ।)

सुनन्दा—महाराज दुज्जोहण ! जुहिट्ठिरकण्ठणिवेसी सुसीसे पडिच्छणिज्जो दे हारो । ज पुण अह्मारिसजणजोग्ग करेसि ता ण रोहिणीवल्लहकुलोचिद अणुचिट्ठसि । [महाराज दुर्योधन ! युधिष्ठिरकण्ठनिवेशी सुशीर्षे प्रत्येषणीय ते हार यत्पुन अस्मादृशजनयोग्य करोषि तन्न रोहिणीवल्लभकुलोचितमनुतिष्ठसि ।]

भीम—साधु सुनन्दे ! साधु । उचितमभिहितम् ।

सुरेखा—अइ उड्डामरसीले ! जूदजिदे वि अहिजणत्तण । [अये उड्डामरशीले ! द्यूतजितेऽपि अभिजनत्वम् ।]

शकुनि—(स्वगतम्) प्रतिभावती सुरेखा ।

सुरेखा—(त प्रति) अपर पण क्रियताम् ।

युधिष्ठिर—सम्पादिता तातधृतराष्ट्रस्याज्ञा । तदास्ताम् ।

शकुनि—(विहस्य) दुर्योधने क्रीडति कथ धर्मात्मजो विरमति । नन्वधुनैव प्रतिज्ञातम् । आहूतो न निवर्तेय द्यूतादपि रणादपीति ।

सुनन्दा—महाराज दुर्योधन ! युधिष्ठिर के कण्ठ मे रहने वाले इस हार को तुम्हे अपने गले मे पहनना चाहिये था, इसे जो तुम हमलोगो जैसे के गले मे पहना रहे हो, यह चन्द्रवश के कुल जैसा व्यवहार नही है ।

भीमसेन—सुनन्दे ! वाह वाह ! तुमने ठीक कहा ।

सुरेखा— ऐ डाइन, क्या जूए मे जीती गई वस्तुओ मे कुलीनता रहती है ?

शकुनि—(मन मे) अहो ! सुरेखा बडी प्रतिभाशील है ।

सुरेखा—(युधिष्ठिर से) दूसरी बाजी लगाइये ।

युधिष्ठिर—मैने धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन कर दिया, बस अब नही ।

शकुनि—(हँसकर) जब दुर्योधन खेलने के लिए तैयार है तो युधिष्ठिर जूए से विरत कैसे हो सकते है, क्योकि उन्होने अभी-अभी प्रतिज्ञा की है कि ललकारने पर मै जूए से पीछे न हटूँगा और न युद्ध से पलायन करूँगा ।

युधिष्ठिर—(सुनन्दामवलोक्य सस्मरणम्)

कुर्वन्त्यो नयनैरपाङ्गतरलैर्दीर्घायुष मन्मथ
तन्वन्त्यो हृदि रागिणा रतिमहावल्लीविलास क्रमात्।
न्यस्यन्त्यो मदिरामदस्य च हठात् काञ्चिन्मनोहारिता-
मङ्गैर्मुग्धमधूकपाण्डुभिरिमा वाराङ्गना मे पण ॥ १७ ॥

भीम—भवतस्तु क पण ?

दुर्योधन—

सुधावीचिमुचा वाग्भिर्विभ्रमैर्वल्लिकुण्डल ।
ममापि वारनारीणा स्मरस्मेरो गण पण ॥ १८ ॥

(उभौ क्रीडत)

शकुनि—जित जित महाराजदुर्योधनेन।

दुर्योधन—सुरेखे ! त्वमेतासा सुनन्दाप्रभृतीनामधिष्ठात्री भव।

युधिष्ठिर— (सुनन्दा को देखकर कुछ स्मरण-सा करते हुये)

अपेन चञ्चल कटाक्षो से कामदेव की उज्जीवित करने वाली रागियो के हृदय मे सुरत के पुष्पो को धीरे-धीरे विकसित करने वाली तथा विकसित मधूक पुष्प केसमान शुभ अङ्गो से मदिराजन्य हर्ष की मनोहारिता को विवशता से हृदय मे टपकाती हुई ये वारागनाएँ मैने दॉव पर रख दी ॥ १७ ॥

भीमसेन—तो दुर्योधन तुम्हारा क्या दॉव है ?

दुर्योधन—अपने विलास से भरे हुये कुण्डलो को हिलाने वाली, एव अपने वचनो से अमृत का तरङ्ग उत्पन्न करने वाली इन वाराङ्गनाओ का स्मर-स्मेर समूह को मैने दॉव पर रख दिया ॥ १८ ॥

(दोनो खेलते है)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये, जीत गये।

दुर्योधन—सुरेखे ! तुम सुनन्दा प्रभृति समस्त वेश्याओ के समूह की स्वामिनी हो।

सुरेखा—ज कुरुवदी आणवेदि । [यत्कुरुपति आज्ञापयति] (प्रणमति)

सुनन्दा—धम्मणदणो उण जदि जिणतो आसि सुरेहापमुहीण ता अह अहिट्ठाइआ असि [अर्मनन्दन पुन यदि जयन्नभविष्यत् सुरेखाप्रमुखीना तदहमधिष्ठात्री अभविष्यम् ।]

शुकुनि—अपर पण क्रियताम् ।

युधिष्ठिर—

निरर्गलविनिर्गलद्गुलगुलाकरालैर्गलै-
रिमे तडितिताडितोड्डमरडिण्डिमोड्डामरा ।
मदाचमनचञ्चुरप्रचुरचञ्चरीकोच्चया
पण परिणतिक्षणक्षततटान्तरा दन्तिन ॥ १९ ॥

भीम—भवतस्तु क पण ?

(दुर्योधनस्तदेव पठति ।) ,

(उभौ क्रीडत)

सुरेखा—जो कुरुपति की आज्ञा । (प्रणाम करती है)

सुनन्दा—यदि महाराज युधिष्ठिर जीत गये तो मै सुरेखा आदि की अधिष्ठात्री बनूँगी ।

शकुनि—तो दूसरी बाजी लगाइये ।

युधिष्ठिर— निरन्तर गाज भरे हुये कर्कश गले से गल-गल शब्द करने वाले, विप्लवकालीन युद्ध की घोषणा करने वाली तड-तड शब्द करती हुई भेरियाँ जिन पर बजती है इसलिए अत्यन्त भयकर मद पीने के लिए आये हुये भ्रमर-समूहो से युक्त मद प्रारम्भ काल मे तटो को क्षत-विक्षत कर देने वाले ये सभी हाथी मेरे द्वारा दाँव पर है ॥ १९ ॥

भीम—तो आपका क्या दाँव है ?

(दुर्योधन उसी को पढता है)

(दोनो खेलते है)

शकुनि—जिता दन्तिन ।

दुर्योधन—(नेपथ्य प्रति) दु शासन ! द्यूतदन्तिना त्वमसि प्रणेता । (नेपथ्ये) यदादिशत्यार्यदुर्योधन ।

शकुनि—अपर पण क्रियताम् ।

युधिष्ठिर—

क्वणत्कनककिङ्किणीमुखरकन्धरासन्धिभि-
र्युतास्तरुणतित्तिरच्छविमनोजवैर्वाजिभि ।
द्रणाङ्कघनपट्टिशत्रिशिखदण्डिन स्तम्भिनो,
रथा प्रचलकाञ्चनध्वजमहापताका पण ॥ २० ॥

भीम—भवतस्तु क पण ?

(दुर्योधनस्तदेव पठति ।)

(उभौ क्रीडत)

शकुनि—हारिता रथा ।

शकुनि— हाथियो को हमने जीत लिया ।

दुर्योधन— (पर्दे की ओर देखकर) दु शासन ! जूए मे जीते गये हाथियो के तुम उन्नायक हो । (पर्दे से) महाराज की जो आज्ञा ।

शकुनि— अन्य कोई शर्त रखिये ।

युधिष्ठिर—कनक-रचित क्षुद्रघण्टिका से शब्दायमान कन्धावाले तरुण तित्तिर के समान छवि वाले, मन के वेग के समान गमनशील घोडो से युक्त जिस पर धनुष, पट्टिश, बाण आदि रखे हुए है, ऐसे स्तम्भ से युक्त, फहराते हुए सुवर्णध्वज एव पताका वाले रथ मैने बाजी पर रख दिये ॥ २० ॥

भीम—तो तुम्हारा क्या दॉव है ?

(दुर्योधन पुन वही श्लोक पढता है)

(दोनो खेलते हैं)

शकुनि—रथ आप हार गये ।

दुर्योधन —(नेपथ्य प्रति) सखेऽङ्गराज ! त्व रथाना नेता भव । (नेपथ्ये) यदादिशति कौरवेश्वर ।

शकुनि —अपर पण क्रियताम् ।

युधिष्ठिर—

महोधरदरीषु ये सनिनद पतद्भि खुरै-
लिखन्ति च पठन्ति च स्फुटतर टकारानिव ।
विरोचनहयावलीकुलभुवा स तेषामय
पण पवनरहसा मम तुरङ्गमाणा गण ॥ २१ ॥

भीम —भवतस्तु क पण ?

(दुर्योधनस्तदेव पठति)
(उभौ क्रीडत)

शकुनि —जित जित महाराजदुर्योधनेन ।

दुर्योधन —मातुल ! त्वमेतेषा तुरङ्गमाणा प्रभुर्भव ।

शकुनि —यदाह महाराज । (राजानमुद्दिश्य)

दुर्योधन—(पर्दे की ओर) मित्र अङ्गराज ! तुम इन रथो के उन्नायक बनो । (पर्दे से) जैसी महाराज की आज्ञा ।

शकुनि—और दॉव लगाइये ।

युधिष्ठिर—पहाड की गुफाओ मे टाप से चलते समय टकार के समान अपने पडे हुए खुर-चिह्नो से जो टकार को पढते और उसी को लिखते है, सूर्य के घोडो के वश मे उत्पन्न उन घोडो का समूह मैने दॉव पर लगाया ॥ २१ ॥

भीम—तो तुम्हारा क्या दॉव है ।

(दुर्योधन पुन वही श्लोक पढता है)
(दोनो खेलते है)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये ।

दुर्योधन—मामा ! तुम इन घोडो के मालिक बनो ।

शकुनि—जैसी महाराज की आज्ञा (महाराज युधिष्ठिर की ओर देखकर)

कि वाजिभि किमु गजै किमथो रथैश्च
सापत्नक न धृतये धरणि पणोऽस्तु।
एकातपत्रमिदमद्य चिराय राज्यं
धर्मात्मजो भजतु वा धृतराष्ट्रजो वा ॥ २२ ॥

युधिष्ठिर—यद्येवम्।

ऐल प्राक् स पुरूरवा प्रभुरभूद्यस्योर्वशीवल्लभो
दुष्यन्त स च योऽभ्यसूत भरत शाकुन्तल शास्तये।
श्रीमाञ्छान्तनुरग्रिम स च सता गङ्गाकलत्रेण य-
स्तत्सिंहासनमम्बुराशिरशना शासन्मही मे पण ॥ २३ ॥

भीम—भवतस्तु क पण ?

(दुर्योधनस्तदेव पठति)

(नेपथ्ये)

घोडो, हाथियो एव रथो को दॉव पर रखकर हारने-जीतने से क्या लाभ ? राज्य मे सपत्न का रहना ठीक नही, इसलिये पृथ्वी को ही दॉव पर रखना चाहिये। चाहे इस पृथ्वी का शासन धर्मराज करे अथवा दुर्योधन करे, राजा एक होना चाहिये ॥ २२ ॥

युधिष्ठिर—ऐसा ही हो।

सर्वप्रथम जिस सिहासन का पति इलापुत्र, उर्वशीपति पुरुरवा हुआ, उसके बाद उसी सिहासन पर दुष्यन्त हुए, जिन्होने शासन के लिए शकुन्तला मे भरत नामक पुत्र को उत्पन्न किया, तदनन्तर उसी सिंहासन पर सज्जनो मे श्रेष्ठ महाराज शान्तनु हुए, जिन्होने गङ्गा भार्या के साथ समुद्र मेखला-पर्यन्त इस पृथ्वी का शासन किया, उस सिहासन को मैने दॉव पर लगा दिया ॥ २३ ॥

भीम—आपका क्या दॉव है।

(दुर्योधन पुन वही श्लोक पढता है)

(पर्दे में)

राजन् युधिष्ठिर ! नराधिप कौरवेन्द्र !
वशे युवा भगवतो भवशेखरस्य।
द्यूत न युष्मदुचित ननु चिन्त्यता च
कै क्षत्रियैर्वसुमती पणिता पुराणै ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर—भो सभासद ! कथ किल राजसूययज्वा प्रतिज्ञातमर्थ कदर्थयति ।

दुर्योधन—हहो सभ्या ! अक्षधर्मा अपि निषिध्यन्ते ।

(उभौ क्रीडत)

शकुनि—जित जित महाराजदुर्योधनेन ।

दुर्योधन—स्वयमहमस्य राज्यार्धस्याधिष्ठाता ।

शकुनि—अपर पण क्रियताम् ।

युधिष्ठिर—कि नामावशिष्ट यत्पणीक्रियते ?

राजन् युधिष्ठिर एव राजन् दुर्योधन, तुम दोनो चन्द्रवश मे उत्पन हुये हो ! यह जूआ आप लोगो के लिये उचित नही, आप लोग निश्चयपूर्ण पुन विचार करे, आपके पूर्वजो मे किस क्षत्रिय ने पृथ्वी को दॉव पर लगाया है ॥ २४ ॥

युधिष्ठिर— हे सभासदो ! राजसूय यज्ञ करने वाला युधिष्ठिर जो प्रतिज्ञा कर चुका है, उसका परित्याग किस प्रकार कर सकता है ?

दुर्योधन—हे सभासदो ! क्या जूये को धर्म मानने वाले भी मना किये जा सकते है ।

(दोनो फिर खेलते है)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये ।

दुर्योधन—स्वय तो मै आधे राज्य का मालिक हूॅ ही ।

शकुनि—तो कोई दूसरी वस्तु दॉव पर रखिये ।

युधिष्ठिर—अब क्या शेष रह गया है जिसे दॉव पर लगावे ।

शकुनि—कि नाम हारित शरीरे तिष्ठति सति ? शरीररचना हि राजान ।

युधिष्ठिर—यद्येवम्,

निर्यान्ति यस्य वदनाद् वितथा न वाचो
यो राजसूयविधिनिर्धुत-पाप्मपङ्क ।
सोढा न चानुजमहाविरहस्य योऽस्मि
सोऽय स्वय तव पण प्रथम पृथाभू ॥ २५ ॥

भीम—(स्वगतम्) कथम् । आत्माऽपि पणीकृत । अहो सत्यसन्धता युधिष्ठिरस्य । (प्रकाशम्) भवतस्तु क पण ।

दुर्योधन—

हेलानमन्नृपकिरीटविटङ्ककोटि-
शृङ्गाररत्नचितकाञ्चनपादपीठ ।
वैतालिकै स्तुतसमस्तयशोत्सवश्री
सोऽय स्वय प्रतिपणस्तव कौरवेन्द्र ॥ २६ ॥

शकुनि—जब शरीर बचा है तो आप ने क्या हारा । राजा तो शरीर का ही बना हुआ होता है ।

युधिष्ठिर—यदि ऐसी बात है तो—

जिस युधिष्ठिर के मुख से असत्य वाणी कभी नही निकलती, जिसने राजसूय यज्ञ के अनुष्ठान से समस्त पाप-पङ्को को दूर कर दिया है, जिसने अपने छोटे भाइयो का वियोग कभी सहन नही किया, वही कुन्ती के पुत्रो से सबसे ज्येष्ठ मै युधिष्ठिर तुम्हारे दॉव पर हूँ ॥ २५ ॥

भीम—(अपने मन में) क्यो ? इन्होने अपने को भी दॉव पर लगा दिया, वाह रे युधिष्ठिर की सत्यता (प्रकट रूप से) तो आपका क्या दॉव है ।

दुर्योधन—लीलापूर्वक प्रणाम करने वाले राजओ के मुकुटाग्रभाग को सुशोभित करने वाले रत्नो से जिसका सिहासन भूषित हो रहा है तथा वैतालिको के द्वारा जिसके यशोत्सव का गान किया जा रहा है, ऐसा मै दुर्योधन तुम्हारे प्रतिपक्ष मे दॉव पर लगा हूँ ॥ २६ ॥

(उभौ क्रीडत)

शकुनि—जित जित महाराजदुर्योधनेन ।

युधिष्ठिर—जितोऽस्मि । तव नियोगे भृत्य ।

शकुनि—पुनरपर पण क्रियताम् ।

युधिष्ठिर—क पुनरपर पण ?

शकुनि—भ्रातर ।

युधिष्ठिर—

यो मन्थानकर क्रतौ निजकुलप्राकारबन्धश्च यो
दोर्भ्या य प्रसभ व्यधत्त च जरासन्धस्य सन्धिच्छिदाम् ।
सोऽय दृप्तहिडिम्बडिम्बविजयी वीरस्त्रिलोकाद्भुतम्
भीमो भीमपराक्रम पृथुगदाव्यग्राग्रपाणि पण ॥ २७ ॥

भीम—(दुर्योधन प्रति) भवतस्तु क पण ?

(दोनो फिर खेलते है)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये ।

युधिष्ठिर—अब तो मै जीत लिया गया, तुम्हारा आज्ञापालक भृत्य हूँ ।

शकुनि—और कोई वस्तु दॉव पर रखिये ।

युधिष्ठिर—अब क्या दॉव पर रखूँ ?

शकुनि—भाइयो को दॉव पर रखिये ।

युधिष्ठिर—जिसने राजसूय-यज्ञ मे दधि-विलोडनार्थ मन्थन-दण्ड धारण किया था, जो पाण्डवकुल की रक्षा के लिये प्रकार वेष्टन के समान है, जिसने युद्ध मे बलपूर्वक जरासध के सधि के दो टुकडे किये थे, त्रिलोक मे अद्भुत, अहङ्कारी हिडिम्ब को युद्ध मे पराजित करने वाला, भीषण पराक्रमी एव महती गदा को दक्षिण हाथ मे धारण करने वाला वीर भीम हमारी ओर से दॉव पर है ॥ २७ ॥

भीम—(दुर्योधन से) आपका क्या दॉव है ?

दुर्योधन—

सङ्कर्षणान्निजतनूज्ज्वलकीर्तिराशे
सार्धं मयाधिगतदिव्यगदारहस्य ।
त्वत्सोदरस्य मम सोदर एष वीरो
दु शासन प्रतिपणोऽस्य वृकोदरस्य ॥ २८ ॥

(उभौ क्रीडत)

शकुनि—जित जित महाराजदुर्योधनेन ।

दुर्योधन—अपर पण क्रियताम् ।

युधिष्ठिर—

कर्णप्रावरणै सहैकचरणानश्वाननै किन्नरी-
स्त्र्यक्षैस्तुल्यशिखान् वलीमुखमुखैर्यक्षा श्च रक्षासि च ।
निर्जित्याकनकाद्रितो जनपदान्यो राजसूये क्रतौ
सम्राज कृतवान् युधिष्ठिरमल सोऽयं किरीटी पण ॥ २९ ॥

भीम—भवतस्तु क पण ?

दुर्योधन—अपने गौरवर्ण शरीर के समान उज्ज्वल यशोराशि वाले श्रीबलदेव से जिसने मेरे साथ ही गदा-युद्ध की शिक्षा प्राप्त की है, यही मेरा सहोदर भाई दु शासन तुम्हारे भाई भीमसेन के बदले प्रतिपण है ॥ २८ ॥

(दोनो खेलते हैं)

शकुनि— महाराज दुर्योधन जीत गये, जीत गये ।

दुर्योधन—दूसरा दॉव लगाइये ।

युधिष्ठिर— जो कर्ण प्रावरण देश के साथ एकपद नामक पुरुषो को, किन्नरो के साथ किन्नरियो को एव गुह्यको के साथ शिव के समान धनुर्धर यक्ष एव राक्षसो को और सुमेरु-पर्यन्त समस्त जनपदो को जीतकर मुझे सम्राट् पद पर अभिषिक्त किया, वह अर्जुन ही मेरे द्वारा दॉव पर है ॥ २९ ॥

भीम—तो आपका क्या दॉव है ।

दुर्योधन —

यो भार्गवाद्भगवतोऽर्जितचापवेदी
द्रोणेन तुल्यगरिमा मम धर्ममित्रम्।
स प्रेरितार्थिजनवाग्भिररिक्तकर्ण
कर्ण स्वय प्रतिपणोऽस्य धनञ्जयस्य ॥ ३० ॥

(उभौ क्रीडत)

शकुनि —जित जित महाराजदुर्योधनेन। तदपर पण क्रियताम्।

युधिष्ठिर —

सौहार्दात् प्रणयादथ प्रथमत स्नेहातिरेकेण वा
यो देवेन रथाङ्गिनापि समय हित्वा कर लम्भित।
पाश्चात्यक्षितिपालनिर्मलयश प्रस्तारहारान् हरन्
सोऽय मे नकुल कुलैकतिलको युद्धप्रवीण पण ॥ ३१ ॥

भीम —भवतस्तु क पण ?

दुर्योधन—जिसने भगवान् परशुराम से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की है, जिसका महत्त्व द्रोणाचार्य से कम नही, जो धर्म से मेरा मित्र है एव जिसने अपने पास आये हुये याचको को उनके मनोरथ से पूर्ण किया, वह कर्ण ही मेरे द्वारा धनजय के बदले दॉव पर है ॥ ३० ॥

(दोनो फिर खेलते है)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये, जीत गये। दूसरी बाजी लगाइये।

युधिष्ठर—मित्रता, प्रेम एव स्नेहाधिक्य के कारण भगवान् वासुदेव ने भी अपनी प्रतिज्ञा छोडकर जिसे कर प्रदान किया था, एव जिसने पश्चिम के देश के राजाओ के निर्मल यश के समान विस्तृत हीरो को छीन लिया था, वह युद्ध मे कुशल पाण्डुकुल का भूषण नकुल ही मेरा दॉव है ॥ ३१ ॥

भीम—तो दुर्योधन ! आपका क्या दॉव है ॥

दुर्योधन —

> **नकुलस्यापि ते भ्रातुर्भ्राता प्रतिपणो मम।**
> **बिभ्रत्कीर्तिमहानावि विकर्ण कर्णधारताम्॥ ३२॥**

(उभौ क्रिडत)

शकुनि —जित जित महाराजदुर्योधनेन। तदपर पण क्रियताम्।

युधिष्ठिर —

> **हेलालोलितपाण्ड्यकेरलबलो य सिहल लङ्घयन्,**
> **द्राक् सङ्क्षुभ्य विभीषणेन तरसा दूरात्कर लम्भित ।**
> **नित्य रावणनिर्जितामरहृतैर्य सम्भृतो भूषणै**
> **सौम्यश्री सहदेव एष स पण क्षत्रैकचूडामणि ॥ ३३ ॥**

भीम —भवतस्तु क पण ?

दुर्योधन —अनिर्जितो भ्राता विकर्ण एव मम पण ।

(उभौ क्रीडत)

दुर्योधन—कीर्तिरूपी महानौका का कर्णधारभूत यह भाई विकर्ण तुम्हारे भाई नकुल के प्रतिपक्ष मे दॉव पर है ॥ ३२ ॥

(दोनो पुन खेलते हैं)

शकुनि— महाराज दुर्योधन जीत गये, जीत गये। दूसरा दॉव लगाइये।

युधिष्ठिर—जिसने केरल एव पाण्ड्य देश के राजाओ की सेना को लीलापूर्वक तहस-नहस कर सिघल देश पर आक्रमण किया, जिससे सक्षुब्ध होकर विभीषण ने शीघ्र ही पूरा कर दिया और रावण के द्वारा जीते गये देवताओ से सप्राप्त आभूषणो द्वारा जिसे सतुष्ट किया वह शान्तश्री श्रत्रिय कुलालङ्कार सहदेव ही हमारी ओर से दॉव पर है ॥ ३३ ॥

भीम—तो आपकी ओर से क्या दॉव है।

दुर्योधन—अभी तक न जीता गया मेरा भाई विकर्ण ही दॉव पर है।

(दोनो खेलते हैं)

शकुनि—जित जित महाराजदुर्योधनेन । तदपर पण कियताम् ।

युधिष्ठिर—कि नाम न हारितम् । क पुनरपर पण ?

दुर्योधन—धर्मदारा द्रौपदी ।

युधिष्ठिर—

सम्भूता द्रुपदाध्वरे हुतभुज पाण्डोर्नृपस्य स्नुषा,
राधावेधमहापणेन विजिता राज्ञा पुर. पश्यताम् ।
भूभृन्मौलिमणीन्दुदीधितिजलैर्या स्नातपादाम्बुजा
सा देवी विनयाभिमानवसति कृष्णा वितृष्णा पण ॥ ३४ ॥

भीम—भवतस्तु क पण ?

दुर्योधन—

ज्येष्ठत्वात् पाण्डुपुत्रस्य धृतराष्ट्रस्य या स्नुषा ।
सा देवी देवराजार्हा मम भानुमती पण ॥ ३५ ॥

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये, जीत गये, दूसरी वस्तु दॉव पर रखिये ।

युधिष्ठिर—मै तो सब कुछ हार चुका, अब क्या दॉव पर रखे ।

दुर्योधन—धर्मदारा द्रौपदी ।

युधिष्ठिर—जो महाराज द्रुपद के यज्ञ मे अग्नि से उत्पन्न हुई है, जो पाण्डु की पुत्रवधू है, जो स्वयवर के लिये आये हुए समस्त राजाओ के देखते-देखते राधावेध के महापण से प्राप्त हुई है, जिनके चरणकमल राजसूय महायज्ञ मे राजाओ के शिर स्थित मुकुट के मणिरूपीचन्द्र के प्रकाश जल से प्रक्षालित है, जो सभी प्रकार की तृष्णा से रहित है और विनम्रता एव स्वाभिमान की विषय-भूमि है, वह देवी द्रौपदी मेरी तरफ से दॉव पर रखी गई ॥ ३४ ॥

भीम—आपकी ओर से क्या दॉव है ।

दुर्योधन—पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर जेठे होने के कारण जब स्त्री को दॉव पर रखते है तो मै धृतराष्ट्र की पुत्रवधू, शक्रोपभोगार्ह अपनी देवी भानुमती को पण पर रखता हूॅ ॥ ३५ ॥

सुनन्दा—(स्वगतम्) एसो जेट्ठकणिट्ठाण विणिमओ । [एष ज्येष्ठकनिष्ठाना विनि-मय ।]

(**उभौ क्रीडत**)

शकुनि—जित जित महराजदुर्योधनेन ।,

दुर्योधन—दु शासन । आनीयता द्यूतदासी द्रौपदी ।

दु शासन—यदादिशति कौरवपाण्डवनाथ ।

दुर्योधन—अपर पण क्रियताम् ।

युधिष्ठिर—न मे पणान्तरमस्ति ।

दुर्योधन—

वर्षाणि द्वादशारण्ये सह तिष्ठतु निष्ठया ।
अज्ञातचर्यया वर्षमावयोर्यो विजीयते ॥ ३६ ॥

(**युधिष्ठिरस्तदेवानुवदति**)

(**उभौ क्रीडत**)

सुनन्दा—(मन में) यह तो देवरानी एव जेठानी का विनिमय हो रहा है ।

(दोनो खेलते है)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये, जीत गये ।

दुर्योधन—दु शासन ! जूए मे जीती गई द्रौपदी को दासी बनाकर ले जाओ ।

दु शासन— कौरवो एव पाण्डवो के अधीश्वर की जो आज्ञा ।

दुर्योधन—और कोई दॉव पर रखिये ।

युधिष्ठिर— अब मेरे पास दॉव पर रखने के लिये कुछ भी नही बचा है ।

दुर्योधन— हम लोगो के मध्य जो जूए मे हार जायगा, वह १२ वर्षो तक ब्रह्मचर्य के साथ वन मे रहेगा और एक वर्ष गुप्त रूप मे भी निवास करेगा ॥ ३६ ॥

(युधिष्ठिर भी इसी प्रकार का अनुमोदन करते है)

(दोनो फिर खेलते है)

शकुनि —जित जित महाराजदुर्योधनेन ।

(नेपथ्ये)

पञ्चाना या कलत्र द्रुपदमखविधौ चाद्भुत जन्म यस्या
पूताया राजसूयावभृथपरिगमे मन्त्रपूतै पयोभि ।
तामेता द्यूतदासी कुरुपतिनियम मूर्ध्नि कृत्वा मयाऽन्त
केशेष्वाकृष्यमाणा शृणुत नृपतयो यस्य शक्ति स पातु ।। ३७ ।।

दुर्योधन —कथम्, अय सम्पादितमदाज्ञ सद्रौपदीको वत्सदु शासन प्राप्त एव ।

(तत प्रविशति यथानिर्दिष्टा द्रौपदी दु शासनश्च । दु शासनस्तदेव पठति)

सुनन्दा—(सहसोपसृत्य हस्तमोटन नाटयन्ती) दुस्सासण ! मुञ्च मुञ्च पञ्चालीकेस-हत्थ । [दु शासन ! मुञ्च मुञ्च पाञ्चालीकेशहस्तम्]

(दु शासनस्तामपनुद्य समन्तादवलोक्य विहस्य च)

शकुनि—महाराज दुर्योधन जीत गये, जीत गये ।

(पर्दे से)

हे राजाओ सुनो, जो पञ्च पाण्डवो की धर्मपत्नी है, महाराज द्रुपद के यज्ञ मे जिसका जन्म अद्भुत रूप से हुआ है एव जो राजसूय यज्ञ मे अवभृथ स्नान काल के अवसर पर मन्त्रपूत जल से पवित्र की गई है, मै दुर्योधन की आज्ञा से उस द्रौपदी का केश पकड कर सभा मे ले आ रहा हूँ । जिसके पास सामर्थ्य हो वह उसकी रक्षा करे ।। ३७ ।।

दुर्योधन—अरे यह मेरा आदेश पालन करता हुआ दु शासन द्रौपदी को लेकर आ ही गया ।

(इसके अनन्तर द्रौपदी को लिये हुए दु शासन का प्रवेश । दु शासन उक्त श्लोक पुन पढता है ।)

सुनन्दा—(शीघ्रता से पहुँचकर दु शासन के हाथ को मोडने का अभिनय करती है) अरे दु शासन ! द्रौपदी के केश से अपना हाथ हटा ले, हटा ले ।

(दु शासन सुनन्दा को हटाता हुआ तथा चारो ओर देखकर हँसता हुआ)

यन्मुक्त स्फारतारध्वनिभरितसभाकुञ्जगर्भ सरोष
हुङ्कार कातराणा तरलितहृदय फाल्गुनस्याग्रजेन।
कुर्वद्भिर्हारवल्लीहननिबिडताञ्जूटकूटान्नृपैस्त-
न्यस्ता खड्गेषु रत्नत्सरुषु सरभस सप्रहाराय हस्ता ॥ ३८ ॥

सुनन्दा—(हस्तमोटन पुनर्नाटयित्वा)

अस्सा चुम्बिअ पल्लवाण बहुणा णेहेण वड्ढज्जुणा
जाण मुक्कलवेणिबधणकरो भाआ सविर्त्तिजिणो।
चड पडवगेहिणीअ चिहुरे आकड्ढअतेण ते,
किं दुस्सासणदुस्सहाकवलिआ हालाहलग्गगरा॥ ३९ ॥

[अस्या चुम्बितपल्लवे सुबहुना स्नेहेन वर्धिष्णुनि
जाने मुक्तकवेणिबन्धनसरे भासा सवितृजित।
चण्ड पाण्डवगेहिनीसुचिकुरे चाकृष्टप्रान्ते त्वया
किं दु शासन ! दुस्सहा कवलिता हालाहलस्याऽङ्कुरा ॥]

द्रौपदी—वच्छ दुस्सासण ! मुञ्च मे केसहत्थ। कध एक्कवत्था भविअ गुरुणरेन्द-पुरदो सचिरिस्स। [वत्स दु शासन ! मुञ्च मे केशहस्तम्। कथमेकवस्त्रा भूत्वा गुरुनरेन्द्रपुरत सञ्चरिष्यामि।]

भीमसेन ने कायरो के हृदय को कम्पित करने वाला जो सिहनाद किया है, आकाश को दहलाने वाले उस घोर सिहनाद के फैलने से सभा का समस्त आभ्यन्तर भाग ध्वनि से भर गया है और राजा भी अपनी माला रूपी बल्लियो से अपने जटाजूट को अच्छी तरह बॉधते हुये रत्न-जटित तलवार की मूठ पर युद्ध के लिए अपने हाथ रख लिये ॥ ३८ ॥

सुनन्दा—(फिर से दु शासन के हाथो को हटाने का अभिनय करती है)

पैर के अग्रभाग तक लटकने वाले, अत्यन्त स्नेह से बढाये हुये एव तेज से सूर्य को भी मात करने वाले एव मोती के वेणिबन्धन से रहित इस पाण्डवगेहिनी द्रौपदी के केश को पकडकर जोर से खीचते हुये क्या तुमने हलाहल विष के अङ्कुर का पान नही कर लिया ॥ ३९ ॥

द्रौपदी— वत्स दु शासन ! मेरे केश से अपना हाथ हटा ले। मै रजस्वला होने के कारण एकवस्त्रा हूँ, अत गुरुजनो के आगे किस प्रकार चलूँगी ?

दुशासन—(विहस्य) नन्वपनयाम्येकवस्त्रताम्। (कोटवीकरणेन बहुवस्त्राकर्षण नाटयन्)

यावन्नैक द्रुपदतुहितु कृष्यते वस्त्रमस्या-
स्तस्याश्चान्यद्भवति पिहित तावदङ्ग नतश्च।
खिन्न चैतन्मम करतल वाससा चैष राशि-
स्तन्मन्येऽसौ त्रिभुवनमनोमोहिनी वेत्ति विद्याम्॥ ४० ॥

द्रौपदी—भो दुस्सासण। मम किं अवरद्ध जेण दुज्जणोजिद करेसि। [भो दु शासन। मया किमराद्ध येन दुर्जनोजित करोषि।]

दु शासन—अयि पाञ्चालि। पञ्चाना कलत्र भूत्वा किमपि व्रीडसे?

(साक्षेपम्)

दु शासन—(हँसकर) मै तुम्हारी एकवस्त्रता को दूर कर रहा हूँ। (नङ्गा करने का यत्न करते हुये अनेक वस्त्रो को खीचने का अभिनय करता है)

मै जैसे ही द्रौपदी का एक वस्त्र खीचता हूँ, उसी समय दूसरे वस्त्र उत्पन हो जाते है जिससे उसका अङ्ग ढक जाता है। वस्त्र खीचते-खीचते मेरे हाथ शिथिल हो गये और इधर वस्त्रो का अम्बार लग गया। यह त्रिलोक के मन का मोहन करने वाली कोई विद्या जानती है, ऐसा मुझे ज्ञात हो रहा है॥ ४० ॥

द्रौपदी—अरे दु शासन। मैने तेरा क्या अपराध किया है, जो इस प्रकार की दुष्टता करते हो?

दु शासन— अयि पाञ्चालि। तुम तो पॉच मनुष्यो की कलत्र हो, फिर लज्जा कैसी?

(आक्षेप करता हुआ)

हे द्रौपदि ! त्वमसि कात्र पतिव्रताना
कि दृष्टपञ्चपुरुषा वनिता कलत्रम् ।
दुर्योधनस्य तदिम भज वाममूरु-
मास्फालित मुकुलिताङ्गुलिना करेण ॥ ४१ ॥

द्रौपदी—(तदनादृत्याञ्जलि बद्ध्वा) हहो सहामज्झट्ठिदा गुरुणो णरेन्दा आ दोवदी णिणअ पत्थेदि । [हहो सभामध्यस्थिता गुरवो नरेन्द्राश्च ! द्रौपदी निर्णय पश्यति ।]

(नेपथ्ये) द्रौपदि ! विकर्णस्त्वामाह, कीदृशो निर्णय ।

द्रौपदी—कि अह पढम हारिदा जूदे अप्पा वा धूम्मणन्दणेन । [कि अह प्रथम हारिता द्यूते आत्मा वा धर्म नन्दनेन ।]

(नेपथ्ये) प्रजावति ! तवायमभिप्राय —

यद्यह हारिता पूर्व भवामि द्यूतकिङ्करी ।
आत्मा वा हारित पूर्व तदह नास्मि हारिता ॥ ४२ ॥

हे द्रोपदी ! तुम पतिव्रताओ मे किस प्रकार की पतिव्रता हो ? क्या जिसके पॉच पति हो वह स्त्री पतिव्रता कही जायगी ? इसलिये दुर्योधन के द्वारा हाथो की मुॅदी हुई अगुलियो द्वारा बजाये जाते हुये उसके बाये जङ्घे पर बैठी ॥ ४१ ॥

द्रौपदी—(दु शासन की बातो पर ध्यान न देते हुये हाथ जोडकर) हे सभासदो ! हे गुरुगण ! हे राजाओ ! द्रौपदी आप लोगो से निर्णय चाहती है ।

(नेपथ्य में)

देवि द्रौपदी ! विकर्ण तुमसे पूछता है कि किस बात का निर्णय ?

द्रौपदी—क्या महाराज युधिष्ठिर पहले मुझे हारे है अथवा स्वय अपने को हराकर तदनन्तर मुझे हारे है, इसी बात का निर्णय ।

(पर्दे से) तुम्हारा यह अभिप्राय है कि—

यदि महाराज युधिष्ठिर पहले मुझे हारे है तो मै द्यूतकिङ्करी हो सकती हूॅ । यदि उन्होने अपने को हारकर मुझे दॉव पर लगाया है तो मै द्यूतदासी नही हूॅ । इसी बात का निर्णय चाहती हूॅ ॥ ४२ ॥

दु शासन—(सक्रोधमिव) अरे रे । अकर्ण । विकर्ण । सभामध्यमध्यासीने भुवनपतावार्यदुर्योधने किमित्थ प्रलपसि ?

(प्रविश्य)

विकर्ण—(साक्षेपम्)

द्यूत क्षत्रकुलव्रत नहि भवेज्जेतु पणोऽस्वामिना
सरम्भ किमकाण्ड एव भवता सद्धर्म यत्त्यज्यते ।
भो दु शासन । क क्रमो द्रुपदजाकेशाम्बराकर्षणे
दुर्वृत्ति क्षमते न कस्यचिदय भ्राता विकर्णस्तव ॥ ४३ ॥

दु शासन—(सभ्रुकुटीबन्धम्) अरे रे धार्तराष्ट्रबटो । वाचाटोऽसि । तदद्य प्रभृति—

न्यायवादी विकर्णोऽत्र भवद्भ्यो यद्यह वहि. ।
तद्यूय शतमेकोन षट् च सम्प्रति पाण्डवा ॥ ४४ ॥

दु शासन— (क्रोधपूर्वक) अरे रे बहरे विकर्ण । सभा-मध्य मे बैठे हुये त्रिलोकपति आर्य दुर्योधन के रहते हुय तुम ऐसा प्रलाप क्यो कर रहे हो ?

(प्रवेश कर)

विकर्ण—(आक्षेप करता हुआ)

द्यूत क्षत्रियो का धर्म है यह बात सत्य है, किन्तु जो जिसका मालिक नही है उसके द्वारा उस वस्तु के लगाये गये दॉव विजेता के नही हो सकते । आप बिना अवसर के ही यह अनुचित क्रोध कर रहे है । क्या आप सन्मार्ग का त्याग नही कर रहे ? हे दु शासन । द्रौपदी का केश एव वस्त्र खीचने का तुम्हे कोई अधिकार नही, यह तुम्हारा भाई विकर्ण इस सभा मे किसी का अन्याय सहन नही कर सकता ॥ ४३ ॥

दु शासन—(भ्रुकुटी को चढाते हुए) अरे धृतराष्ट्र के बालक, तू बहुत बकवाद करता है, तो आज से—

यदि इस सभा मे केवल एक मात्र विकर्ण ही न्याय की बात बोलते है तो मै आप सबसे पृथक् हूॅ । इस कारण मेरे न रहने से दुर्योधन के ९९ भाई रह गये अथवा विकर्ण के अब पाण्डव-पक्ष मे चले जाने से वे पाण्डव छ भाई हो गये ॥ ४४ ॥

दुर्योधन—तदतिमुह्यतस्तव कतर पन्था ।

विकर्ण—

या मे बल सुबलवान् दलितप्रलम्बा
शिष्येषु सत्स्वपि महत्सु गदामदत्त।
सा मे यदादिशति हस्ततलावतीर्णा
दुर्वृत्तदण्डनविधौ मम सोऽत्र पन्था ॥ ४५ ॥

(समन्तादवलोक्य)

क्षत्रैकत्रासचिन्ताकुलमनसि नभ सिन्धुपुत्रे पवित्रे
द्रोणे द्राक् श्मश्रु शुभ्र दलयति शकुनौ वर्णयत्यक्षशिक्षाम्।
कर्णे कर्णान्तिकस्थे हसति कुरुपतौ दृष्टय पाण्डवाना
दृप्त दु.शासन च क्षितिपतितिलक यान्ति धर्मात्मजञ्च ॥ ४६ ॥

दु शासन—(हे द्रौपदीत्यादि पठति)

विकर्ण—अहो ! उचितकारिता पाण्डवानाम् ।

दुर्योधन—तो इस प्रकार की मूर्खता करने वाले तुम्हारा कौन सा मार्ग होगा ।

विकर्ण—जो सबसे बलवान् है, उन बलभद्रजी ने अनेक महान् शिष्यो के रहते भी प्रलम्ब नामक असुर का वध करने वाली जिस गदा को मुझे दिया है, उस गदा को हाथ मे ले लेने पर इन दुराचारियो का वध करने के विषय मे वह मुझे जो आदेश करेगे, मेरा वही रास्ता है ॥ ४५ ॥

(चारो और देखकर)

स्वर्नदी गङ्गा के पुत्र भीष्म के क्षत्रियो के विनाश के भय से चिन्तित होने पर द्रोणाचार्य के सफेद दाढी पर हाथ से सहलाने पर एव कर्ण के दुर्योधन के कान के समीप कुछ कहकर हँसते रहने पर पाण्डवो की दृष्टि कभी अहङ्कारी दु शासन पर एव कभी धर्मात्मज युधिष्ठिर पर चली जाती है ॥ ४६ ॥

दु शासन—('हे द्रौपदी' आदि श्लोको को पढता है)

विकर्ण—अहो ! पाण्डव लोग कितना उचित कार्य करते है ।

आकर्ण्य कौरवकुमारबल प्रचण्ड-
मत्युल्लसन्ति गुरुरोषकषायतारा ।
दृग्दृष्टयो नृपतिससदि पाण्डवाना
दृष्ट्वा युधिष्ठिरमुख पुनरानमन्ति ॥ ४७ ॥

(पुनरवलोक्य)

अहो किमपि महारम्भ सभासदा क्षोभ ।

द्योतच्चूडामणीना चलनझणझणत्कारिहारच्छटाना
प्रेङ्खोलत्कङ्कणालीकलकलमुखरैर्दोर्भिरुड्डामराणाम् ।
नि श्वासै साट्टहास किमिदमिदमिति त्वङ्गितभ्रूलतानाम्
सङ्क्षोभो भूपतीना विततमपि सभागर्भरन्ध्र रुणद्धि ॥ ४८ ॥

(पुनरवलोक्य)

अहो कौरवपतेराज्ञा । अहो तत्र सत्यता महीपालानाम् । ।

इस राजसभा मे कौरवकुमार दु शासन की ललकार को सुनकर पाण्डवो की क्रोध से रक्तवर्ण की दृष्टियॉ अहङ्कारी दु शासन पर पडती है । पुन युधिष्ठिर के मुख की ओर देखकर विनम्र हो जाती है ॥ ४७ ॥

(फिर देखकर)

अहो सभाभवन मे स्थित इन सभासदो का क्रोध उन्हे युद्ध के लिये उतावला बना रहा है ।

चमकते हुए चूडामणियो वाले, चलने से झणझणत्कार शब्द को करनेवाले हारो की छटा से युक्त, कल-कल शब्द वाले, कङ्कणो के आन्दोलन से मुखरित हाथो को धारण करने से अत्यन्त भयकर नि श्वासपूर्वक अट्टहास करते हुये एव अपनी भ्रुकुटियो को तान लेने वाले इन राजाओ का सिहनाद विस्तृत सभाभवन के आभ्यन्तर भाग को प्रतिध्वनित कर रहा है ॥ ४८ ॥

(फिर देखकर)

ओ दुर्योधन की आज्ञा मे कितनी शक्ति है और उस दुर्योधन के आज्ञा-पालन मे राजा लोग कितने सत्यपरायण है ।

अस्मिन् महासदसि कौरवपाण्डवीये
क्षोभ गते द्रुपदजाचिकुराञ्चनाभि ।
दुर्योधनेन भ्रुकुटी कुटिलीकृता च
जाताश्च भूमिपतयो लिखिता इवैते ॥ ४९ ॥

(सरभस युधिष्ठिरमुपसृत्य)

आर्य युधिष्ठिर । प्रतिष्ठस्व वनवासाय । द्यूतहारितमनुष्ठीयताम् ।

द्रौपदी—रे । रे । दुज्जोहण । [रे रे । दुर्योधन]

एसो से करकड्ढणा परिहवे आमुक्कबन्धक्कमो
ता सच्च चिअचञ्चरीअकसणो केसोच्चओ थाहिइ ।
णक्खग्गकुसकोडिपाडिअमहादुस्सासणोरत्थली-
रत्तल्लेहि करेहि णिच्चअमिम भीमो ण जा बन्धइ ॥ ५० ॥

कौरव और पाण्डवो की इस सभा मे, जिसमे द्रौपदी के केशाकर्षण से क्षोभ व्याप्त हो गया है, उस सभा मे अभी केवल दुर्योधन ने अपनी भ्रुकुटी चढाई थी कि समस्त राजा लोक चित्रलिखित के समान स्तब्ध हो गये ॥ ४९ ॥

(शीघ्रता से युधिष्ठिर के पास जाकर)

आर्य युधिष्ठिर । वनवास के लिये प्रस्थान कीजिये । द्यूत मे जिस शर्त्त से आप हारे है उसके अनुसार कार्य कीजिये ।

(सभी उठ जाते है)

द्रौपदी— रे रे दुर्योधन ।

केश के खीचने के कारण अनादृत होने पर जिसका वेणीबन्धन छूट गया है और जो भौरो की कालिमा की कसौटी है, ऐसा मेरा केशसमूह इसी प्रकार रहेगा, जिसे अपने नखाग्ररूपी अङ्कुश से विदारण किये जाने वाले दु शासन के उर स्थल से निकले हुये रक्त का आस्वादन करने वाली भीमसेन की भुजाएँ स्वय बाँधेगी, ऐसा मेरा सत्य निश्चय है ॥ ५० ॥

[एषोऽसौ करकर्षणापरिभवे आमुक्तबन्धक्रम
तत्सत्य चिरचञ्चरीककषण केशोच्चयस्तिष्ठति।
नखाग्राङ्कुशकोटिपाटितमहादु शासनोर.स्थली-
रक्तोल्लेढिकरेण निश्चयमय भीमेन यद् बध्यते ॥]

भीम—रे रे दुर्योधन। दोर्दण्डद्वयभीमस्य भीमसेनस्य मम शृणु प्रतिज्ञाम्।

येनेय याज्ञसेनी नृपसदसि हठात्केशपाशे गृहीता
यश्चास्या कोटवीत्व बत कलयति भो वाससा राशिकार।
सोऽह तेनैव रोषारुणनयनपुट पाणिनोत्पाटितेन
ते हन्ता! हन्त! वक्षस्तटभुवि रटतो दुष्टदु शासनस्य ॥ ५१ ॥

अपि च– रे रे दुर्योधन।

नखक्रकचपाटन त्रुटितकीकसाद्वक्षस
सिरासरणिभिर्मृधे रुधिरमुत्फलत्फेनिलम्।
तदञ्जलिमय रुषा हृदि निवेश्य दौ शासने
युधिष्ठिरसहोदर शृणु वृकोदर पास्यति ॥ ५२ ॥

भीमसेन— रे रे दुर्योधन। भयङ्कर दो भुजाओ को धारण करने वाले मुझ भीम की प्रतिज्ञा को सुनो—

जिस दुष्ट दु शासन ने इस राजसभा मे द्रौपदी के केश को पकडा है, जिसने इसे विवस्त्र करने की इच्छा से वस्त्रो को ढेर लगाया है, मै भीमसेन क्रोध से उस दुष्ट दु शासन की भुजाओ को उखाडने के साथ-साथ इसके वक्ष-स्थल को भी विदीर्ण करूँगा ॥ ५१ ॥

और भी — रे दुर्योधन।

सुनो, युधिष्ठिर का सहोदर भाई यह भीमसेन क्रोध से युद्ध मे दु शासन की छाती की हड्डियो को अपने नखरूपी आरो से चूर-चूर कर उसकी नसतन्तुओ से निकले हुए फौव्वारे एव फेनयुक्त रुधिर को दु शासन के हृदय मे अपनी अञ्जलि लगाकर पीयेगा ॥ ५२ ॥

किञ्च, एकस्मिन्नपराधेऽपि सर्वे सहधर्मचारिणोऽपराद्धार । ततश्च—

द्रोणादुपार्जितधनुर्निगमप्रबन्धान् सर्वानपि स्थितवतो सदसि प्रकाशम् ।
भ्रातृन् हनिएष्यति शत तव भीमसेन काले गदाप्रहरणै रणकर्मशौण्ड. ॥ ५३ ॥

ततश्च—

दोर्दण्डमण्डलितचण्डगदाप्रहारैरामूलतस्तडतडत्त्रुटितोरुसन्धे ।
दुर्योधनस्य विकटा मुकुटाग्रपीडा द्राग्लोठयिप्यति रणे चरणेन भीम ॥ ५४ ॥

शकुनि—निर्गच्छत वनवासाय । को हि द्यूतजितानामुद्विजते मौखर्येण ।

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता सर्वे ।)

इति प्रचण्डपाण्डवापरनाम्नि

बालभारते नाटके द्वितीयोऽङ्क

और क्या ? एक के अपराध के करने पर उसके सभी साथी अपराधी कहे जाते है, इसलिये—

रणकर्म के मदमत्त यह भीमसेन द्रोण के द्वारा धनुर्विद्या के प्रयोग एव रहस्य की शिक्षा प्राप्त करने वाले, इस सभा मे प्रत्यक्ष रूप मे स्थित तुम्हारे सभी सौ भाइयो का गदा-युद्ध मे वध करेगा ॥ ५३ ॥

और भी — अपने बाहुदण्डो से घुमाते हुए गदा-प्रहारो से तड-तड करती हुई जिसकी जघो की सधियॉ मूल से टूट चुकी है, उस दुर्योधन के मुकुट की विशाल मणियो को यह भीम शीघ्र ही युद्ध मे अपने पैरो से ठुकरावेगा ॥ ५४ ॥

शकुनि—वनवास के लिये निकलो । जुए मे हारे गये के द्वारा किये गये प्रलाप से कौन उद्विग्न होगा ।

(इस प्रकार घूमकर सब नकल जाते है ।)

द्वितीय अङ्क समाप्त

श्लोकानुक्रमणिका

कर्पूरमञ्जरी

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

सूत्रधार— नाटक का स्थापक, रङ्गमञ्च का प्रबन्धक-प्रधान नट।

पारिपार्श्विक— सूत्रधार का सहयोगी-दूसरा नट।

राजा— चन्द्रपाल, नाटक का नायक।

विदूषक— कपिञ्जल, राजा का विनोदी मित्र।

वैतालिक (दो) —रत्नचण्ड और काञ्चनचण्ड, राजा की स्तुति करने वाले।

भैरवानन्द— योगी, तान्त्रिक सिद्ध पुरुष।

स्त्री-पात्र

कर्पूरमञ्जरी— विदर्भनगर की राजकुमारी-नाटक की नायिका।

देवी— राजा चन्द्रपाल की रानी-विभ्रमलेखा।

विचक्षणा— रानी की सखी-प्रधान परिचारिका, चेटी।

प्रतिहारी— अन्त पुर की दासी।

कुरङ्गिका— कर्पूरमञ्जरी की सखी-परिचारिका।

सारङ्गिका— रानी की प्रमुख दासी।

चर्चरी— नर्त्तकियाँ।

॥ श्री ॥

कर्पूरमञ्जरी

प्रथमं जवनिकान्तरम्

भद्द होउ सरस्सईअ कइणो णदतु वासाइणो
अण्णाण पि पर पअट्टदु वरा वाणी छइल्ल-प्पिआ ।
वच्छोमी तह माअही फुरदु णो सा किं च पचालिआ
रीईओ विलिहतु कव्वकुसला जोण्ह चओरा विअ ॥ १ ॥

[भद्र भवतु सरस्वत्या कवयो नन्दन्तु व्यासादय
अन्येषामपि पर प्रवर्त्तता वरा वाणी विदग्धप्रिया ।
वैदर्भी तथा मागधी स्फुरतु न सा किञ्च पाञ्चालिका
रीतिका विलिहन्तु काव्यकुशला ज्योत्स्ना चकोरा इव ॥ १ ॥]

अवि अ [अपि च]—

अकलिअपरिरंभविब्भमाइ अजणिअचुबणडबराइ दूरम् ।
अघडिअथणताडणाइ णिच्च णमह अणंगरईणमोहणाइ ॥ २ ॥

सरस्वती देवी की जय हो, व्यास आदि कवियो की विद्वज्जनप्रिय मधुर वाणी सर्वदा चलती रहे । वैदर्भी, मागधी और पाश्चाली रीतियाँ हमारे ध्यान मे तथा सामने रहे । सहृदय रसिकजन इन तीन रीतियो का उसी तरह विशेषरूप से आनन्द ले, जिस तरह ज्योत्स्ना का स्वाद लेकर चकोर पक्षी प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥

और भी—दर्शकगण आलिङ्गन चेष्टा से रहित, चुम्बन के आडम्बर से शून्य और अगविशेषो के कठिन ताडन से रहित काम और रति की सुरत क्रीडाओ को निरन्तर नमस्कार करे, अर्थात् उनका रसास्वाद करे ॥ २ ॥

[अकलितपरिरम्भविभ्रमाणि अजनितचुम्बनडम्बराणि दूरम् ।
अगणितघनताडनानि नित्य नमतानङ्गरत्योर्मोहनानि ॥ २ ॥]

अवि अ [अपि च]—

ससिहडमडणाण छम्मुहणासाण सुरअणपिआणम् ।
गिरिसगिरिंदसुआण सघाडी वो सुह देउ ॥ ३ ॥

[शशिखण्डमण्डनयो सम्मोहनाशयो सुरगणप्रिययो ।
गिरिश-गिरीन्द्रसुतयो सङ्घटना व सुख ददातु ॥ ३ ॥]

अवि अ (अपि च)—

ईसारोसप्पसाअप्पणइसु बहुसो सग्गगगाजलेहिं
आ मूल पूरिआए तुहिणकरकलारुप्पसिप्पीएँ रुद्दो ।
जोण्हामुत्ताहलिल्ल णअमउलिणिहित्तग्गहत्थेहिं दोहिं
अग्घ सिग्घ व देतो जअइ गिरिसुआपाअप केरुहाण ॥ ४ ॥

[ईर्ष्यारोषप्रसादप्रणतिषु बहुश स्वर्गगङ्गाजलै-
रामूल पूरितया तुहिनकरकलारूप्यशुक्त्या रुद्र ।
ज्योत्स्नामुक्ताफलाढ्य नतमौलिनिहितभ्यामग्रहस्ताभ्या द्वाभ्या-
मर्घ्य शीघ्रमिव ददज्जयति गिरिसुतापादपङ्केरुहयो ॥ ४ ॥]

(नान्द्यन्ते)

और भी—चन्द्रकला मे भूषित, सुख की अभिलाषा रखने वाले, देवताओ के प्रिय शकर और पार्वती का सगम आप दर्शको को आनन्द दे ॥ ३ ॥

और भी—शिवजी के मस्तक पर गङ्गा को देखकर उत्पन्न पार्वती की ईर्ष्या और क्रोध को शान्त करने के लिए उनके पैरो पर बार-बार पडते हुए तथा अपने झुके हुए मस्तक पर रखे हुए दोनो अग्रहस्तो द्वारा गङ्गाजल से अत्यन्त पूरित चन्द्रकलारूपी सीप से चन्द्रिका रूपी मोती से युक्त अर्घ्य को शीघ्रता से पार्वती के चरणो मे देते हुए भगवान् शकर उत्कर्ष को प्राप्त कर रहे है ॥ ४ ॥

सूत्रधार—(परिक्रम्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) **किं उण णिट्टपउट्टो विअ दोसदि अम्हाण कुसीलबाण परिजणो,—जदो एक्का पत्तोच्चिआइ सिअआइ उच्चिणेदि। इअरा कुसुमाबलीओ गुफेदि। अण्णा पडिसीसआइ पडिसारेदि। काबि क्खु बण्णिआओ पट्टए बट्टेदि। एस बसे ठाविदो धाणो। इअ बीणा पडिसारीअदि। इमे तिण्णि मिअगा सज्जीअति। एस कासतालाण पक्खालणुजलाण हल्लबोली। एद धुआगीद आलबीआद। ता किंत्ति कुडुब आकारिअ पुच्छिस्स ?** [कि पुनर्नृत्यप्रवृत्त इव दृश्यतेऽस्माक कुशीलवाना परिजन,—यत एका पात्रोचितानि सिचयानि उच्चिनोति। इतरा कुसुमावलीर्गुम्फति। अन्या प्रतिशीर्षकाणि प्रसारयति। काऽपि खलु वर्णिका पट्टे वर्तयति। एष वशे स्थापितो ध्वान। इय वीणा प्रतिसार्यते। इय इमे त्रयो मृदङ्गा सज्जयन्ते। एष कास्यतालाना प्रक्षालनोज्ज्वलाना हलहल। एतद्‌ध्रुवागीतम् आलाप्यते। तत् किमिति कुटुम्बमाकार्य पृच्छामि ?] (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य सज्ञापयति)।

(तत प्रविशति पारिपार्श्विक.)

पारिपार्श्विक—आणवेदु भावो। **[आज्ञापयतु भाव]**

सूत्रधार—(विचिन्त्य) कि उण णिट्टपउट्टा बिअ दीसध ? **[किं पुनर्नृत्यप्रवृत्ता इव दृश्यध्वे ?]**

सूत्रधार—(घूम कर और नेपथ्य की ओर देखकर) हमारा नट समुदाय तो नृत्य मे लगा हुआ-सा दीखता है—क्योकि कोई नटी तो पात्रो के लिए उचित वस्त्रो को ठीक कर रही है। कोई माला बना रही है। कोई पगडियाँ फैला रही है। कोई चित्रफलक पर तूलिका चला रही है। यह वेणु बजाना प्रारम्भ हुआ, यह वीणा साफ की जा रही है यह तीन तरह के मृदङ्ग (लेपादि के द्वारा) सजाये जा रहे है। यह साफ करने से चमकते हुए करतालो का शब्द है। यह ध्रुवागीत गाया जा रहा है। तो क्यो न साथियो को बुलाकर पूछूँ।

(पर्दे की ओर देखकर नाम लेकर पुकारता है)

(तब पारिपार्श्विक (सूत्रधार का सहयोगी दूसरा नट) रगमच पर आता है)

पारि—श्रीमान् आज्ञा दे।

सूत्र—(विचार कर) तुम लोक नृत्य की तैयारी मे लगे हुए-से दिखाई पडते हो।

पारिपार्श्विक —भाव ! सट्टअ णच्चिदब्ब । **[भाव ! सट्टकं नर्तितव्यम्]**

सूत्रधार —को उण तस्स कई ? **[क पुनस्तस्य कवि ?]**

पारिपार्श्विक —

भाव ! कहिज्जदु एद को भणई रअणिबल्लहसिहडी ? ।
रहुउलचूडामणिणो महेदपालस्स को अ गुरु ? ॥ ५ ॥

[भाव ! कथ्यतामेतत् को भण्यते रजनीवल्लभशिखण्ड ? ।
रघुकुलचूडामणेर्महेन्द्रपालस्य कश्च गुरु ? ॥ ५ ॥]

सूत्रधार.—(विचिन्त्य) पण्होत्तर क्खु एद । (प्रकाशम्) राअसेहरो **[प्रश्नोत्तर खलु एतत् । राजशेखर.]**

पारिपार्श्विक —सो एदस्स कई । **[स एतस्य कवि]**

सूत्रधार —कि सट्टअ ? **[किं सट्टकम् ?]**

पारिपार्श्विक —(स्मृत्वा) कधिद च्वेब्ब छइल्लेहि । **[कथितमेव विदग्धै]**

सो सट्टओ त्ति भणइ दूर जो णाडिआइ अणुहरइ ।
किं उण एत्थ पबेसअबिक्कभाई ण केवल होंति ॥ ६ ॥

[तत् सट्टकमिति भण्यते दूर यो नाटिकाम् अनुहरति ।
किं पुनरत्र प्रवेशकविष्कम्भकौ न केवल भवत ॥ ६ ॥]

पारि.—महाशय ! सट्टक का अभिनय करना है ।

सूत्र.—तो फिर उसका कवि कौन है ?

पारि.—श्रीमन्, रजनीवल्लभशिखण्ड कौन है ? और रघुकुलशिरोमणि महेन्द्रपाल के गुरु कौन है, यह बतलाइये ॥ ५ ॥

सूत्र.—(स्वगत) यह तो प्रश्न का उत्तर है । (प्रकाश में) राजशेखर ।

पारि.—वह इस सट्टक का लेखक है ।

सूत्र.—सट्टक क्या होता है ?

पारि.—(कुछ स्मरण कर) विद्वानो ने कहा ही है—

जिस प्रबन्ध मे नाटिकाओ का पूरा-पुरा अनुकरण हो, केवल प्रवेशक और विष्कम्भक न पाये जॉय उसे (विदग्ध लोग) सट्टक कहते है ॥ ६ ॥

सूत्रधार—(विचिन्त्य) ता कि किंत्ति सक्किअ परिहरिअ पाउदबधे पउट्टो कई ?
[तत् किमिति सस्कृत परिहृत्य प्रकृतबन्धे प्रवृत्त कवि ?]

पारिपार्श्विक—सब्बभासाचउरेण तेण भणिद ज्जेब्ब। **[सर्वभाषाचतुरेण तेन भणितमेव।]**

जधा **[यथा]**—

अत्थणिबेसा ते ज्जेब्ब सद्दा से ज्जेब्ब परिणमताबि।
उत्तिबिसेसो कब्बो भासा जा होइ सा होदु ॥ ७ ॥

[अर्थनिवेशास्त एव शब्दास्त एव परिणमन्तोऽपि।
उक्तिविशेष काव्य भाषा या भवति सा भवतु ॥ ७ ॥]

अबि अ **[अपि च]**—

परुसा सक्किअबधा पाउदबधो बि होई सुउमारो।
पुरुससमहिलाण जेत्ति अमिहतर तेत्तिअमिमाण ॥ ८ ॥

[परुषा सस्कृतबन्धा प्राकृतबन्धोऽपि भवति सुकुमार।
पुरुषमहिलाना यावदिहान्तर तावत् तेषु ॥ ८ ॥]

सूत्र—(विचार कर) यह तो कहिये कि सस्कृत-भाषा को छोडकर प्राकृत-भाषा मे कवि ने क्यो रचना की ?

पारि—सब भाषाओ मे चतुर उस कवि ने कहा ही है। जैसे—

सस्कृत मे बदल जाने पर भी काव्य का अर्थ वही रहता है, प्राकृत मे भी वे ही शब्द प्रयुक्त होते है। चमत्कारयुक्त वाक्य काव्य कहा जाता है, भाषा चाहे जो हो, सस्कृत अथवा प्राकृत ॥ ७ ॥

और भी—सस्कृत भाषा मे की गई रचनाएँ नीरस होती है, प्राकृत की रचनाएँ ही मधुर होती है। सस्कृत-प्राकृत मे अन्तर पुरुष और स्त्री जैसा होता है। जिस तरह पुरुष कठोर होते है, उसी तरह सस्कृत रचनाएँ कठोर (कर्कश) होती है और जिस तरह स्त्रियाँ सुकुमार होती है, उसी तरह प्राकृत रचनाएँ मधुर और सुकुमार होती है ॥ ८ ॥

सूत्रधार.—ता अप्पा कि ण बण्णिदो तेण ? **[तत् आत्मा किं न वर्णितस्तेन ?]**

पारिपार्श्विक—सुणु, बण्णिदो ज्जेब्ब तक्कालकइण मज्झम्मि मिअकलेहाकहा-आरेण अबराइएण । **[शृणु, वर्णित एव तत्कालकवीना मध्ये मृगाङ्कलेखाकथा-कारेण अपराजितेन ।]**

जधा **[यथा]**—

बालकई कइराओ णिब्भअराअस्स तह उबज्झाओ ।
इत्ति अस्स परपरए अप्पा माहत्तमारुढो ॥ ९ ॥

[बालकवि कविराजो निर्भयराजस्य तथोपाध्याय ।
इत्यस्य परम्परया आत्मा माहात्म्यमारूढ ॥ ९ ॥]

सो अस्स कई सिरिराअसेहरो तिहुअण पि धबलेति ।
हरिणकपालिसिद्धिए णिक्कलका गुणा जस्स ॥ १० ॥

[स अस्य कवि श्रीराजशेखर त्रिभुवनमपि धवलयन्ति ।
हरिणाङ्कप्रतिपड्क्तिसिद्ध्या निष्कलङ्का गुणा यस्य ॥ १० ॥]

सूत्रधार—ता केण समादिट्ठा पउजध ? **[तत् केन समादिष्टा प्रयुङ्ग्ध्वम् ?]**

सूत्र.— तो क्या, कवि ने अपना कुछ वर्णन नही किया है ?

पारि—सुनो, मृगाङ्कलेखा नामक कथा के लेखक तत्कालीन अपराजित कवि ने इसका वर्णन किया ही है । जैसे—

बालकवि, कवियो मे शिरोमणि एव निर्भयराज महेन्द्रपाल का गुरु-इस प्रकार (गुरुशिष्य) की परम्परा से राजशेखर ने स्वय श्रेष्ठता प्राप्त की ॥ ९ ॥

इस सट्टक के लेखक श्रीराजशेखर कविराज है, जिनके निष्कलङ्क गुणो से त्रिभुवन उज्ज्वल हो रहा है । चन्द्रमा तो केवल एक भूतल को ही प्रकाशित करता है, ये तो तीनो लोको मे प्रसिद्ध है ॥ १० ॥

सूत्र.—किसकी आज्ञा पाकर तुमलोक (इसका) प्रयोग (अभिनय) कर रहे हो ।

पारिपार्श्विक —

चाउहाणकुलमौलिआलिआ राअसेहरकइंदगेहिणी ।
भत्तुणो किदिमबतिसुदरी आ पउगइदुमेदमिच्छदि ॥ ११ ॥

[चाहुवानकुलमौलिमालिका राजशेखरकवीन्द्रगेहिनी ।
भर्तु कृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोजयितुमेतदिच्छति ॥ ११ ॥]

किंच—

चदपालधरणीहरिणको चक्कबट्टिपअलाहणिमित्त ।
एत्थ सट्टअबरे रससोत्ते कुतलाहिबसुद परिणेदि ॥ १२ ॥

[चन्द्रपालधरणीहरिणाङ्कश्चक्रवर्त्तिपदलाभनिमित्तम् ।
अत्र सट्टकवरे रसस्रोतसि कुन्तलाधिपसुता परिणयति ॥ १२ ॥]

ता भाव । एहि, अणतरकरणिज्ज सपादेम्ह, जदो महाराअदेईण भूमिअ घेत्तूण अज्जो अज्जभरिआ अ जबणिअतरे बट्टदि । **[तत् भाव । एहि, अनन्तर-करणीय सम्पादयाव, यतो महाराजदेव्योर्भूमिका गृहीत्वा आर्य आर्यभार्या च जवनिकान्तरे वर्त्तते ।]**

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

पारि —चौहान वश मे उत्पन्न हुई, राजशेखर कवीन्द्र की पत्नी अवन्तिसुन्दरी अपने पति की इस रचना का अभिनय कराना चाहती है ॥ ११ ॥

और भी—पृथिवी का चन्द्रमा राजा चन्द्रपाल चक्रवर्तीपद की प्राप्ति के लिएशृङ्गारादि रसो के स्रोत इस सट्टक मे कुन्तल देश के राजा की कन्या कर्पूरमजरी के साथ विवाह सम्बन्ध कर रहा है ॥ १२ ॥

श्रीमन् । चले आगे का काम करे, क्योकि महाराज और देवी की भूमिका मे आपके और आपकी धर्मपत्नी को जवनिका के अन्दर होना है ।

(इस तरह घूमकर निकल आते हैं)

॥ प्रस्तावना ॥

(तत प्रविशति राजा देवी विदूषको विभवतश्च परिवार । सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति)

राजा—देवि दक्खिणाबहणारिंदणदिणि । बड्ढाबीअसि इमिणा बसतारभेण । **[देवि दक्षिणापथनरेन्द्रनन्दिनि ! वर्द्धसेऽनेन वसन्तारम्भेण ।]**

जदो [यत]—

बिबोट्ठे बहल ण देंति मअण णो गधसेल्लाबिला
बेणीआ बिरअति देंति ण तहा अगम्मि कुप्पासअ ।
ज बाला मुहकुकुमम्मि बि घणे बट्टति ठिल्लाअरा
त मण्णे सिसिर बिणिज्जिअ बला पत्ती बसतूसओ ॥ १३ ॥

[बिम्बोष्ठे बहल न ददति मदन नो गन्धतैलाविला
वेणीर्विरचयन्ति ददति न तथाऽङ्गेऽपि कूर्पासकम् ।
यत् बाला मुखकुङ्कुमेऽपि घने वर्त्तन्ते शिथलादरा
तन्मन्ये शिशिर विनिर्जित्य बलात् प्राप्तो वसन्तोत्सव ॥ १३ ॥]

देवी—देव ! अह बि तुज्झ पडिबड्ढाबिआ भविस्स । **[देव ! अहमपि तव प्रतिवर्द्धिका भविष्यामि]**

॥ प्रस्तावना ॥

(तब राजा, रानी, विदूषक और अपने-अपने पद के अनुसार परिचर रङ्गमञ्च पर आते है । सब घूमकर उचित स्थानो पर बैठ जाते है ।)

राजा— देवि ! दक्षिण देश के राजा की पुत्रि ! इस वसन्त की सुषमा से तो तुम बडी प्रसन्न मालूम होती हो । क्योकि—

बालाये— ओष्ठो पर विलेपन का अधिक प्रयोग नही करती है, सुगन्धित तैल से अपने केशपाशे का शृङ्गार नही करती है तथा अपने शरीर पर चोली तक नही पहिनती हैं और वस्त्र का तो कहना ही क्या, मुख पर कुङ्कुम राग तक लगाने का ध्यान नही है । इस कारण मैं समझता हूँ कि शीत ऋतु को जीतकर वसन्त ऋतु का महोत्सव आ गया है ॥ १३ ॥

देवी— महाराज ! मै भी तुम्हारी तरह वसन्तवर्णन करुँगी । जैसे कि—

जधा [यथा]–

छल्लति दतरअणाइ गदे तुसारे ईसीसि चंदनरसम्मि मण कुणति।
एणाहि सुबति घरमज्झमसालिआसु पाअतपुजिअपड मिहुणाइ पेच्छ ॥ १४ ॥

[स्फुरन्ति दन्तरत्नानि गते तुषारे ईषदीषच्चन्दनरसे मन कुर्वन्ति।
इदानी स्वपन्ति गृहमध्यमशालिकासु पादान्तपुञ्जितपट मिथुनानि प्रेक्षस्व ।१४ ।]

(नेपथ्ये)

वैतालिक—जअ पुब्बदिअगणाभुअग । चपाचपककण्णऊर । लीलाणिज्जिअराढदेस । विक्कमक्कतकामरुअ ? हरिकेलीकेलिआरअ । अबमाणिअजच्चसुबण्णबण्ण । सब्बगसुदरत्तणरमणिज्ज । सुहाअ दे होदु सुरहिसमारभो। इह हि–[**जय पूर्वदिगङ्गनाभुजङ्ग । चम्पाचम्पककर्णपूर । लीलानिर्जितराढदेश । विक्रमाक्रान्तकामरूप । हरिकेलीकेलिकारक । अपमानितजात्यसुवर्णवर्ण । सर्वाङ्गसुन्दरत्वरमणीय । सुखाय ते भवतु सुरभिसमारम्भ । इह हि**–]

पडीण गडबालीपुलअणचबला कचिबालाबलीण
माण दो खडअता रइरहसकला लोलचोलप्पिआण।

अब शीत के समाप्त हो जाने पर स्त्री-पुरुषो के दॉत चमकने लगे हैं । चन्दन के लेप की भी कुछ-कुछ इच्छा स्त्री-पुरुषो की हो चली है । अपने-अपने घरो के मध्यभाग मे अब स्त्री पुरुष सोने लगे है और रात्रि मे शीत के बढ जाने के भय से चादर केवल पैरो के पास किनारे बटोर लेते है ॥ १४ ॥

(नेपथ्य में)

वैतालिक—पूर्वदिशा के स्वामी । चम्पा नगर का पालन करने वाले । राढदेश को खेल-खेल मे ही जीतने वाले ! कामरूप देश के विजेता । हिरकेली देश मे विहार करने वाले, पराजित किये हुये लोगो मे सुवर्ण की तरह चमकने वाले, सब अङ्गो के सौन्दर्य से युक्त हे राजन् ! तुम्हारी जय हो, वसन्त ऋतु का आगमन तुम्हारे लिए सुखदायक हो । यहॉ पर—

कण्णाडीण कुणता चिउरतरलणं कुतंलीणं पिएसु
गुफता णेहगंथिं मलअसिहरिणो सीअला बाति बाआ ।। १५ ।।

[पाण्डीना गण्डपालीपुलकनचपला काञ्चीबालाबलीना
मान द्वि खण्डयन्तो रतिरभसकरा लोलचोलाङ्गनानाम् ।
कर्णाटीना कुर्वन्तो कुन्तलतरलन कुन्तलीना प्रियेषु
गुम्फन्त स्नेहग्रन्थि मलयशिखरिण शीतला वान्ति वाता ।। १५ ।।]

(अत्रैव)

द्वितीय —

जाद कुकुमपकलीढमरठीगडण्पह चपअ
थोआवट्टिअदुद्धमुद्धकलिआ पप्फुल्लिया मल्लिआ ।
मूले सामलमग्गलग्गभमलं लक्खिज्जए किंसुअ
पिज्जत भमलेहिं दोहिं बि दिसाभाएसु लग्गेहिं ब ।। १६ ।।

[जात कुङ्कुमपङ्कलीढमहाराष्ट्रीगण्डप्रभ चम्पक
स्तोकावर्त्तितदुग्धमुग्धकलिका प्रोत्फुल्लिता मल्लिका ।
मूले श्यामलमग्रलग्नभ्रमर लक्ष्यते किशुक
पीयमान मधुपाभ्या द्वाभ्यामपि दिशाभागेषु लग्नाभ्यामिव ।। १६ ।।]

पाण्डदेश की रमणियो के कपोलो मे रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली, काञ्ची देश की कामिनियो को अपने प्रिय सम्बन्धी प्रणयकोप को साय प्रात भग करने वाली, चोलदेश की चपल नारियो को सभोग के लिये प्रेरित करने वाली, कर्णाट देश की स्त्रियो के केशपाश को शिथिल बनाती हुई, कुन्तल देश की स्त्रियो को अपने प्रेमियो के आलिगन-पाश मे बाधती हुई मलयाचल की ठण्ढी हवाये चल रही है ।। १५ ।।

दूसरा वैतालिक—कुङ्कुम राग लगे हुए महाराष्ट्र की स्त्रियो के कपोलो की तरह चम्पा फूल पीला और लाल हो गया है । कुछ-कुछ बिलोए हुए दुग्ध की तरह सुन्दर कलियो वाली मल्लिका पुष्पलता भी खिल उठी है । मूलभाग मे काले वर्ण का तथा अग्रभाग मे भौरो से युक्त पलाश-कुसुम ऐसा लगता है जेसे कि इसके दोनो ओर दो भौरे बैठकर इसका रसपान कर रहे हो ।। १६ ।।

राजा—पिए बिब्भमलेहए ! एक्को अह बड्ढाबओ तुज्झ, एक्का तुम बड्ढाबिआ मज्झ । कि उण दुबे बि अम्हे बड्ढाविआ कचणचड—रअणचडेहिं बदीहि ? ता बिब्भमगब्बप्पअट्टाबिअ तरुणीण, णट्टाबअ मलअमारुद दोलिदाणच्चणीण, चारुप्पपचिदपचम कलअठिकठकदलेसु, कदलिअकदप्पकोअडदडखडिदचडिम, सिणिद्धबधु बसुधरापुरधीए बिसारिअप्पसिदिप्पमाणे अच्छिणी महुच्छव जहिच्छ पेक्खदु देबी । **[प्रिये विभ्रमलेखे ! एकोऽह वर्द्धापकस्तव, एका त्व वर्द्धापिका मम। कि पुनर्द्धावपि आवा वर्द्धापितौ काञ्चनचण्डरत्नचण्डाभ्या वन्दिभ्याम् ? तद्विभ्रमगर्वप्रवर्त्तक तरुणीना नर्त्तक मलयमारुतान्दोलितलतानर्त्तकीना, चारुप्रपञ्चिपञ्चम कलकण्ठीकण्ठकन्दलेषु, कन्दलितकन्दर्पकोदण्डदण्डखण्डित-चण्डिमान, स्निग्धबान्धव वसुन्धरापुरन्ध्र्या विस्तार्य प्रसृतिप्रमाणे अक्षिणी मधूत्सव यथेच्छ प्रेक्षता देवी ।]**

देवी—जधा किल णिवेदिद बदीहि, प्पउट्टा ज्जेब्ब मलआणिला **[यथा किल निवेदित बन्दिभ्याम्; प्रवृत्ता एव मलयानिला ।]**

तधा अ **[तथा च]**—

लकातोरणमालिआतरलिणी कुभुब्भवस्सास्समे
मददोलिअचदणद्दुमलदाकप्पूरसपक्किणो ।

राजा—प्रिये विभ्रमलेखे !मैं तुम्हे प्रसन्न करता हूँ और तुम मुझे प्रसन्न करती हो, किन्तु रत्नचण्ड और काञ्चनचण्ड ये दोनो वैतालिक हम दोनो को प्रसन्न करते है । तरुणियो मे विलास और गर्व उत्पन्न करने वाला, मलयाचल की हवाओं से लहराती हुई लतारूपी नर्तकियो को नचाने वाला, कोकिलो के कण्ठसमूह मे पञ्चम स्वर प्रेरित करने वाला, नवप्रादुर्भूत कामदेव के धनुष से प्रेमिकाओ के अपने प्रियसम्बन्धी कोप को दूर करने वाला, बन्धु-बान्धवो मे प्रेम उत्पन्न करने वाला, वसुन्धरारूपी रमणी का यह वसन्तोत्सव है, हे देवी, अपनी ऑखो को हथेली बराबर फैलाकर इच्छानुसार देखो ।

देवी—जैसा कि वैतालिको ने कहा, ठीक ही है । मलयाचल की हवाये वास्तव मे चलने लगी है । जैसे कि —

ककोलीकुलकपिणो फणिलदाणिप्पट्टणट्टाबआ
चड चुबिदतबबण्णिसलिला बाअति चित्ताणिला ॥ १७ ॥

[लङ्कातोरणमालिकातरलिन कुम्भोद्भवस्याश्रमे
मन्दान्दोलितचन्दनद्रुमलताकर्पूरसम्पर्किण ।
कङ्कोलीकुलकम्पिन फणिलतानिष्पष्टनर्त्तका-
श्चण्ड चुम्बितताम्रिपर्णीसलिला वान्ति चैत्रानिला ॥ १७ ॥]

अबि अ [**अपि च**]—

माण मुचध देह बल्लहजणे दिट्टिं तरंग्गुत्तर
तारुण्ण दिअहाइ पच दह बा पीणत्थणत्थभण ।
इत्थ कोइलमजु सिजणमिसा देअस्स पचेसुणो
दिण्णा चित्तमहूसवेण भुअणे आणब्व सब्बकसा ॥ १८ ॥

[मान मुञ्चत ददत वल्लभजने दृष्टि तरङ्गोत्तरा
तारुण्य दिवमानि पञ्च दश वा पीनस्तनस्तम्भनम् ।
इत्थ कोकिलमञ्जुशिञ्जनमिषाद् देवस्य पञ्चेषो-
र्दत्ता चैत्रमहोत्सवेन भुवने आज्ञेव सर्वङ्कषा ॥ १८ ॥]

लका नगरी के बहिर्द्वार पर स्थित मालाओ को हिलाने वाली, अगस्त्य ऋषि के आश्रम मे अर्थात् दक्षिण दिशा मे मन्द-मन्द हिलती हुई चन्दन और कर्पूर की लताओ के सौरभ से युक्त, कङ्कोली (काली मिर्च) की लताओ को कँपाने वाली, ताम्बूलवल्लियो को मन्द-मन्द नचाने वाली और ताम्रपणी नदी के जल का अत्यन्त स्पर्श लिये हुई चैत्र मास की हवाये चल रही है । यहाँ पर वायु के शैत्य, मान्द्य और सौरभ इन तीनो गुणो का वर्णन किया गया है ॥ १७ ॥

और भी—मान को छोडो, प्रियजनो को प्रेमभरी दृष्टि दे देखो, स्तनो के उभार से युक्त यह यौवन केवल पाँच-दस दिन तक ही रहने वाला है । कोकिल की मधुर कूक के द्वारा कामदेव की इस सर्वव्यापी आशा को चैत्रमहोत्सव घोषित करता-सा जान पडता है ॥ १८ ॥

विदूषक—भो । तुम्हाण सब्बाण मज्झे अहम् एक्को कालक्खरिओ, जस्स मे ससुरस्स ससुरो पडिअघरे पुत्थिआइ बहतो आसि ।**[भो । युष्माक सर्वेषा मध्येऽहमेक कालाक्षरिक, यस्य मे श्वशुरस्य श्वशुर पण्डितगृहे पुस्तकानि वहन्नासीत् ।]**

चेटी—(विहस्य) । तदो आगद दे अण्णएण पडित्तए । **[तत आगत ते अन्वयेन पाण्डित्यम् ।]**

विदूषक—(सक्रोधम्) आ दासीए धूए । भबिस्सकुट्टणि । णिल्लक्खणे । अबिअक्खणे । ईदिसोऽह मुक्खो जो तए बि उवहसिआमि ? अण्ण च, हे परपुत्तविट्टालिणि । रच्छालोट्टणि । भमलटेटे । टेटाकराले । कोससदापहारिणि । दुट्टसघडिदे । अहवा हत्थककण कि दप्पणेण पेक्खीअदि ? **[आ दास्या पुत्रि ! भविष्यत्कुट्टनि । निर्लक्षणे । अविचक्षणे । ईदृशोऽह मूर्खो यस्त्वयाऽप्युपहस्ये ? अन्यच्च, हे परपुत्रविट्टालिनि । रथ्यालुण्डिनि । भ्रमरटेण्टे । टेण्टाकराले । कोषशतापहारिणि । दुष्टसघटिते । अथवा हस्तकङ्कण कि दर्पणेन दृश्यते ?]**

विचक्षणा—(विभाव्य) एब्ब णेद, तुरगस्स सिग्ध तणे कि साक्खिणो पुच्छीअति ? ता बण्णअ बसतअ । **[एवमेतत्, तुरङ्गस्य शीघ्रत्वे किं साक्षिण पृच्छ्यन्ते ? तद्वर्णय वसन्तम् ।]**

विदूषक—तुम सब मे मै ही एक मूर्ख हूँ जिसके ससुर का ससुर भी पडितो के यहाँ पुस्तके उठाता रहता था ।

चेटी—(हँस कर) तब तो तुम खानदानी ठहरे ।

विदूषक—(क्रोध के साथ) अरे दासी की पुत्रि, कुट्टिनी होने वाली, निर्लक्षण और मूर्ख । मै क्या ऐसा मूर्ख हूँ कि तू भी मेरा उपहास करे । दूसरो के पुत्रो को भ्रष्ट करने वाली, सुरापानादि से गली मे लोटने वाली, भ्रमर की तरह इधर-उधर घूमनेवाली, झगडालू, मिथ्या शपथ खाने वाली और दुश्चरित्रो के साथ रहने वाली, हाथ कगन की आरसी क्या ?—तेरा चरित्र तो सबको मालूम ही है ।

विचक्षणा—हॉ, ऐसा ही है, घोडे की चाल क्या गवाहो से पूछी जाती है ? जरा वसन्त का वर्णन करो तो ।

विदूषक —तुम उण पजरगदा सारिअब्ब कुरुकुराअती चिट्ठसि, ण कि पि जाणेसि, ता पिअबअस्सस्स देबीए अ पुरदो पठिस्स जदो ण कत्थूरिआ कुग्गामे वणे बा बिक्किणीअदि, ण सुवण्ण कसबट्टिअ विणा सिलापट्टए कसीअदि । **[त्व पुन पञ्जरगता शारिकेव कुरुकुरायमाणा तिष्ठसि, न किमपि जानासि, तत् प्रियवयस्यस्य देव्याश्च पुरत पठिष्यामि, यतो न कस्तूरिका कुग्रामे वने वा विक्रीयते, न सुवर्णे कषपट्टिकां विना शिलापट्टके कष्यते ।]**

राजा-पिअबअस्स ! ता पढ़, सुणीअदु । **[प्रियवयस्य, तत्पठ, श्रूयताम्]**

विदूषक —(पठति)—

फुल्लक्कुर कलमकूरसम बहति जे सिदुबारबिडबा मह बल्लभा दे।
जे गालिअस्स महिसीदहिणी सरिच्छा ते किं च मुद्धबिअइल्लपसूणपुजा ।१९ ।

[पुष्पोत्कर कलमकूरसम वहन्ति ये सिन्धुवारविटपा मम वल्लभास्ते ।
ये गालितस्य महिषीदध्न सदृक्षा ते किञ्च मुग्धविचकिलप्रसूनपुञ्जा ॥ १९ ॥]

विचक्षणा—णिअकतारजणजोग्ग दे बअण । **[निजकान्तारञ्जनयोग्य वचनम् ।]**

विदूषक –ता उआरबअणे ! तुम पढ । **[तत् उदारवचने ! त्व पठ ।]**

विदूषक— तू तो पिजडे की मैना की तरह कुरकुराती ही है, कुछ भी तो नही जानती । मै अपने प्रियवयस्य राजा और महारानी के सामने ही पढूँगा । कस्तूरी छोटे-मोटे गॉव मे अथवा जगल मे नही बेची जाती, न सोना ही कसौटी के बिना पत्थर पर घिसा जाता है ।

राजा—प्रियवयस्य ! लो अपनी कविता पढो, हम सुने ।

विदूषक—(पढता है)—कलमो (एक प्रकार का चावल) के ओइन की तरह श्वेतवर्ण के फूल जिन सिन्धुवार (सिन्धुवार) वृक्षो पर आते है, वे मुझे प्रिय है । बिलोए हुए भैस के दही के समान स्वच्छ विचकिल के फूल भी मुझे बहुत प्रिय है ॥ २० ॥

विचक्षणा—तुम्हारी कविता तुम्हारी पत्नी को प्रसन्न करने लायक है ।

विदूषक—अयि प्रियभाषिणि ! तुम अपनी कोई कविता सुनाओ ।

देवी—(किञ्चित् स्मित्वा) सहि बिअक्खणे। अम्हाण पुरदो तुम गाढ कइत्तणेण उत्ताणा होसि, ता पढ सपद अज्जउत्तस्स पुरदो सअ—किद किंपि कब्ब, जदो त कब्ब ज सहाए पढीअदि, त सुबण्ण ज कसवट्टए णिबट्टेदि, साघरिणी जा पिअ रजेदि, सो पुत्तो जो कुल उज्जलेदि। **[सखि विचक्षणे! अस्माक पुरतस्त्वं गाढ कवित्वेन उत्ताना भवसि, तत् पठ साम्प्रतमार्यपुत्रस्य पुरत स्वयकृत किमपि काव्यम्, यत तत् काव्य यत् सभाया पठ्यते, तत् सुवर्ण यत् कषपट्टिकाया निवर्त्तते, सा गृहिणी या पतिं रञ्जयति, स पुत्रो य कुलमुज्ज्वलयति।]**

विचक्षणा—ज देबी आणबेदि। **[यत् देवी आज्ञापयति।]** (पठति)—

जे लकागिरिमेहलाहि खलिदा संभोअखिण्णोरई
प्फारप्फुल्लफणाबलीकबलणे पत्ता दरिद्दत्तण।
ते एण्हिं मलआणिला विहरिणीणीसाससपक्किणो
जादा झत्ति सिसुत्तणे बि बहला तारुण्णपुण्णा बिअ॥ २०॥

[ये लङ्कागिरिमेखलाया स्खलिता सम्भोगखिन्नोरगी-
स्फारोत्फुल्लफणावलीकवलने प्राप्ता दरिद्रत्वम्।
त इदानी मलयानिला विरहिणीनि श्वाससम्पर्किणो
जाता झटिति शिशुत्वेऽपि बहलास्तारुण्यपूर्णा इव॥ २०॥]

देवी—(कुछ मुस्कराकर) सखि विचक्षणे! हमारे सामने तुम कविता करने की बडी डीग मारती हो। आज आर्यपुत्र के सामने अपनी बनाई हुई कोई कविता पढो कविता उसी को कहते है जो सभा मे पढी जाय, सोना कसौटी पर कसने से ही शुद्ध या अशुद्ध कहा जा सकता है, स्त्री वही ठीक समझी जाती है जो पति को प्रसन्न करे, पुत्र वही अच्छा कहलाता है जो कुल को उज्ज्वल करे।

विचक्षणा—जैसी महारानी की आज्ञा। (पढ़ती है)—

मलयाचल की वे हवाएँ जो लङ्का के पर्वत से रुक गइ थी और सम्भोग के बाद थकी हुई सर्पिणियो के अपने बडे और फैले हुए फनो से सास लेने के कारण क्षीण हो गई थी, अब फिर शीघ्र ही विरहिणियो के नि श्वास का सम्पर्क पाकर शैशव-काल मे ही प्रगल्भ और वेगवती हो चली हैं॥ २०॥

राजा—सच्च बिअक्खणा बिअक्खणा चदुरत्तणेण उत्तिण, ता किमण्ण कइण बि कई । **[सत्य विचक्षणा विचक्षणा चतुरत्वेनोक्तीनाम्, तत् किमन्यत् कवीनामपि कवि ।]**

देवी—(विहस्य) । कइचूडामणित्तणेण ट्ठिदा एसा । **[कविचूडामणित्वेन स्थितैषा ।]**

विदूषक—(सक्रोधम्) ता उज्जुअ ज्जेब्ब कि ण भणीअदि देबीए, अच्चुत्तमा बिअक्खणा कब्बम्मि, अच्चधमो कबिजलबम्हणो त्ति ? **[तत् ऋजु एव कि न भण्यते देव्या, अत्युत्तमा विचक्षणा काव्ये, अत्यधम कपिञ्जलब्राह्मण इति ?]**

विचक्षणा—अज्ज ! मा कुप्प, कब्ब ज्जेब्ब कइत्तण पिसुणोदि, जदो णिअकतारजणजोग्ग णिओदरभरित्तण । णिदणिज्जे बि अत्थे सुडमारा दे वाणी लबत्थणीए बिअ एक्कावली तुदिलाए बिअ कचुकिआ, ठेराए बिअ कडक्खबिक्खेवो कट्टिकेसाए बिअ मालदीकुसुममाला, काणाए बिअ कज्जलसलाआ ण सुट्ठुदर भादि रमणिज्जा । **[आर्य ! मा कुप्य, काव्यमेव कवित्व पिशुनयति, यतो निजकान्तारञ्जनयोग्य निजोदरम्भरित्वम् । निन्दनीयेऽप्यर्थे सुकुमारा ते वाणी लम्बस्तन्या इव एकावली, तुन्दिलाया इव कञ्चुलिका, टेराया इव कटाक्षविक्षेप, कर्तितकेशाया इव मालती कुसुममाला, काणाया इव कज्जलशलाका न सुष्ठुतरं भाति रमणीया ।]**

राजा—अपने वचन-चातुर्य से विचक्षणा वास्तव मे विचक्षणा (विदुषी) है और क्या कहा जाय, कवियो की भी कवि है ।

देवी—(हॅसकर) यह कवियो मे चूड़ामणि है ।

विदूषक—(क्रोध के साथ) महारानी स्पष्ट ही क्यो नही कह देती कि विचक्षणा कविता करने मे बडी चतुर है और कपिञ्जल ब्राह्मण बडा तुच्छ है ।

विचक्षणा—आर्य ! क्रोध मत करो, कविता से ही कवि का पता चलता है । तुम्हारे पेटू होने से तुम्हारी पत्नी ही प्रसन्न हो सकती है । भावो के सुन्दर न होने से तुम्हारी सुकुमार वाणी भी उसी तरह अच्छी नही लगती, जिस तरह लम्बे स्तन वाली स्त्री को एक लड वाला मोतियो का हार, लम्बे पेटवाली स्त्री को चोली, ऐची ऑख वाली का कटाक्ष मारना, कटे हुए केशो वाली को मालती पुष्पो का हार और कानी स्त्री को काजल अच्छा नही लगता है ।

विदूषक -तुज्झ उण रमणिज्जेऽबि अत्थे ण सुदरा सद्दाबली कणअकडिसुत्तए बिअ लोहकिंकिणीमाला, पदिबट्टे बिअ टसरबिरअणा, गोरगीए बिअ चदणचच्चा ण चारुत्तणमबलवेदि । तहा बि तुम बण्णीअसि । **[तव पुन रमणीयेऽप्यर्थे न सुन्दरी शब्दावली कनककटिसूत्र इव लोहकिङ्किणीमाला, प्रतिपट्ट इव त्रसरविरचना, गौराङ्ग्या इव चन्दनचर्चा न चारुत्वमवलम्बते । तथाऽपि त्व वर्ण्यसे ।]**

विचक्षणा— अज्ज मा कुप्प का तुम्हेहि सह पडिप्पद्धा ? जदो तुम णाराओ बिअ णिरक्खरो बि रअणतुलाए णिउजीआसि । अह उज तुले ब्ब लद्धक्खरा बि ण सुबण्णभडे बिणीउषीआमि । **[आर्य । का कुप्य । का युष्माभि सह प्रतिस्पर्द्धा ? यतस्त्व नाराच इव निरक्षरोऽपि रत्नतुलाया नियुज्यसे । अह पुनस्तुलेव लब्धाक्षरेऽपि न सुवर्णभाण्डे विनियुज्ये ।]**

विदूषक —एब्ब मह भणतीए तुह बाम दक्खिण अ जुहिदिठरजेट्ठभाआरणमहेज अगजुअस उप्पाडयिस्स । **[एव मम भणन्त्यास्तव वाम दक्षिणा च युधिष्ठिरज्येष्ठभ्रातृनामधेयमङ्गयुगलमुत्पाटयिष्यामि ।]**

विचक्षणा—अह बि उत्तरफग्गुणीपुरस्सरणक्खत्तणामहेअ अग तुह झत्ति खडिस्स । **[अहमपि उत्तरफल्गुनीपुर सरनक्षत्रनामधेयमङ्ग तव झटिति खण्डयिष्यामि ।]**

विदूषक—ऑखो के सुन्दर होने पर भी तुम्हारी शब्दावली सुन्दर नही है और तुम्हारी कविता उसी तरह अच्छी लगती है जेसे सुवर्ण के कटिसूत्र मे लोहे के घुँघरू, वस्त्र की उलटी तरफ कसीदे का काम या गौरवर्ण वाली स्त्री के चन्दन का लगाना। लेकिन फिर भी तुम लोगो के द्वारा कवि मानी जाती हो ।

विचक्षणा—आर्य ! क्रोध मत करो । मेरी तुम्हारे साथ बराबरी ही क्या ? तुम तो निरक्षर होते हुए भी नाराच की तरह रत्नो के तोलने मे काम आते हो मै साक्षर होते हुए भी सोने तोलने के काम मे नही आती ।

विदूषक—इस तरह मेरे सबध मे कहने पर मै तेरे दोनो कान उखाड लूँगा ।

विचक्षणा— मै भी तुम्हारे हाथ शीघ्र काट डालूँगी ।

राजा—बअस्स ! मा ! एब्ब भण, कइतमत्तणे ट्ठिदा एसा । **[वयस्य ! मैव भण, कवितमत्वे स्थितैषा ।]**

विदूषक—(सक्रोधम्) उज्जुअ ता कि ण भणइ अम्हाण चेडिआ हरिअद-णदि-अद-कोट्टिसहालप्पहुदीण बि पुरदो सुकइ त्ति ? **[ऋज्वेष तत् किं न भण्यते, अस्माक चेटिका हरिचन्द्र-नन्दिचन्द्र-कोटिशहालप्रभृतीनामपिपुरत सुकवि-रिति ?]**

राजा—एब्ब ण्णेद **[एवमेतत् ।]**

विदूषक—(सक्रोध परिक्रामति)

विचक्षणा—तहिं गच्छ जहि मे पढमा साडिआ गदा । **[तत्र गच्छ, यत्र मे प्रथमा शाटिका गता ।]**

विदूषक—(वलितग्रीवम्) तुअ उण तहिं गच्छ, जहि मे मादाए पढमा दताबली गदा । ईदिसस्स राअउलस्स भद्द भादु, जहि चेडिआ बम्हणेण सम समसीसिआए दीसदि । मइरा पचगब्ब च एकस्सि भडए कीरदि, कच्च माणिक्क च सम आहरणे पउजीअदि । **[त्व पुनस्तत्र गच्छ यत्र मे मातु प्रथमा दन्तावली गता । ईदृशस्य राजकुलस्य भद्र भवतु, यत्र चेटिका ब्राह्मणेन सम समशीर्षिकया दृश्यते, मदिरा पञ्चगव्य चैकस्मिन् भाण्डे क्रियते, काचं माणिक्य च सममाभरणे प्रयुज्यते ।]**

राजा—मित्र ! ऐसा मत कहो । यह वस्तुत कवि है ।

विदूषक—(क्रोध के साथ) तो स्पष्ट ही क्यो नही कह देते कि हमारी चेटी हरिचन्द्र, नन्दिचन्द्र और कोटिश हाल इत्यादि कवियो से भी बढ़कर है ।

राजा—हॉ, ऐसा ही समझो ।

विदूषक—(क्रोध मे घूमता है)

विचक्षणा—वहॉ जाओ, जहॉ मेरी पहली साडी गई अर्थात्सड जाओ ।

विदूषक—(गर्दन टेढ़ी कर) तू भी वहॉ जा जहॉ मेरी माता की पहिली दॉतो की पड्क्ति गई अर्थात् मर जा । ऐसे राजकुल का कल्याण हो जहॉ दासी ब्राह्मण के साथ प्रतिस्पर्धा करती है । मदिरा और पञ्चगव्य एक ही पात्र मे रखे जाते है और कॉच-माणिक्य एक साथ आभूषण के काम मे लाये जाते है ।

चेटी—इह राअउले त ते भोदु कठट्ठिद, ज भअब तिलोअणो सीसे समुब्वहदि, तेण च ते सुह चूरीअदु जेण असोअतरू दोहद लहदि। **[इह राजकुले तत्ते भवतु कण्ठस्थित, यद् भगवांस्त्रिलोचन शीर्षे समुद्वहति। तेन च ते मुख चूर्ण्यता, येनाशोकतरुर्दोहद लभते।]**

विदूषक—आ। दासीए पुत्ति। टेटाकराले। कोससदबचणि। रच्छालोट्टणि। एव्व म भणसि? ता मह महवम्हणस्स भणिदेण त तुम लहसु, ज फग्गुणसमए सोहजणो जणदो लहदि, ज पामराहितो बइल्लो लहदि। **[आ दास्या पुत्रि। टेण्टाकराले। कोषशतवञ्चनि। रथ्यालुण्ठिनि। एव मा भणसि? तन्मम महा-ब्राह्मणस्य भणितेन तत् त्व लभस्व, यत् फाल्गुनसमये शोभाञ्जनो जनाल्लभते, यत् पामरेभ्यो बलीवर्दो लभते।]**

विचक्षणा—अह उण तुम्ह एव्व भण तस्स णेउरस्स विअ पाअलग्गस्स पाएण मुह चूरइस्स। अण्ण च, उत्तरासाढापुरस्सरणक्खत्तणामहेअ अगजुअल उप्पाडिअ घल्लिस्स। **[अह पुनस्तवैव भणतो नूपुरस्येव पादलग्नस्य पादेन मुख चूर्ण-यिष्यामि। अन्यच्च, उत्तराषाढापुर. सरनक्षत्रनामधेयमङ्गयुगलमुत्पाट्य क्षेप्स्यामि।]**

चेटी—इस राजकुल मे तरे गले मे वह डाला जाय, जिसको कि भगवान् शङ्कर अपने ललाट पर धारण करते है अर्थात् तेरे गले मे अर्धचन्द्राकार हाथ डाल कर तुझको राजकुल से निकाल दिया जाय। उससे तेरा मुँह तोड दिया जाय जिससे कि अशोक वृक्ष खिलता है अर्थात् तेरा मुँह पाद प्रहार से तोड दिया जाय।

विदूषक—अरे दासी की पुत्रि। झगडालू। दूसरो के धन को ठगने वाली। गलियो मे पुरुषो के साथ घूमने वाली। तू मेरे लिए इस तरह कहती है? मुझ महाब्राह्मण के वाक्य से तेरी वही दशा हो जो फागुन मे शोभाञ्जन नामक वृक्ष की लोगो से होती है और बैल की दुर्जनो द्वारा की जाती है। अर्थात् जिस तरह फागुन मे शोभाञ्जन (सहजन) वृक्ष की शाखाएँ लोग काट देते है और बैल की नाक जिस तरह छेद दी जाती है उसी तरह लोग तेरे हाथ काट दे और नाक छेद डाले।

विचक्षणा—पैर मे बँधे हुए नूपुरो के समान तू व्यर्थ प्रलाप करता है, मै अपने पैर से तेरा मुँह तोड दूँगी और कान उखाड लूँगी।

विदूषक—(सक्रोध परिक्रामन्, जवनिकान्तरे किञ्चिदुच्चै) ईदिस राअउल दूरे बज्जीअदि, जहि दासी बम्हणेण सम पडिप्पद्धा करेदि । ता अज्ज प्पहुदि णिअगेहणीए बसुधाराणामहेआए बम्हणीए चलणसुस्सूअओ भविअ गेहे जेव्व चिट्ठिस्स । **[ईदृश राजकुल दूरे वर्ज्यते, यत्र दासी ब्राह्मणेन सम प्रतिस्पर्द्धा करोति। तदद्य प्रभृति निजगेहिन्या वसुन्धरानामधेयया ब्राह्मण्याश्चरणशुश्रूषुर्भूत्वा गेह एव स्थास्यामि ।]**

(सर्वे हसन्ति)

देवी—अज्जउत्त ! कीदिसी कबिजलेण विणा गोट्ठी ? कीदिसी णअणजणेण विणा पसाहणलच्छी ? **[आर्यपुत्र ! कीदृशी कपिञ्जलेन विना गोष्ठी ? कीदृशी नयनाञ्जनेन प्रसाधनलक्ष्मी ?]**

(आकाशे)

ण हु ण हु आगमिस्स, अण्णो को बि पिअवअस्सो अण्णेसीअदु । अहवा एसा दुट्ठदासी लबकुचा टप्परकण्णी पडिसीसअ देइअ महट्ठाणे उबहसणत्थ करोदु । अहमेक्को मुदो तुम्हाणा सब्बाण मज्झे, तुम्हे उण बरससअ जीअघ । **[न खलु न खलु आगमिष्यामि, अन्य कोऽपि प्रियवस्योऽन्विष्यताम्। अथवैषा**

विदूषक—(क्रोध मे घूमता हुआ, यवनिका के भीतर कुछ जोर से) ऐसे राजकुल को दूर से ही छोडना अच्छा, जहॉ पर दासी ब्राह्मण के साथ प्रतिस्पर्धा करती है । आज से अपनी गृहिणी वसुन्धरा के चरणो का सेवक होकर घर पर ही रहूँगा ।

(सभी हॅसते हैं)

देवी—आर्यपुत्र ! कपिञ्जल के बिना गोष्ठी का क्या आनन्द ? ऑखो मे काजल लगाये बिना शृङ्गार की शोभा ही क्या ?

(आकाश में)

मै नही जाऊॅगा, नही आऊॅगा, कोई और दूसरा प्रिय मित्र ढूँढ लो । अथवा लम्बे स्तनो वाली और सूप की तरह कानो वाली इस दुष्ट दासी को ही पगडी बॉध कर मेरी जगह उपहास करने के लिए रख लो । तुम सब मे मै ही एक मरा हूॅ, तुम सब सौ बरस जिओ ।

दुष्टदासी लम्बकुचा टप्परकर्णा प्रतिशीर्षक दत्त्वा मम स्थाने उपहसनार्थ क्रियताम्। अहमेको मृतो युष्माक सर्वेषा मध्ये, यूय पुनर्वर्षशत जीवत (इति निष्क्रान्त)]

विचक्षणा—मा अणुबधेहि । अणुणअकक्कसो क्खु कबिजलबम्हणो सलिलसित्तो विअ सणगुणगठी चिर गाढअरो भोदि । ण दसणीअ दीसद । **[मा अनुबधान। अनुनयकर्कश खलु कपिञ्जलब्राह्मण सलिलसिक्त इव शणगुणग्रन्थिश्चिर गाढतरो भवति। ननु दर्शनीय दृश्यताम्]**

राजा—(समन्तादवलोक्य)—

गाअतगोबअबहुपदपेखिलासु दोलासु बिब्भमबदीसु णिसण्णदिट्ठी ।
ज जादि खजिदतुरगरहो दिणेसो तेणेव्व होति दिअदा अइदीहदीहा ।। २१ ।।

[गायद्गोपवधूपदप्रेङ्खितासु दोलासु विभ्रमवतीषु निषण्णदृष्टि ।
यदयाति खञ्जिततुरङ्गरथो दिनेश तेनैव भवन्ति दिवसा अतिदीर्घदीर्घा । २१ ।]

(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

विदूषक —आसणमासण । **[आसनमासनम्]**

राजा—कि तेण ? । **[कि तेन ?]**

विचक्षणा—आग्रहपूर्वक इसका आदर मत करो । अनुनय करने से यह कपिञ्जल और भी कठोर हो जाता है, जैसे की सन की रस्सी मे लगी हुई गॉठ पानी पडने पर और भी कठोर हो जाती है । इसका जरा आचरण देखो तो ।

राजा—(चारो तरफ देख कर)—

गाती हुई और झूले पर चढी हुई गोपियो के चरणो से आन्दोलित तथा मन की हरने वाले झूलो पर सूर्य की दृष्टि के कारण रुके घोडो की गति विकल हो गई और उसका रथ अस्थिर रूप से चलता मालूम पडता है । इसी कारण दिन अधिक लम्बे होते जाते है ॥ २१ ॥

(यवनिका बिना हटाये रगमच पर आकर)

विदूषक—आसन लाओ, आसन लाओ ।

राजा—किसलिए ।

विदूषक—भइरवाणदो आअच्छदि। [भैरवानन्द आगच्छति]

देवी—कि सो, जो जणवअणादो अच्चब्भुदसिद्धी सुणीअदि? **[कि स, यो जनवचनादत्यभुतसिद्धिः श्रूयते?]**

विदूषक—अध इ? **[अथ किम्?]**

राजा—पवेसअ **[प्रवेशय]**

(विदूषको निष्क्रम्य तेनैव सह प्रविशति)

भैरवानन्द—(किञ्चिन्मदमभिनीय पठति)—

मतो ण ततो ण अ किं पि जाण झाण च णो कि पि गुरुप्पसादा।
मज्ज पिआमो महिल रमामो मोक्ख च जामो कुलमग्गलग्गा॥ २२॥

[मन्त्रो न तन्त्र न च किमपि ज्ञान ध्यानञ्च नो किमपि गुरुप्रसादात्।
मद्य पिबामो महिला रमयामो मोक्षञ्च याम कुलमार्गलग्ना॥ २२॥]

विदूषक—भैरवानन्द आ रहा है।

देवी—क्या वह ही जिसके बारे मे सुना जाता है कि वह बडी अद्भुत सिद्धियो वाला है।

विदूषक—और क्या?

राजा—आने दो।

(विदूषक बाहर जाता है और भैरवानन्द के साथ प्रवेश करता है)

भैरवानन्द—(कुछ मदिरापान का अभिनय करके पढता है)—

न कोई मन्त्र जानता हूँ, न कोई शास्त्र जानता हूँ, गुरु मत के अनुसार कोई ध्यान अथवा समाधि लगाना भी नही जानता हूँ। शराब पीता हूँ, दूसरो की स्त्रियो के साथ सहवास करता हूँ और मोक्ष पाता हूँ यही हमारा कुलाचार है॥ २२॥

अबि अ **[अपि च]**—

**रडा चडा दिक्खिदा धम्मदारा मज्ज मस पिज्जए खज्जए अ।
भिक्खा भोज्ज चम्मखड च सेज्जा कोलो धुम्मो कस्स णो भादि रम्मो ? ।२३।**

[रण्डा चण्डा दीक्षिता धर्मदारा मद्य मास पीयते खाद्यते च।
भिक्षा भोज्य चर्मखण्डञ्च शय्या कौलो धर्म कस्य नो भाति रम्य ? ॥ २३ ॥]

किं च—

**मुत्ति भणति हरिबम्हीमुहादिदेआ झाणेण वेअपठणेण कदुक्किआए।
एक्केण केबलमुमादइएण दिट्ठो मोक्खो सम सुरअकेलिसुरारसेहिं ॥ २४ ॥**

[मुक्ति भणन्ति हरिब्रह्ममुखादिदेवा ध्यानेन वेदपठनेन क्रतुक्रियाभि ।
एकेन केवलमुमादयितेन दृष्टो मोक्ष सम सुरतकेलिसुरारसै ॥ २४ ॥]

राजा—एद आसण, उवबिसदु भईरबाणदो। **[इदमासनम्, उपविशतु भैरवानन्द]**

भैरवानन्द—(उपविश्य) कि कादब्ब ? **[किं कर्त्तव्यम् ?]**

राजा—कहि वि बिसए अच्चरिअ दिदठुमिच्छामि। **[कस्मिन्नपि विषये आश्चर्य द्रष्टुमिच्छामि]**

और भी—

रडा (विधवा), चडा और तान्त्रिक दीक्षा वाली स्त्रियॉ हमारी धर्मपत्नियॉ है, भिक्षा का अन्न हमारा भोजन है, चर्मखण्ड हमारी शय्या है, मद्य पीते हैं और मास खाते है। हमारा यह कुलक्रम से आया हुआ धर्म किसको अच्छा नही लगता है, अर्थात् सबको अच्छा लगता है ॥ २३ ॥

और भी—

विष्णु, ब्रह्मा इत्यादि देवता ध्यान, वेदपाठ तथा यज्ञादिको के अनुष्ठान से मोक्ष की प्राप्ति बताते है। केवल शिवजी ने सुरत और सुरापान से मोक्ष की प्राप्ति बताई है ॥ २४ ॥

राजा—यह आसन है, भैरवानन्दजी, कृपया बैठिये।

भैरवानन्द—

दसेमि त पि ससिण बसुहाबइण्ण
थभेमि तस्स वि रविस्स रह णहद्धे।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणगणाओ
त णत्थि भुमिबलए मह ज ण सद्ध ॥ २५ ॥

[दर्शयामि तमपि शशिन वसुधावतीर्ण
स्तभ्नामि तस्यापि रवे रथ नभोऽध्वनि ।
आनयामि यक्षसुरसिद्धगणाङ्गना
तन्नास्ति भूमिवलये मम यन्न साध्यम् ॥ २५ ॥]

ता भण कि करीअदु ? **[तद्भण किं क्रियताम् ?]**

राजा—वअस्स ! तुए कहि पि अपुब्ब दिट्ठ महिलारअण ? **[वयस्य त्वया कुत्रापि अपूर्व दृष्ट महिलारत्नम् ?]**

विदूषक—दिट्ठ दाव । **[दृष्ट तावत्]**

राजा—कहेहि । **[कथय]**

भैरवानन्द—(बैठकर) तुम क्या चाहते हो ?

राजा—कोई आश्चर्य की बात देखना चाहता हूँ ।

भैरवानन्द—चन्द्रमा को भी पृथिवी पर उतार कर दिखा सकता हूँ । सूर्य का भी रथ आकाश-मार्ग मे रोक सकता हूँ । यक्ष, सुर और सिद्धगणो की स्त्रियो तक को ला सकता हूँ । भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नही जिसे मै न कर सकूँ ॥ २५ ॥

कहिये, क्या करुँ ।

राजा—(विदूषक से) वयस्य ! तुमने कही कोई अद्वितीय स्त्री-रत्न देखा ?

विदूषक— हाँ, देखा ।

राजा—बतलाओ ।

विदूषक—अत्थि एत्थ दक्खिणावहे बेदब्भ णाम णअर, तहि मए एक्क कण्णारअण दिट्ठ, तमिहाणीअदु । **[अस्ति तत्र दक्षिणापथे वैदर्भ नाम नगर, तत्र मयैक कन्यारत्न दृष्ट, तदिह आनीयताम् ।]**

भैरवानन्द—आणीअदि । **[आनीयते]**

राजा—ओदारीअदु पुण्णिमाहरिणको धरणीअले । **[अवतार्यतां पूर्णिमाहरिणाङ्को धरणीतले ।]**

(भैरवानन्दो ध्यान नाटयति)

(तत प्रविशति पटाक्षेपेण नायिका सर्वे अवलोकयन्ति)

राजा—अहह । अच्चरिअ । अच्चरिअ । **[अहह । आश्चर्यम् । आश्चर्यम् ।]**

ज धोआंजणसोणलोअणजुअ लग्गालअग्ग मुह
हत्थालबिदकेसपल्लवचए दोल्लति जं बिदुणो ।
ज एक्क सिचअचल ण्णिबसिद त ण्हाणकेलिट्ठिदा
आणीदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा ? ॥ २६ ॥

विदूषक—दक्षिण देश मे वैदर्भ नाम का नगर है, वहॉ मैने एक कन्यारत्न देखा है, उसको यहॉ बुलाओ ।

भैरवानन्द— बुलाता हूँ ।

राजा—पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह सुन्दर उस कन्यारत्न को बुलाइये ।

(भैरवानन्द ध्यान लगाने का अभिनय करता है)

(पर्दा हटा कर नायिका रगमच पर आती है । सब देखते हैं)

राजा—अहह । आश्चर्य है । आश्चर्य । ।

इसकी ऑखो से अञ्जन धुला हुआ है और इसीलिए इसकी ऑखे लाल है, मुख पर अलके बिखरी हुई है, हाथ से अपने केशो को पकडे हुई है और केशो से पानी की बूँदे टपक रही है/ एक ही वस्त्र से शरीर ढका हुआ है । अत ऐसा प्रतीत होता है कि इस योगीश्वर ने स्नान-क्रीडा के बाद ही इस अपूर्व सुन्दरी को यहॉ पर उपस्थित किया है ॥ २६ ॥

[यत् धौताञ्जनशोणलोचनयुग लग्नालकाग्र मुख
हस्तालम्बितकेशपल्लवचये दोलायन्ते यद्विन्दव ।
यदेक सिचयाञ्चल निवसित तत्स्नानकेलिस्थिता
आनीतेयमद्भुतैकजननी योगीश्वरेणामुना ? ॥ २६ ॥]

अबि अ—**[अपि च]**

एक्केण पाणिणलिणेण णिबेसअती
बत्थचल घणथणत्थलसंसमाण ।
चित्ते लिहिज्जदि ण कस्स विसजमती
अण्णेण चकमणदो चलिद कडिल्लं ? ॥ २७ ॥

[एकेन पाणिनलिनेन निवेशयन्ती
वस्त्राञ्चल घनस्तनस्थलस्रसमानम् ।
चित्ते लिख्यते न कस्यापि सयच्छन्ती
अन्येन चङ्क्रमणतश्चलित कटिवस्त्रम् ? ॥ २७ ॥]

विदूषक—

ण्हाणाबमुक्काभरणोच्चआए तरगभगक्खदमडणाए ।
आद्दासुओल्लासितणूलदाए सुदेरसब्बस्समिमीअ दिट्ठी ॥

[स्नानावमुक्ताभरणोच्चयायास्तरङ्गभङ्गक्षतमण्डनाया ।
आर्द्राशुकोल्लासितनूलताया सौन्दर्यसर्वस्वमस्या दृष्टि ॥ २८ ॥]

और भी—उन्नत पयोधरो पर से सरकते हुए वस्त्र को एक हाथ से ठीक करती हुई और बार-बार चलने से ढीले होते हुए कटि-वस्त्र को दूसरे हाथ से सँभालती हुई यह नायिका किस पुरुष के हृदयपटल पर चित्रित नही होती है ? अर्थात् सबके चित्त पर यह अपना प्रभाव डालती है ॥ २७ ॥

विदूषक—स्नान करते समय जिसने आभूषणे को छोड दिया है, तरगो की तरह विलासमय चेष्टाओ से आभूषणो के न होने पर भी जिसका सौन्दर्य कम नही हुआ है और जिसकी लता की तरह सुकुमार शरीर गीले वस्त्र से और भी अधिक आकर्षक प्रतीत होता है ऐसी यह नायिका अपनी दृष्टि से सौन्दर्य की वृष्टि करती है ॥ २८ ॥

नायिका—(सर्वानवलोक्य स्वगतम्) एसो महाराओ को बि इमिणा गभीरमहुरेण सोहासमुदाएण जाणिज्जदि । एसा बि एदस्स महादेवी तक्कीअदि अद्धणारीसरस्स बिअ अकहिदा बि गोरी । एसो को बि जोई सरो । एस उण परिअणो । (विचिन्त्य) ता कि ति एदस्स महिलासहि दस्स दिट्ठी म बहु मण्णेदि ? ।[**एष महाराज कोऽप्यनेन गम्भीरमधुरेण शोभासमुदायेन ज्ञायते। एषाऽपि अस्य महादेवी तर्क्यते अर्द्धनारीश्वरस्येव अकथिताऽपि गौरी। एष कोऽपि योगीश्वर । एष पुन परिजन । तत् किमित्येतस्य महिलासहितस्यापि दृष्टिर्मा बहु मन्यते ?**] (इति त्रस्त वीक्षते)

राजा—(विदूषकमपवार्य) एदाए [**एतस्या**]—

ज मुक्का सबणंतरेण तरला तिक्खा कडक्खच्छडा
शुगाधिट्ठिअकेदअग्गिमदलद्दोणीसरिच्छच्छई ।
त कप्पूररसेण ण धबलिदो, ज्योण्हाअ ण ण्हाबिदो
मुत्ताण घणरेणुणव्व छुरिदो जादोम्हि एत्थंतरे ॥ २९ ॥

[यत् मुक्ता श्रवणान्तरेण तरला तीक्ष्णा कटाक्षच्छटा
शृङ्गाधिष्ठितकेतकाग्रिमदलद्रोणीसदृक्षच्छवि ।
तत् कर्पूररसेन ननु धवलितो, ज्योत्स्नया ननु स्नापित
मुक्ताना घनरेणुनेव छुरितो जातोऽस्म्यत्रान्तरे ॥ २९ ॥]

नायिका—(सबको देख कर अपने मन में)—

इस गम्भीर ओर मधुर शोभासमुदाय से मालूम पडता है कि ये कोई महाराज है अर्धनारीश्वर भगवान् शकर की पार्वती की तरह यह भी इसकी रानी प्रतीत होती है । ये कोई योगीश्वर है, ये सेवकगण है । न मालूम क्या बात है कि स्त्रियो के साथ होते हुए इनकी निगाहे मेरी ओर बडे आदर से लगी हुई है ।

राजा—(विदूषक को अपवारित में)—

इस नायिका ने कानो तक फैले हुये, चञ्चल तथा केतकी के दलरूपी द्रोणी के समान छवि वाले तीक्ष्ण कटाक्षो से जो मुझको देखा है, उससे ऐसा मालूम पडता है कि जैसे मै कर्पूर के जल से धो दिया गया हूँ, या चाँदनी मे मुझे स्नान करा दिया गया है अथवा मोतियो का अगराग मुझ पर लगा दिया गया है ॥ २९ ॥

विदूषक—अहो । से रूअरेहा । । [**अहो । अस्या रूपरेखा ।**]

मण्णे मज्झ तिबलिबलिअ डिंभमुट्ठीअ गेज्झ
णो बाहूहि रमणफलअ बेट्ठिदु जादि दोहिं ।
णेत्तक्खेत्त तरुणिपसुईदिज्जमाणोबमाण
ता पच्चक्ख मह विलिहिदु जादि एसा ण चित्ते ।। ३० ।।

[मन्ये मध्य त्रिवलिवलित डिम्भमुष्ट्या ग्राह्य
नो बाहुभ्या रमणफलक वेष्टितु याति द्वाभ्याम् ।
नेत्रक्षेत्र तरुणीप्रसृतिदीयमानोपमान
तत् प्रत्यक्ष मम विलिखितु यात्येषा न चित्ते ।। ३० ।।]

कथ ण्हाणधोबिदबिलेबणा समुत्तारिदविहूसणा बि रमणिज्जा [**कथ स्नानधौतविलेपना समुत्तारितविभूषणाऽपि रमणीया ।**]

अहवा [**अथवा**]—

जे रुअमुक्का बि विहूसयति ताण अलकारबसेण सोहा ।
णिसग्गचगस्स बि माणुसस्स सोहा समुम्मीलदि भूसणेहि ।। ३१ ।।

[या रूपमुक्ता अपि विभूषयन्ति तासामलङ्कारवशेन शोभा ।
निसर्गसुन्दरस्यापि मानुषस्य शोभा समुन्मीलति भूषणै ।। ३१ ।।]

विदूषक—अहो । क्या सौन्दर्य है ?—

त्रिवलि से युक्त इसकी कमर बच्चे को मुट्टी तक से पकडी जा सकती है, इसकी जघाये दोनो हाथो मे भी नही आ सकती अर्थात् जघाये बडी विशाल हैं, ऑखो की उपमा तारुण्य के विस्तार से दी जा सकती है । यद्यपि यह मेरे सामने है, फिर भी मै इसको अपने मन मे नही रख सकता हूँ ।। ३० ।।

स्नान से अगरागो के धुल जाने पर भी तथा आभूषणे के न रहने पर भी यह कितनी सुन्दर लगती है ? अथवा—

जो स्त्रियॉ सुन्दर नही होती है, वे अलङ्कारो से अपने को सजाती है और उनका सौन्दर्य अलङ्कारो पर ही निर्भर है । स्वभाव-सुन्दर मनुष्य को अलङ्कारो की अपेक्षा नही होती किन्तु अलङ्कार उसके सौन्दर्य को और अधिक उत्कृष्ट बनाते है ।। ३१ ।।

राजा—एदाए दाव एद **[एतस्यास्तावदेतत्]**—

लावण्ण णबजच्चकचणणिह णेत्ताण दीहत्तण
कण्णेहिं खलिद कवोलफलआ दोखडचदोबमा ।
एसा पचसरेण सज्जिदधणूदडेण रक्खिज्जए
जेण सोसणमोहणप्पहुदिणो बिज्झति म मग्गणा ॥ ३२ ॥

[लावण्य नवजात्यकाञ्चननिभ नेत्रयोर्दीर्घत्व
कर्णाभ्या स्खलित कपोलफलकौ द्विखण्डचन्द्रोपमौ ।
एषा पञ्चशरेण सज्जितधनुर्दण्डेन रक्षते
येन शोषणमोहनप्रभृतयो विध्यन्ति मा मार्गणा ॥ ३२ ॥]

विदूषक—(विहस्य) जाणे रत्थाए लोट्टदि से सोहारअण । **[जाने रथ्याया लुठत्यस्या शोभारत्नम्]**

राजा—(विहस्य) पिअवअस्स ! कधेमि दे । **[प्रियवयस्य ! कथयामि ते]**

राजा—इसका तो यह—

इस नायिका का सौन्दर्य नवीन और उत्कृष्ट सुवर्ण की तरह है, इसके नेत्र बडे विशाल—कान तक खिचे हुए है, कपोल अर्थचन्द्र की तरह सुन्दर है, धनुष लेकर साक्षात् कामदेव इसकी रक्षा कर रहा है इसको देखकर कामदेव के शोषण और मोहन इत्यादि बाण मुझे तो व्याकुल कर रहे है ॥ ३२ ॥

विदूषक—(हँसकर) इसका सौन्दर्य रास्ते पर पडे हुये रत्न के समान सबको आकृष्ट करता है ।

राजा—(हँसकर) प्रियवयस्य ! तुम्हे बतलाता हूँ—

अग चग णिअगुणगणालकिद कामिणीण
पच्छाअती उण तणुसिरिं भादि णेवच्छलच्छी ।
इत्थ जाणं अबअवगदा कावि सुदेरमुद्दा
मण्णेताण बलइदधणू णिच्चभच्चो अणगो ॥ ३३ ॥

[अङ्ग सुन्दर निजगुणगणालङ्कृत कामिनीना
प्रच्छादयन्ती पुनस्तनुश्रिय भाति नेपथ्यलक्ष्मी ।
इत्थ यासामवयवगता काऽपि सौन्दर्यमुद्रा
मन्ये तासा वलयितधनुर्नित्यभृत्योऽनङ्ग ॥ ३३ ॥]

अबि अ एदाए [**अपि च, एतस्या**]—

तहा रमणवित्थरो जह ण ठाइ कञ्चीलआ
तहा अ थणतुगिमा जह ण एहि णाहिं मुह ।
तहा णअणबहिमा जह ण किंपि कण्णुप्पलं
तहा अ मुहमुज्जल दुससिणी जहा पुण्णिमा ॥ ३४ ॥

[तथा रमणविस्तरो यथा न तिष्ठति काञ्चीलता
तथा च स्तनतुङ्गिमा यथा नैति नाभि मुखम् ।
तथा नयनभङ्गिमा यथा न किमपि कर्णोत्पल
तथा च मुखमुज्ज्वल द्विशशिनी यथा पूर्णिमा ॥ ३४ ॥]

कामिनियो का सुन्दर अग अपने विभ्रम और विलास गुणो से ही अच्छा लगता है, बाह्य सजावट तो दूसरी स्त्रियो की ही शोभा बढाती है । जिन स्त्रियो का सौन्दर्य इस तरह अनिर्वचनीय होता है, कामदेव धनुष लिये हुए हमेशा उनकी सेवा मे तत्पर रहता है । उनके आशय को जान कर उनके बिना कहे की कामदेव कामियो को वश मे कर लेता है ॥ ३३ ॥

और भी— इस नायिका की—

जघाये इतनी चौडी है कि करधनी उन पर पर्याप्त ही नही होती, स्तन इतने ऊंचे हैं कि मुख नाभि तक आ ही नही सकता, ऑखे इतनी बडी है कि कानों मे कर्णोत्पल की आवश्यकता ही नही प्रतीत होती और मुख तो इस तरह कान्तिमान है जैसे कि पूर्णमासी की रात्रि मे दो चन्द्रमा निकल आये हो ॥ ३४ ॥

देवी—अज्ज कविञ्जल ! पुच्छिअ जाण, का एस त्ति । **[आर्य कपिञ्जल ! पृष्ट्वा जानीहि, कैषेति]**

विदूषक —(ता प्रति) एहि मुद्धमुहि ! उववििसिअ णिवेदेहि का तुम त्ति ? । **[एहि मुग्धमुखि ! उपविश्य निवेदय का त्वमिति]**

राजा—आसण इसीए **[आसनमस्यै]**

विदूषक —एद मे उत्तरीअ आसण **[एतन्मे उत्तरीयमासनम्]**

(विदूषकनायिके वस्त्रदानोपवेशने नाटयत)

विदूषक —भोदि ! सम्पद कहिज्जदु । [भवति ! साम्प्रत कथ्यताम्]

नायिका—अत्थि एत्थ विदब्भ णाम णअर कुन्तलेसु, तहिं सअलजणवल्लहो वल्लहराओ णाम राआ । **[अस्त्यत्र विदर्भ नाम नगर कुन्तलेषु, तत्र सकलजनवल्लभो वल्लभराजो नाम राजा]**

देवी—(स्वगतम्) जो मह माउस्सआए पई होदि । **[यो मम मातृष्वसु पतिर्भवति]**

नायिका—तस्स घरिणी ससिप्पहा णाम । **[तस्य गृहिणी शशिप्रभा नाम]**

देवी—(स्वगतम्) सा वि मे माउस्सिआ । **[साऽपि मे मातृष्वसा]**

नायिका—तेहि अह उप्पण्णेत्ति । **[ताभ्यामहमुत्पन्नेति]**

देवी— आर्यकपिञ्जल ! पूछो तो यह कौन है ?

विदूषक—(उससे) अयि मुग्धानने ! आओ, बैठकर, बताओ तुम कौन हो ?

राजा—इसके लिए आसन दो ।

विदूषक—यह मेरा उत्तरीय ही आसन है ।

(विदूषक और नायिका दोनो वस्त्र देने और बैठने का अभिनय करते हैं)

विदूषक—हाँ, अब कहो ।

नायिका—कुन्तल देश मे विदर्भ नाम का नगर हैं, वहाँ सारी जनता का प्रिय वल्लभराज नाम का राजा है ।

देवी—(स्वगत) जो मेरी मौसी के पति है ।

नायिका—उनकी गृहलक्ष्मी का नाम शशिप्रभा ।

देवी—(स्वगतम्) ण क्खु ससिप्पहागब्भुप्पत्ति अन्तरेण ईदिसी रूव रेहा होदि । ण क्खु वेदूरिअभूमिगब्भूप्पत्ति अन्तरेण वेदूरिअमणिसलाआ णिप्पज्जदि । (प्रकाशम्) ण तुम कप्पूरमञ्जरी ? **[न खलु शशिप्रभागर्भोत्पत्तिमन्तरेणेदृशी रूपरेखा भवति। न खलु वैदूर्यभूमिगर्भोत्पत्तिमन्तरेण वैदूर्यमणिशलाका निष्पद्यते। (प्रकाशम्) ननु त्व कर्पूरमञ्जरी ?]**

(नायिका सलज्जमधोमुखी तिष्ठनि)

देवी—एहि बहिणिए ! आलिङ्गसु म । **[एहि भगिनि ! आलिङ्गय माम्]**

(इति परिष्वजते)

कर्पूरमञ्जरी—अज्जे ! कप्पूरमजरीए एसो पढमो पणामो । **[आर्ये ! कर्पूरमञ्जर्या एष प्रथम प्रणाम]**

देवी—अज्ज भइरबाणद ! तुज्झ प्पसाएण अपुव्व सविधाणअ अणुभविद कप्पूरमञ्जरीदसणेण, ता चिट्ठदु दाव एसा पचदसदिवसाइ, पच्छा झाणविमाणेण णइस्सध । **[आर्य भैरवानन्द ! तव प्रसादेन अपूर्व सविधानकमनुभूतं कर्पूरमञ्जरीदर्शनेन, तत् तिष्ठतु तावदेषा पञ्चदशदिवसानि, पश्चात् ध्यानविमानेन नेष्यथ]**

भैरवानन्द—ज भणादि देवी । **[यत् भणति देवी]**

देवी—(स्वगत) वह भी मेरी मौसी है ।

नायिका—उनसे मै उत्पन्न हुई हूँ ।

देवी—(स्वगत) इस तरह की सुन्दर रूपरेखा शशिप्रभा के गर्भ के अतिरिक्त और कही से उत्पन्न नही हो सकती । वैदूर्यमणि, वैदूर्यमणि की खान से ही निकल सकती है (प्रकाश मे) तो तुम कर्पूरमञ्जरी हो ?

(नायिका लज्जा के साथ मुख नीचा किये रहती है)

देवी—आओ बहिन, मुझसे मिलो तो । (आलिङ्गन करती है)

कर्पूरमञ्जरी—आर्ये, कर्पूरमञ्जरी का यह पहला प्रणाम स्वीकार करे ।

देवी—आर्य भैरवानन्द ! तुम्हारी कृपा से कर्पूरमञ्जरी के दर्शन कर मुझे बडी प्रसन्नता हुई । पन्द्रह दिन यह यहाँ ही रहे, बाद मे अपने ध्यानरूपी विमान से इसको ले जाना ।

भैरवानन्द—जैसी महारानी की आज्ञा ।

विदूषक—(राजानमुद्दिश्य) भो वअस्स। अम्हे पर दुवे वि बाहिरा एत्थ, जदो एदाण मिलिद कुडुबअ वट्टदि जदो इमीओ दुवे बि बहिणिआओ। भइवाणदो उण एदाण सजोअअरो अच्चिदो माणिदो अ। एषा वि महीदलसरस्सदी अ कुट्टणी देहतरेण देवी ज्जेव। **[भो वयस्य आवा पर द्वावपि बाह्यावत्र, यत्र एतयो मिलित कटुम्बक वर्त्तते, यत इमे द्वे अपि भगिन्यौ। भैरवानन्द पुनरेतयो सयोग-करोऽर्चितो मानितश्च। एषाऽपि महीतलसरस्वती च कुट्टनी देहान्तरेण देव्येव]**

देवी—विअक्खणे। णिअजेट्ठबहिणिअ सुलक्खण भणिअ भइरवाणदस्स हिअइ-च्छिआ सपज्जा कादव्वा। **[विचक्षणे! निजज्येष्ठभगिनिका सुलक्षणा भणित्वा भैरवानन्दस्य हृदयेप्सिता सपर्या कर्त्तव्या]**

विचक्षणा—ज देवी आणवेदि। **[यत् देवी आज्ञापयति]**

देवी—(राजान प्रति) अज्जउत्त! पेसिहि म, जेण अह बहिणिआए एदावत्थाए णेवच्छलच्छीलीलाणिमित्त अन्तेउर गमिस्स। **[आर्य पुत्र! प्रेषय मा, येनाह भगिन्या एतदवस्थाया नेपथ्यलक्ष्मीलीलानिमित्तमन्त पुर गमिष्यामि]**

राजा—जुज्जदि चम्पअलदाए कत्थूरिआकप्पूरेहि आलवालपरिपूरण **[युज्यते चम्पकलताया कस्तूरीकर्पूरैरालवालपरिपूरणम्]**

(नेपथ्ये)

विदूषक—(राजा को सम्बोधित कर) प्रिय मित्र! हम दोनो तो यहाँ पर बाहर के हैं। इनका तो कुटुम्ब ही मिल गया, क्योकि यह दोनो बहिने है। भैरवानन्द ने इन दोनो का सयोग कराया है इसलिये यह इनका माननीय है। पृथ्वीतल पर सरस्वती के समान यह विचक्षणा भी दूसरी ही देवी (रानी) है।

देवी—विचक्षणे! अपनी बडी बहिन सुलक्षणा से भैरवानन्द का मनोनुकूल सेवा-सत्कार करने के लिये कह दो।

विचक्षणा—जो महारानी की आज्ञा।

देवी—(राजा से) आर्यपुत्र! मुझे आज्ञा दीजिये ताकि मै अपनी बहिन के लिए वस्त्र इत्यादि ठीक करने के लिये अन्त पुर मे जाऊ।

राजा—चम्पकलता का कस्तूरी और कपूर से आलवाल भरना ठीक ही है।

(नेपथ्य में)

वैतालिकयोरेक—सुहाअ सझा भेदु देवस्स। **[सुखाय सन्ध्या भवतु देवस्य]–**

एअ वासरजीवपिण्डसरिस चण्डसुणो मण्डल
को जाणाइ कहिं पि सपइ गअ एतम्मि कालतरे।
जाआ किं च इअ पि दी विरहा सोऊण णाहे गए
मुच्छामुद्दिदलोअण व्व णलिणी मीलन्तपङ्केरुहा॥ ३५॥

[एतद्वासरजीवपिण्डसदृश चण्डाशोर्मण्डल
को जानाति क्वापि सम्प्रति गतमेतस्मिन् कालान्तरे।
जाता किं चेयमपि दीर्घविरहा शोकेन नाथे गते
मूर्च्छामुद्रितलोचनेव नलिनी मीलत्पङ्केरुहा॥ ३५॥]

द्वितीय—

उग्घाडीज्जति लीलामणिमअवलहीचित्तभित्तीणिवसा
पल्लङ्का किंकरीहिं उदुसमअसुहा वित्थरिज्जति झत्ति।
सेरन्धीलोलहत्थङ्गुलिचलणवसा पट्टणादो पउट्टो
हुकारो मण्डवेसु विलसइ महुरो रुट्ठतुट्ठङ्गणाण॥ ३६॥

प्र. वैतालिक—महाराज के लिये सध्या सुखकर हो—

सायकाल होते ही दिन के लिये प्राणो के समान सूर्य का मण्डल कहाँ छिप गया यह कौन जानता है। यह नलिनी भी सूर्यास्त होने पर विरहिणी-सी हो गई है औ इसके मुदे हुए कमल देख कर ऐसा लगता है मानो इसकी ऑखे शोक से मूर्च्छा आजाने पर मिच गई है॥ ३५॥

द्वि. वैतालिक— खेलने के लिये बनाई गई वलभियाँ और चित्रशालाये सन्ध्या होने पर खोली जा रही है। दासियाँ बसन्त मे सुखकर शय्याये बिछा रही है, सैरिन्ध्री स्त्रियो का (स्वतन्त्र स्त्रियो का) अपनी चञ्चल अगुलियो से मृदङ्ग बजाना प्रारम्भ हो गया है। मण्डपों मे कुपित तथा प्रसन्न अगनाओ का अपने पतियो के साथ मधुर कोपसलाप या प्रेमसलाप चलने लगा है॥ ३६॥

[उद्घाट्यन्ते लीलामणिमयवलभीचित्रभित्तिनिवेशा
पर्यङ्का किङ्करीभि ऋतुसमयसुखा विस्तार्यन्ते झटिति ।
सैरन्ध्रीलोलहस्ताङ्गुलिचलनवशात् पट्टनाद प्रवृत्त
हुङ्कारो मण्डपेषु विलसति मधुरो रुष्टतुष्टाङ्गनानाम् ॥ ३६ ॥]

राजा—अम्हे वि सझ वदिदु गमिस्सामो । **[वयमपि सन्ध्या वन्दितु गमिष्यामिम ।]**

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

इति प्रथम जवनिकान्तरम् ।

राजा—हम लोग भी सध्या करने चले ।

(सब का प्रस्थान)

॥ प्रथम जवनिका समाप्त ॥

द्वितीयं जवनिकान्तरम्

(तत प्रविशति राजा प्रतीहारी च)

प्रतीहारी—(परिक्रामितकेन) इदो इदो महाराओ । [इत इतो महाराज]

राजा–[कतिचित्पदानि गत्वा, तामनुसन्धाय] तहि क्खु अवसरे [तस्मिन् खलु अवसरे]

णट्ठाणाहि तिलतर पि चलिआ सुत्था णिअम्वत्थली
थोउव्वेल्लवलीतरङ्गमुदर कण्ठो तिरिच्छि ट्ठिओ।
वेणीए उण आणणेन्दुबलणे लद्ध थाणालिङ्गिण
जाआ तीअ चउव्विधा तणुलआ णिज्झाअअती अ म ।। १ ।।

[न स्थानात्तिलान्तरमपि चलिता स्वस्था नितम्बस्थली
स्तोकोद्वेल्लद्वलीतरङ्गमुदर कण्ठस्तिर्यक् स्थित ।
वेण्या पुनराननेन्दुवलने लब्ध स्तनालिङ्गन
जाता तस्याश्चतुर्विधा तनुलता निध्यायन्त्या माम् ।। १ ।।]

(तब राजा और प्रतीहारी प्रवेश करते हैं)

प्रतीहारी—(घूमकर) महाराज । इस तरफ, इस तरफ ।

राजा—(कुछ चलकर और कर्पूरमञ्जरी का ध्यान कर) उस समय—

लगातार मेरा ध्यान करती हुई उस नायिका का लता की तरह सुकुमार शरीर चार प्रकार का हो गया । उसके स्थिर नितम्ब जरा भी न हिलते थे, उसके पेट पर कुछ-कुछ चमकती हुई रेखाये तरङ्गो की तरह लगती थी, उसकी गर्दन तिरछी थी और मुखमण्डल के घुमाने से उसके बाल उसके स्तनो पर बिखरे हुए थे ।। १ ।।

प्रतीहारी—(स्वगतम्) कध अज्ज वि सो ज्जेव तालीपत्तसचओ ताओ विअ अक्खरपतीओ, ता वसन्तवण्णणेण सिढिलआमि से तग्गद हिअआवेअ। (प्रकाशम्) दिट्ठि देदु महाराओ ईसीसिजरठाअमाणे कुसुमाअरम्मि। **[कथमद्यापि स एव ताडीपत्रसचय, ता एव अक्षरपक्तय, तत् वसन्तवर्णनेन शिथिलयामि अस्य तद्गत हृदयावेगम्। (प्रकाशम्) दृष्टिं ददातु महाराज ईषदीषज्जरठायमाने कुसुमाकरे]**

मूलाहितो परभुअबहूकण्ठमुद्द दलन्ता
देन्ता दीह महुरिमगुण जम्पिए छप्पआण।
सचारेन्ता विरहिसु णव पञ्चम किंच राअ
राओम्मत्ता रइकुलघरा वासरा वित्थरति॥ २॥

[मूलात्प्रभूति परभृतवधूकण्ठमुद्रा दलन्तो
ददतो दीर्घ मधुरिमगुण जल्पिते षट्पदानाम्।
सञ्चारयन्तो विरहिषु नव पञ्चम किञ्च राग
रागोन्मत्ता रतिकुलगृहा वासरा विस्तीर्यन्ते॥ २॥]

राजा—(तदनाकर्ण्य सानुरागम्)—

प्रतीहारी—(अपने मन में) क्यो आज भी फिर वही ताडपत्र और वे ही अक्षरपङ्क्तियाँ दिखाई देती है ? वसन्तवर्णन के द्वारा मै इसके हृदयावेग (कर्पूरमञ्जरीसम्बन्धी) को कम करूँगी। (प्रकाश में) महाराज कुछ-कुछ खिलते हुए बगीचे की ओर देखे।

प्रारम्भ से ही कोयल के कण्ठ का विकास करते हुए, भ्रमरो के गुञ्जन को और भी मधुर बनाते हुए, विरहियो के हृदय मे नवीन अनुराग तथा कोयलो का पञ्चम स्वर उत्पन्न करने वाले राग से भरे तथा शृङ्गाररस को उद्दीप्त करने वाले यह वसन्त के दिन कैसे लम्बे होते है॥ २॥

राजा—(प्रतीहारी के वचनो पर ध्यान न देकर अनुरागपूर्वक)—

अत्थाणीजणलोअणाण बहला लावण्णल्लोलिणी
लीलाविब्भमहासवासणअरी सोहग्गपारट्ठिआ।
णेत्तेन्दीवरदीहिआ मह पुणो सिंगारसजीविणी
सजाआ अह वम्महेण धणुहे तिक्खो सरो पुखिओ ॥ ३ ॥

[आस्थानीजनलोचनाना बहुला लावण्यकल्लोलिनी
लीलाविभ्रमहासवासनगरी सौभग्यपारस्थिता।
नेत्रेन्दीवरदीर्घिका मम पुन शृङ्गारसञ्जीविनी
सञ्जाताऽथ मन्मथेन धनुषि तीक्ष्ण शर पुङ्खित ॥ ३ ॥]

(सोन्मादमिव) दसणक्खाणादो पहुदि कुरङ्गाक्खी। **[दर्शनक्षणात् प्रभृति कुरङ्गाक्षी]**—

चित्ते चिहुट्टइ ण सुट्टदि सा गुणेसु
सेज्जासु लोट्टइ विसप्पइ दिम्मुहेसु।
बोल्लम्मि बट्टइ पअट्टइ कव्वबधे
झाणेण तुट्टदि चिर तरुणी चलाक्खी ॥ ४ ॥

[चित्ते तिष्ठति न क्षीयते सा गुणेषु
शय्याया लुठति विसर्पति दिङ्मुखेषु।
वचने वर्त्तते प्रवर्त्तते काव्यबन्धे
ध्यानेन त्रुट्यति चिर तरुणी चलाक्षी ॥ ४ ॥]

सभा मे उपस्थित सभासदो के नेत्रो को नदी की तरह अपने सौन्दर्य से तृप्त करती हुई, लीला और विभ्रम से मन्द-मन्द मुस्कराती हुई, परम सौभाग्य वाली, नेत्ररूपी कमलो के लिए वापी के समान तथा शृङ्गाररस को बढाने वाली वह कर्पूरमञ्जरी अब भी मेरे हृदय मे वर्तमान हैं। फिर भी कामदेव ने मुझ पर अपने धनुष से तीक्ष्ण बाण छोड ही दिया ॥ ३ ॥

(पागल की तरह) वह मृगनयनी दर्शनो के बाद से ही—

चञ्चल नेत्रो वाली वह तरुण नायिका सर्वदा मेरे चित्त मे बसी रहती है, उसके गुण सतत मुझे याद आते रहते है, वह मेरे पास शय्या पर सोती हुई-सी प्रतीत होती है, मुझे हर तरफ वह चलती हुई दिखाई देती है, मेरे वचनो को सुनती है, मेरे सम्बन्ध की काव्य रचना करती है और मेरे ध्यान से कभी नही उतरती है ॥ ४ ॥

अवि अ **[अपि च]**—

जे तीअ तिक्खचलचक्खुतिभाअदिट्ठा
ते कामचंदमहुपञ्चममारणिज्जा ।
जेसु पुणो णिवडिआ सअला वि दिट्ठी
वट्टिन्त ते तिलजलाञ्जलिदाणजोग्गा ॥ ५ ॥

[ये तया तीक्ष्णचलचक्षुस्त्रिभागदृष्टा-
स्ते कामचन्द्रमधुपञ्चममारणीया ।
येषु पुनर्निपतिता सकलाऽपि दृष्टि-
र्वर्त्तन्ते ते तिलजनाञ्जलिदानयोग्या ॥ ५ ॥]

(सस्सरणमिव) अवि च **[अपि च]**—

अग्गम्मि भिङ्गसरणी णअणाण तीए
मज्झे पुणो कढिअदुद्धतरगमाला ।
पच्छा अ से सरइ तसणिरिक्खिएसु
आकण्णमडलिअचावहरो अणगो ॥ ६ ॥

[अग्रे भृङ्गसरणिर्नयनयोस्तस्या
मध्ये पुन क्वथितदुग्धतरङ्गमाला ।
पश्चाच्च तस्या सरति तिर्यङ्निरीक्षितेषु
आकर्णमण्डलितचापधरोऽनङ्ग ॥ ६ ॥]

और भी—

उस नायिका ने जिन लोगो को अपने पैने और चञ्चल नेत्र के तीसरे भाग से भी देखा है उन्हें कामदेव, चन्द्रमा, वसन्त और कोकिल का स्वर शीघ्र ही मार डालेगा । जिन लोगो पर उसकी भरपूर ऑखे पडी है, उन्हे तो मरा हुआ ही समझो ॥ ५ ॥

(कुछ याद-सा करके) और भी—

उस कर्पूरमञ्जरी के नेत्रो से आगे भौरे मॅडराते हो, मध्य मे विलोये हुये दूध की तरङ्गमाला जैसी मालूम पडती है, जब वह पीछे की ओर तिरछा होकर देखती है तो ऐसा लगता है जैसे कि कान तक धनुष खीचे साक्षात् कामदेव ही चल रहा हो ॥ ६ ॥

(विचिन्त्य) कध चिराअदि प्पिअवअस्सो ? [कध चिरयति प्रियवयस्य ?]

(प्रविश्य विदूषको विचक्षणा च परिक्रामत)

विदूषक —अइ विअक्खणे । सव्व सच्च इद ? **[अयि विचक्षणे । सर्व सत्यमिदम् ?]**

विचक्षणा—सव्व सच्चअर । **[सर्व सत्यतरम्]**

विदूषक —णाह पत्तिज्जामि, जदो परिहाससीला खु तुम । **[नाह प्रत्येमि, यत परिहासशीला खलु त्वम्]**

विचक्षणा—अज्ज । मा एव्व भण, अण्णो वक्करुत्तिकालो, अण्णो कज्जविआरकालो । **[आर्य । मैव भण, अन्यो वक्रोक्तिकाल, अन्य कार्य विचारकाल ।]**

विदूषक —(पुरोऽवलोक्य) एसो पिअवअस्सो हसो विअ विमुक्कमाणसो, करी विअ मदक्खामो, मुणालदण्डो विअ घणधम्ममिलाणो, दिणदीवो विअ विगलिदच्छाओ, पभादपुण्णिमाचन्दो विअ पडुरपरिक्खीणो चिट्ठदि । **[एष प्रियवयस्यो हस इव विमुक्तमानस, करीव मदक्षाम, मृणालदण्ड इव घनघर्मम्लान, दिनदीप इव विगलितच्छाय, प्रभातपूर्णिमाचन्द्र इव पाण्डुरपरिक्षीणस्तिष्ठति]**

(सोचकर) प्रिय वयस्य । (विदूषक ।) क्यो देर कर रहा है ?

(वदूषक और विचक्षणा रगमच पर आकर घूमते है ।)

विदूषक—अरी विचक्षणे । क्या यह सब सच है ?

विचक्षणा—सब सच्च ही समझो ।

विदूषक—मुझे तो विश्वास नही होता क्योकि तुम्हारा तो परिहास करने का स्वभाव ही है ।

विचक्षणा—आर्य । ऐसा मत कहो, परिहास का समय और होता है, काम करने का समय और होता है ।

विदूषक—(सामने देखकर) यह मेरा प्रिय मित्र (राजा) तो मानसरोवर से छूटे हुए हस के समान तथा उद्विग्न मन वाला मदस्राव से दुर्बल हाथी की तरह एव

उभे—(परिक्रम्य) जअदु जअदु महाराओ । **[जयतु जयतु महाराज]**

राजा—वअस्स ! कध उण विअकखणाए मिलिदो सि ? **[वयस्य ! कथं पुनर्वि-चक्षणया मिलितोऽसि ?]**

विदूषक—अज्ज विअक्खणा मए सह सन्धि कादु आअदा । किदसधीए इमीए सह मन्तअन्तस्स एत्तिआ वेला लग्गा । **[अद्य विचक्षणा मया सह सन्धिं कर्त्तुमा-गता । कृतसन्ध्यैतया सह मन्त्रयमाणस्यैतावती वेला लग्ना ।]**

राजा—सन्धिकरणस्स कि फल ? । **[सन्धिकरणस्य कि फलम् ?]**

विदूषक—एसा अहिमदजणप्पेसिदा लेहहत्था ण विअक्खणा आअदा **[एषा अभिमतजनप्रेषिता लेखहस्ता ननु विचक्षणा आगता ।]**

राजा—(गन्ध सूचयित्वा) केदईकुसुमगन्धो विअ आआदि । **[केतकीकुसुमगन्ध इव आयाति ।]**

विचक्षणा—केदईदललेहो ज्जेव्व एसो मह हत्थे । **[केतकीदललेख एवैष मम हस्ते]**

प्रचण्ड सूर्यताप से मुरझाये हुए कमलनाल की तरह या दिन मे आभा रहित दीपक की तरह तथा प्रभातकालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह पीला और थका-सा बैठा हुआ है ।

दोनो—(घूमकर) महाराज की जय हो, जय हो ।

राजा—मित्र ! विचक्षणा से फिर कैसे मेल हुआ ?

विदूषक— आर्य ! विचक्षणा मेरे साथ सन्धि करने आई थी । सन्धि करने के बाद इससे बातचीत करते हुए इतना समय लग गया ।

राजा—सन्धि करने का क्या फल हुआ ?

विदूषक—प्रियजन के द्वारा भेजी हुई और हाथ मे पत्र लिए हुए यह विचक्षणा आइ है ।

राजा—(कुछ सूँघकर) केवड़े के फूल के फूल की गन्ध सी आ रही है ।

विचक्षणा— मेरे हाथ मे यह केवडे के पत्र पर लिखा हुआ ही लेख है ।

राजा—महुममए कध केदईकुसुम ? **[मधुसमये कथ केतकीकुसुमम् ?]**

विचक्षणा—भइरवाणन्ददिण्णमन्तप्पहावेण देवीभवणुज्जाणे केदईलदाए एक्को दासव पसबो दसिदो । तस्स ताए देवीए दलसपुडेहि अज्ज हिन्दोलअप्पभजणीए चउत्थीए हरवल्लहा देवी अच्चिदा । अण्ण च दलसपुडजुअल उण कणिट्ठबहिणीआए कप्पूरमञ्जरीए पसादीकिद । ताए वि एक्केण दलसपुडेण भअवदी गोरी जेव्व अच्चिदा । अण्ण च— **[भैरवानन्ददत्तमन्त्र प्रभावेण देवीभवनोद्याने केतकीलतया एकस्तावत् प्रसवो दर्शित । तस्य तया देव्या दलसम्पुटैरद्य हिन्दोलकप्रभञ्जन्या चतुर्था हरवल्लभा देवी अर्चिता । अन्यच्च दलसम्पुटयुगल पुन कनिष्ठभगिन्यै कर्पूरमञ्जर्यै प्रसादीकृतम् । तयाऽपि एकेन दलसम्पुटेन भगवती गौरी एव अर्चिता । अन्यच्च–]**

केअईकुसुमपत्तसंपुडं पाहुड तुअ सहीअ पेम्मिदं ।
एणणाहिमसिवण्णसोहिणा तं सिलोअजुअलेण लञ्छिद ॥ ७ ॥

[केतकीकुसुमपत्रसम्पुट प्राभृत तव सख्या प्रेषितम् ।
एणनाभिमसीवर्णशोभिना तत् श्लोकयुगलेन लाञ्छितम् ॥ ७ ॥]

(इति लेखमर्पयति)

राजा—(प्रसार्य वाचयति)—

राजा—वसन्त ऋतु मे यह केवडे का फूल कैसे ?

विचक्षण—भैरवानन्द के मन्त्र के प्रभाव से महारानी के भवन के उद्यान मे केवडे की लता पर एक फूल दिखाई दिया । उस फूल के दलो मे आज हिन्दोलक उत्सव की समाप्ति पर चतुर्थी के दिन महारानी ने पार्वती की पूजा की और कुछ दल अपनी छोटी बहिन कर्पूरमञ्जरी को प्रसाद रूप मे दिए । उसने भी एक दलसम्पुट से गौरी की पूजा की । और—

तुम्हारी सखी ने कस्तूरी की स्याही से यह दो श्लोक लिख कर केतकी कुसुम के ये दल उपहार मे भेजे हैं ॥ ७ ॥

(लेख हाथ मे देती है)

राजा—(खोलकर पढ़ता है)—

हसिं कुङ्कुमपङ्कपिङ्गजरतणु काऊण ज वचिदो
तब्भत्ता किल चक्कवाअघरिणी एसत्ति मण्णन्तओ।
एद त मह दुक्किअ परिणद दुक्खाण सिक्खावण
एक्कत्थो वि ण जासि जेण विसअ दिट्ठित्तिभाअस्स वि ॥ ८ ॥

[हसी कुङ्कुमपङ्कपिञ्जरतनु कृत्वा यद्वञ्चित
तद्भर्त्ता किल चक्रवाकगृहिण्येषेति मन्यमान ।
एतत्तन्ममदुष्कृत परिणत दु खाना शिक्षक
एकस्थोऽपि न यासि येन विषय दृष्टित्रिभागस्यापि ॥ ८ ॥]

(द्वित्रिर्वाचयित्वा)—एदाइ ताइ मअणरसाअणक्खराइ । **[एतानि तानि मदनरसायनाक्षराणि ।]**

विचक्षणा—दुदिओ उण मए पिअसहीए अवत्थाणिवेदओ कदुअ सिलोओ लिहिदो एत्थ, त वाचेदु महारोओ । **[द्वितीय पुनर्मया प्रियसख्या अवस्थानिवेदक कृत्वा श्लोको लिखितोऽत्र, त वाचयतु महाराज ।]**

राजा—(वाचयति)—

अपने से प्रेम करने वाली हसिनी को कुङ्कुमराग से सजाकर पुन भूल से चक्रवाकी समझने वाला हस उसे छोड देता है । यह मेरे दु खद पापो का ही परिणाम है कि तुम्हारे एक स्थान पर रहने पर भी मै तुम्हे कनखियो से भी नही देख पाती हूँ ॥ ८ ॥

(दो तीन बार पढकर) यह शब्द तो काम के वेग को शान्त करने वाली ओषधि के समान है ।

विचक्षणा—अपनी प्रिय सहेली की अवस्था बताने वाला एक दूसरा श्लोक मैने लिखा है । उसे महाराज पढे ।

राजा—(पढता)—

सह दिवसणिसाहिं दीहरा सासदण्डा
सह माणिवलएहिं बाहधारा गलन्ति ।
सुहअ ! तुह विओए तेअ उव्वेअणीए
सह अ तणुलदाए दुव्वआ जीविदासा ॥ ९ ॥

[सह दिवसनिशाया दीर्घा श्वासदण्डा
सह मणिवलयैर्बाष्पधारा गलन्ति ।
सुभग ! तव वियोगे तस्या उद्वेगिन्या
सह च तनुलतया दुर्बला जीविताशा ॥ ९ ॥]

विचक्षणा- एत्थ ज्जेव्व एदाए अवत्थाए मह जेट्ठबहिणिआए सुलक्खआए उग्गाविआए भविअ सिलोओ किदो, त महारोओ सुणादु । **[अत्रैव एतस्या अवस्थाया मम ज्येष्ठभगिन्या सुलक्षणया उद्गारिण्या भूत्वा श्लोक कृत, त महाराज शृणोतु ।]** (पठति)—

णीसासा हारजट्ठीसरिसपसरणा चन्दण फोडकारी
चन्दो देहस्स दाहो सुमरणसरिसी हाससोहा मुहम्मि ।
अङ्गाण पण्डुभाओ दिवससरिकलाकोमलो कि च तीए
णिच्च बाहप्पवाहा तुह सुहअ ! कए होंतिकुल्लाहिं तुल्ला ॥ १० ॥

हे प्रिय ! तुम्हारे वियोग मे कर्पूरमञ्जरी के लिए दिन-रात बडे लम्बे हो गए है और वह लम्बी-लम्बी सासे छोडती है । विरह मे दुबले हो जाने से मणिकङ्कण उसके हाथ से गिर पडते है । इसी तरह उसकी ऑखो से अश्रुधारा बहती रहती है । जैसे-जैसे उसका शरीर दुबला होता जाता है, उसके जीवन को आशा भी घटती जाती है ॥ ९ ॥

विचक्षणा—इस पत्र पर ही मेरी बडी बहिन सुलक्षणा ने कर्पूरमञ्जरी की पूर्वोक्त अवस्था का निवेदन करते हुए एक श्लोक लिखा है, महाराज उसे भी सुने । (श्लोक पढती है)

हे सौभाग्यशालिन् ! तुम्हारे कारण कर्पूरमञ्जरी बडी गहरी सॉसे लेती है, चन्दन का रस उसके शरीर पर जलन उत्पन्न करता है, चन्द्रमा उसकी देह को जलाता है, उसके मुख पर मुस्कराहट भी 'मै मर रही हूँ, मेरी याद रखना' इस तरह का स्मरण

[नि श्वासा हारयष्टिसदृशप्रसरणाश्चन्दन स्फोटकारी
चन्द्रो देहस्य दाह स्मरणसदृशी हासशोभा मुखेऽपि।
अङ्गाना पाण्डुभावो दिवसशशिकलाकोमल किञ्च तस्या
नित्य बाष्पप्रवाहास्तव सुभग ! कृते भवन्ति कुल्याभिस्तुल्या ।१० ॥]

राजा—(नि श्वस्य)—कि भणीअदि, सुकइत्तणे तुह जेट्ठबहिणिआ खु एसा । **[किं भण्यते, सुकवित्वे तव ज्येष्ठभगिनिका खलु एषा ।]**

विदूषक—एसा बिअक्खणा महीदलसरस्सई । एदाए जेट्ठवहिणिआ तिहुअणसरस्सई । ता तदाहि सम पडिप्पद्धा ण करिस्स । कि उण प्पिअवअस्स ! पुरदो मअणावत्थ अत्तणो उचिदेहिं अक्खरेहि णिवेदेमि । **[एषा विचक्षणा महीतलसरस्वती ? एतस्या ज्येष्ठभगिनिका त्रिभुवनसरस्वती । तदेताभ्या सम प्रतिस्पर्द्धा न करिष्यामि । किं पुन प्रियवयस्य । पुरतो मदनावस्थामात्मन उचितै अक्षरैर्निवेदयामि ।]**

राजा—पढ, एद पि सुणीअदि । **[पठ, एतदपि श्रूयते ।]**

सा करती है, उसका शरीर पीला पड गया है जैसे कि दिन के समय चन्द्रमा फीका सा लगता है, उसके निरन्तर बहते हुए ऑसू किसी कृत्रिम नदी की तरह लगते है ॥१० ॥

राजा—(गहरी सॉस लेकर) क्या कहा जाय, तुम्हारी बडी बहिन तो बडी अच्छी कविता करती है ।

विदूषक—यह विचक्षणा तो केवल पृथ्वीतल की सरस्वती है । इसकी बडी बहिन तो तीनो लोको की सरस्वती है । इन दोनो से मै प्रतिस्पर्धा नही करूँगा । हे प्रिय मित्र ! क्यो न तुम्हारी विरहावस्था कुछ उचित शब्दो द्वारा तुम्हारे सामने ही निवेदन करूँ ।

राजा—पढो, वह भी सुनते है ।

विदूषक –पर जोण्हा उण्हा गरलसरिसो चन्दणरसो
खअक्खारो हारो रअणिपवणा देहतवणा ।
मुणाली बाणाली जलद अ जलाद्दा तणुलदा
वरिट्ठा ज दिट्ठा कमलवअणा सा सुणअणा ॥ ११ ॥

[पर ज्योत्स्ना उष्णा गरलसदृशश्चन्दनरस
क्षतक्षारो हारो रजनिपवना देहतपना ।
मृणाली बाणाली ज्वलति च जलार्द्रा तनुलता
वरिष्ठा यद् दृष्टा कलवदना सा सुनयना ॥ ११ ॥]

राजा—वअस्स ! तुम पि थोएण चन्दणरसेण समालहिस्ससि, ता कधेहि तग्गद किपि वुत्तन्त । अध अन्तेउर णइअ देवीए कि किद तिस्सा ? **[वयस्य ! त्वमपि स्तोकेन चन्दनरसेन समालभ्यसे, तत् कथय तद्गत किमपि वृत्तान्तम् । अथान्त पुर नीत्वा देव्या किं कृत तस्या ?]**

विदूषक—विअक्खणे ! कि किद, कधेहि । **[विचक्षणे ! किं कृत, कथय]**

विचक्षणा—देव ! मडिदा टिक्किदा भूसिदा तोसिदा अ । **[देव ! मण्डिता तिलकिता भूषिता तोषिता च ।]**

विदूषक—जब से कमल के समान सुन्दर मुखवाली उस सुनयना को देखा है, तब से चॉदनी गर्म मालूम पडती है, चन्दन का लेप विष की तरह कटु प्रतीत होता है, हर घाव पर नमक की भॉति कष्ट को बढ़ाता है, रात्रि की ठण्ढी-ठण्ढी हवाये भी शरीर को झुलसाती है, कमल के नाल बाणो की तरह लगते है, स्नान करने पर भी शरीर जलता ही रहता है ॥ ११ ॥

राजा—वयस्य ! तुम्हे भी थोडा सा चन्दनरस लगेगा । (अर्थात् तुम्हे भी कुछ पुरस्कार मिलेगा) । कर्पूरमञ्जरी का कुछ हाल तो बताओ । उसको अन्त पुर मे ले जाकर महारानी ने क्या किया ।

विदूषक—विचक्षणे ! क्या किया, कहो तो ।

विचक्षणा—देव ! महारानी ने उसे आभूषण पहिनाया, तिलक लगाया सुन्दर वस्त्रो से सजाया और प्रसन्न किया ।

राजा—कध विअ ? **[कथमिव ?]**

विचक्षणा—घणमुव्वट्टिदमग कुङ्कुमरसपङ्कपिञ्जर तिस्सा ।

[घनमुद्वर्तितमङ्ग कुङ्कुमरसपङ्कपिञ्जर तस्या]

राजा—रोसाणिअ किद ता कञ्चणमअबलिआरुव ॥ १२ ॥

[उज्ज्वलीकृत तत् काञ्चनमयबालिकारूपम् ॥ १२ ॥]

विचक्षणा—मरगअमञ्जीरजुअ चरणे से लभिआ वअस्साहि ।

[मरकतमञ्जीरयुग चरणावस्या लम्भितौ वयस्याभि ।]

राजा—भमिअमहोनुहपङ्कअजुअल ता भमरमालाए ॥ १३ ॥

[भ्रमितमधोमुखपङ्कजयुगल तत् भ्रमरमालया ॥ १३ ॥]

विचक्षणा—राअसुअपिच्छणील पट्टसुअजुअलअ णिवसिआ सा ।

[राजशुकपिच्छनील पट्टाशुकयुगलक निवसिता सा ।]

राजा—कअलीकन्दलिआ ता खरपवणविलोल्लिअदलाग्गा ॥ १४ ॥

[कदलीकन्दली तत् खरपवनविलोलितदलाग्रा ॥ १४ ॥]

राजा—कैसे ?

विचक्षणा—उसके शरीर पर खूब उबटन किया और कुङ्कमरस का लेप किया ।

राजा—बालिका के सोने जैसे रूप को और भी उज्ज्वल कर दिया ? ॥ १२ ॥

विचक्षणा—सखियो ने उसके चरणो मे पन्नो से बनी हुई पायजेबे पहिनाई ।

राजा—तब तो भौरो की पक्ति ने नीचे मुखवाले दो कमलो को जैसे घेर लिया हो ।

विचक्षणा—फिर उसको तोते के पख की तरह हरे रग के वस्त्र पहिनाये ।

राजा—तब तो वह तेज हवा से उडते हुए पन्नो वाले केले के वृक्ष की तरह लगी होगी ॥ १४ ॥

विचक्षणा—तीए णिअम्बफलए णिवेसिआ पोम्मराअमणिकञ्ची ।

[तस्या नितम्बफलके निवेशिता पद्मरागमणिकाञ्ची ।]

राजा—कञ्चणसेलसिलाए ता बरिही कारिओ णच्च ॥ १५ ॥

[काञ्चनशैलशिलाया तद्बर्हो कारितो नृत्यम् ॥ १५ ॥]

विचक्षणा—दिण्णा वलआवलिओ करकमलपउट्ठणालजुअलम्मि ।

[दत्ता वलयावल्य करकमलप्रकोष्ठनालयुगे ।]

राजा—ता भण कन्ध ण सोहइ विपरीअ मअणतूणीरम् ? ॥ १६ ॥

[तद्भण कथ न शोभते विपरीत मदनतूणीरम् ? ॥ १६ ॥]

विचक्षणा—कण्ठम्मि तीअ ठविदो छम्मासिअमोत्तिआण वरहारो ।

[कण्ठे तस्या स्थापित षाण्मासिकमौक्तिकाना वरहार. ।]

राजा—सेवइ ता पन्तीहि मुहचन्द तारआणिअरो ॥ १७ ॥

[सेवते तत् पङ्क्तिभिर्मुखचन्द्र तारकानिकर. ॥ १७ ॥]

विचक्षणा—उभएसु वि सवणेसु णिवेसिद रअणकुण्डलजुअ से ।

विचक्षणा—तब उसके नितम्बो पर पद्मरागमणि से जडी हुई करधनी पहिनाई ।

राजा—तब तो सोने के पर्वत पर जैसे मोर को नचाया ॥ १५ ॥

विचक्षणा—करकमलो के प्रकोष्ठ भाग मे कङ्कण पहिनाए ।

राजा—तब तो उसके हाथ उलटे हुए कामदेव के तरकस के समान क्यो न अच्छे लगते होगे ? कहो तो सही ॥ १६ ॥

विलक्षणा—पक्के मोतियो का सुन्दर हार उसके गले मे पहिनाया ।

राजा—तब तो मानो तारागणो ने घेरा बनाकर चन्द्रमा को घेर लिया ॥ १७ ॥

विचक्षणा—उसके दोनो कानो मे रत्नो से जडे हुए कुण्डल पहिनाये ।

[उभयोरपि श्रवणयोर्निवेशित रत्नकुण्डलयुग तस्या]

राजा—ता वदणमम्महरहो दोहिं व चक्केहि चङ्कमिओ ॥ १८ ॥

[तद्वदनमन्थरथो द्वाभ्यामिव चक्राभ्या चङ्क्रमित ॥ १८ ॥]

विचक्षणा—जच्चञ्जणजणिअपसाहणइ जादाइ तीए णअणाइ ।

[जात्याञ्जनजनितप्रसाधने जाते तस्या नयने ।]

राजा—उप्पुखिअणवकुवलअसिलीमुहे पञ्चबाणस्स ॥ १९ ॥

[उत्पुङ्खितौ नवकुवलयशिलीमुखौ पञ्चबाणस्य ॥ १९ ॥]

विचक्षणा—कुडिलालआण माला ललाडफलअग्गसगिणी रइआ ।

[कुटिलालकाना माला ललाटफलकाग्रसङ्गिनी रचिता ।]

राजा—ता ससिबिम्बस्सोवरि वट्टइ मज्झाउ किसणसारङ्गो ॥ २० ॥

[तच्छशिबिम्बस्योपरि वर्त्तते मध्ये कृष्णसारङ्ग ॥ २० ॥]

विचक्षणा—घणसारताग्णअणाइ गूढकुसुमोच्चओ चिहुरभारो ।

[घनसारतारनयनाया गूढकुसुमोच्चयश्चिकुरभार ।]

राजा—ससिराहुमल्लजुज्झ विअ दसिअमेणणअणाए ॥ २१ ॥

[शशिराहुमल्लयुद्धमिव दर्शितमेणनयनायाम् ॥ २१ ॥]

राजा—तब तो उसका मुखरूपी कामदेव का रथ दोनो पहियो पर चला होगा ॥ १८ ॥

विचक्षणा—उसके नेत्रो मे बढिया काजल लगाया ।

राजा—कामदेव के नीलकमल रूपी बाण जैसे सजा दिए गए हो ॥ १९ ॥

विचक्षणा—उसके ललाट पर घुघराले वालो को सजाया ।

राजा—तब तो उसके मुखरूपी चन्द्रबिम्ब के ऊपर कृष्ण मृग सा घूमता होगा ॥ २० ॥

विचक्षणा—फिर उस सुन्दर नयनो वाली के केशो मे फूलो को सजाया ।

राजा—उस मृगनयनी मे चन्द्रमा और राहु का जैसे मल्लयुद्ध दिखाया हो ॥ २१ ॥

विचक्षणा—इअ देवीअ जहिच्छ पसाहणेहि पसाहिआ कुमरी ।

[इति देव्या यथेच्छं प्रसाधनै प्रसाधिता कुमारी ।]

राजा—ता केलिकाणणमही विहूसिआ सुरहिलच्छीए ॥ २२ ॥

[तत् केलिकाननमही विभूषिता सुरभिलक्ष्म्या ॥ २२ ॥]

विदूषक—देव । एद परमत्थ विण्णवीअदि ।—**[देव । एतत् परमार्थ विज्ञाप्यते]**—

जेस्सा दिट्ठी तरलधवला कज्जल तीअ जोग्ग
जा वित्थिण्णत्थणकलसिणी सोहए तीअ हारो ।
चक्काआरे रमणफलए कोवि कञ्चीमरट्टो
जिस्सा तिस्सा उण वि भणिमो भूसण दूसण अ ॥ २३ ॥

[यस्या दृष्टिस्तरलधवला कज्जल तस्या योग्यम्
या विस्तीर्णस्तनकलशिनी शोभते तस्या हार ।
चक्राकारे रमणफलके कोऽपि काञ्च्याडम्बरो
यस्यास्तस्या पुनरपि भणामो भूषण दूषणञ्च ॥ २३ ॥]

राजा—(पुनस्तामनुसन्धाय)—

विचक्षणा—इस तरह महारानी ने अपनी इच्छा के अनुसार कुमारी कर्पूरमञ्जरी को विभिन्न अलङ्कारो से सजाया ।

राजा—मानो वसन्तशोभा ने क्रीडोद्यानभूमि को सजा दिया हो ॥ २२ ॥

विदूषक—श्रीमन् । सच बात तो यह है—

जिसके नेत्र चञ्चल और चमकते हुए है उसे काजल की क्या आवश्यकता ? जिसके स्तन कलशो के समान उठे हुये है, उसे हार की क्या आवश्यकता ? चक्र के समान गोलाकार जिसकी जङ्घाओ पर करधनी से एक अनोखी शोभा उत्पन्न हो जाती है, उसके लिए भूषणो को क्या आवश्यकता ? वे तो उसके लिये दूषण ही है—अर्थात् निरर्थक है ॥ २३ ॥

राजा—(फिर उसका स्मरण कर)—

तिवलिवलिअणाहीबाहुमूलेसु लग्ग
थणकलसणिअम्बाडम्बरेसूससन्त ।
जलणिबिडमिमीए सिक्खण ण्हाणवत्थ
पिसुणइ तणुजट्ठीचंगिम लगिम अ ॥ २४ ॥

[त्रिवलिवलितनाभीबाहुमूलेषु लग्न
स्तनकलशनितम्बाडम्बरेषूच्छ्वसन्तम् ।
जलनिबिडमेतस्या श्लक्ष्ण स्नानवस्त्र
पिशुनयति तनुयष्टिचङ्गिमान तारुण्यञ्च ॥ २४ ॥]

विदूषक—(सक्रोधमिव) । भो ! मए सव्वालकारसहिदा वण्णिदा तुम उण जलविलुत्तप्पसाहण व्व सुमरसि, ता किं ण सुद देवेण ?—[**भो ! मया सर्वालङ्कारसहिता वर्णिता । त्व पुनर्जलविलुप्तप्रसाधनामेव स्मरसि तत् किं न श्रुत देवेन ?**]—

णिसग्गचङ्गस्स वि माणुसस्स
सोहा समुम्मीलदि भूषणेहि ।
मणीण जच्चाण वि कञ्चणेहिं
विहूसणे सज्जदि कावि लच्छी ॥ २५ ॥

[निसर्गचङ्गस्यापि मानुषस्य
शोभा समुन्मीलति भूषणै ।
मणीना जात्यानामपि काञ्चनै-
र्विभूषणे सज्जति काऽपि लक्ष्मी ॥ २५ ॥]

तीन रेखाओ से युक्त उसकी नाभि तथा कन्धो पर चिपके हुये, कलश के समान ऊँचे उठे हुए स्तनो तथा नितम्बो पर ऊपर को उठते हुए जल से भीगे उसके महीन कपडे नहाने के समय उसके शरीर की सुन्दरता तथा जवानी को प्रकट करते है ॥ २४ ॥

विदूषक—(क्रुद्ध-सा होकर) मैने तो उसका सब अलङ्कारो के साथ वर्णन किया । और आपको यह केवल उस अवस्था मे ही याद आती है जब कि स्नान करने से उसके सारे प्रसाधन बिगड गए रहते है । क्या आपने यह नही सुना है कि—स्वभाव से ही सुन्दर मनुष्य आभूषणो से और अच्छे लगते है, जैसे कि उत्तम रत्न सोने के साथ और भी शोभायमान होते है ॥ २५ ॥

राजा—

मुद्धाण णाम हिअआइ हरन्ति हन्त ।
णेवच्छकप्पणगुणेण णिअबिणीओ ।
छेआ उणो पकिदिच्चिगिमभावणिज्जा
दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए ॥ २६ ॥

[मुग्धाना नाम हृदयानि हरन्ति हन्त ।
नेपथ्यकल्पनगुणेन नितम्बिन्य ।
छेका पुन प्रकृतिचङ्गिमभावनीया
द्राक्षारसो न मधुरीयति शर्करया ॥ २६ ॥]

विचक्षणा—जधा देवेण अदिट्ठ **[यथा देवेनादिष्टम्]**—

थोआण थणआण कण्णकलिआलङ्घीण अच्छीण वा
भूचन्दस्य मुहस्स कतिसरिआसोत्तस्स गत्तस्स अ।
को णेबच्छकलाहि कीरदि गुणो ? ज त पि सव्वं पिअ
सजुत्त सुणु तत्थ कारणमिण रुढीअ का खण्डणा ? ॥ २७ ॥

राजा—बडे दु ख की बात है कि सुन्दर नितम्बो वाली स्त्रियाँ अपनी अनोखी वेष-भूषा के द्वारा मुग्धो (मूर्खो) का मन अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है । जो अनुभवी और चतुर है, वे स्वभाविक सौन्दर्य पर ही मुग्ध होते है । क्या मिठास के लिए द्राक्षारस को शक्कर की आवश्यकता पडती है ? वह तो स्वत मीठा होता है । इसी तरह स्वाभाविक सुन्दर व्यक्ति को बाह्य सजावट की आवश्यकता नही है ॥ २६ ॥

विचक्षणा—जैसा कि महाराज ने आदेश दिया—

उठे हुए स्तनो, बडी-बडी ऑखो, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख और कान्तिमान् शरीर को विभिन्न प्रसाधनो से कोई लाभ नही होता है । जैसे कि वस्त्रो से सुन्दर स्तन ढक जाता है, काजल से ऑखो के चारो ओर काले निशान बन जाते है, चेहरे का प्राकृतिक सौन्दर्य अङ्गराग से ढक जाता है तथा शरीर की सुन्दर बनावट वस्त्रो से ढक जाती है । फिर भी लोगो को यह अच्छे लगते है । उक्त कथन मे कारण यही है कि जिस तरह रूढि अर्थ यौगिक अर्थ से बलवान् होता है उसी

[स्थूलाना स्तनाना कर्णकलिकालङ्घिनोरक्ष्णोर्वा
भूचन्द्रस्य मुखस्य कान्तिसरित्स्रोतसो गात्रस्य च ।
को नेपथ्यकलाभि क्रियते गुणो यत्तदपि सर्व प्रिय
सयुक्त शृणु तत्र कारणमिद रूढे का खण्डना ॥ २७ ॥]

राजा—(विदूषकमुद्दिश्य) सुप्पजल कपिञ्जल ! एक्ष सिक्खावीअसि । **[सुप्राञ्जल कपिञ्जल ! एष शिक्ष्यते ।]**

किं कज्ज कित्तिमेण विरअणविहिणा ? सो णडीण विडवो
त चङ्ग ज णिअङ्ग जणमणहरण तेण सीमन्तिणीओ ।
जस्सि सव्वङ्गसङ्गो सअलगुणगणो सो अदभो अलभो
तस्मि णेच्छन्ति काले परमसुहअरे किं पि णेबच्छलच्छि ॥ २८ ॥

[कि कार्य कृत्रिमेण विरचनविधिना स नटीना विडम्ब
तच्चाङ्ग यन्निजाङ्ग जनमनोहरण तेन सीमन्तिन्य ।
यस्मिन् सर्वाङ्गसङ्ग सकलगुणगण सोऽदम्भोऽलभ्य
तस्मिन्नेच्छन्ति काले परमसुखकरे कामपि नेपथ्यलक्ष्मीम् ॥ २८ ॥

तरह स्वभाव से ही सुन्दर व्यक्ति के लिए भूषणो के योग की अपेक्षा नही है ॥२७ ॥

राजा—(विदूषक की ओर मुँह करके) अरे नादान कपिञ्जल ! विचक्षणा तो यह बताती है —

बाह्य सजावट से क्या लाभ, यह तो वेश्याएँ लोगो को ठगने के लिए किया करती है । लोगो के मन को हरने वाला सुन्दर अग ही कुछ स्त्रियो का शृङ्गार है । सारे गुण, शील और सौन्दर्य इत्यादि स्वाभाविक रूप से समग्र शरीरावस्था मे जिस समय पाए जाते है वह यौवनकाल दुर्लभ होता है, परम सुखदायक उस यौवनकाल मे विदग्ध जन किसी शृङ्गार की आवश्यकता नही समझते । युवास्था मे बिना शृङ्गार के ही शरीर सुन्दर रहता है ॥ २८ ॥

विचक्षणा—देव ! एद विण्णवीअदि—ण केवल देवीए णिओएण तिस्सा अणुगद म्हि, तारामेत्तीए वि सअत्तिण पत्ता कप्पूरमजरीए। तेण तक्कज्जसज्जा अह उणो वि ओलग्गाविअ भविअ णिवेदइस्स। **[देव ! एतद्विज्ञाप्यते–न केवल देव्या नियोगेन तस्या अनुगताऽस्मि, तारामैत्र्यापि सखीत्व प्राप्ता कर्पूरमञ्जर्या । तेन तत्कार्यासक्ताऽह पुनरपि सेवकीभूय निवेदयिष्यामि]**—

तिस्सा दाव परिक्खणाअ णिहिदो हत्थो थणोत्थगदो
दाहुड्डामरिदो सहीहि बहुसो हेलाअ कड्ढिज्जइ।
किं तेणावि इम णिसामअ गिर सतोसिणि तासिणिं
हत्थच्छत्तणिवारिदेदुकिरणा बोलेइ सा जामिणि ॥ २९ ॥

[तस्यास्तावत्परीक्षणाय निहितो हस्त स्तनोत्सङ्गतो
दाहोड्डामरित सखीभिर्बहुशो हेलया कृष्यते।
कि तेनापीमा निशामय गिर सन्तोषिणी त्रासिनी
हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुकिरणाऽतिवाहयति सा यामिनीम् ॥ २९ ॥]

कज्जसेस कविञ्जलो णिवेदइस्सदि, त च देवेण तधा कादव्व **[कार्यशेष कपिञ्जलो निवेदयिष्यति, तच्च देवेन तथा कर्त्तव्यम्]**

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता)

विचक्षणा—महाराज ! केवल महारानी के आदेश से ही मै कर्पूरमञ्जरी के साथ नही रहती हूँ, बल्कि मेरा कर्पूरमञ्जरी से तारामैत्री (स्वाभाविक प्रेम) है। इसलिए उसके काम मे लगे होने पर भी सेवक रूप से मै कुछ निवेदन करती हूँ—

सखियो के द्वारा कर्पूरमञ्जरी के सन्ताप के कारण और स्वरूप को पूर्णतया जानने के लिए उसके स्तनो पर रखा हुआ हाथ अत्यन्त परम लगने पर बार-बार हटा लिया जाता है। यदि इससे भी उसका सन्ताप ठीक न जाना जाए, तो सन्तोष और डर उत्पन्न करने वाली यह बात सुनिए। हाथ के छत्र से ही चन्द्रमा की किरणो को बचाती हुई वह किसी तरह रात काटती है। 'कर्पूरमञ्जरी महाराज से प्रेम करती है' यह बात तो महाराज को सन्तोष पहुँचाती है लेकिन चन्द्रमा की किरणो तक से अपने को बचाने का समाचार डर उत्पन्न करता है ॥ २९ ॥

बाकी काम कपिञ्जल बतलायेगा, उसे भी महराज उसके अनुसार करे।

(यह कहकर घूमकर बाहर चली जाती है)

राजा—वअस्स । कि उण त कज्जसेस ? । **[वयस्य ! किं पुनस्तत् कार्यशेषम् ?]**

विदूषक—अज्ज हिदोलणचउत्थी, तहिं देवीए गोरि कदुअ कप्पूरमञ्जरी हिदोलए आरोञ्चदव्वा । ता मरगअकुञ्चट्ठिदेण देवेण कप्पूरमञ्जरी हिदोलन्ती दट्ठव्वा, एद त कज्जसेस । **[अद्य हिन्दोलनचतुर्थी, तत्र देव्या गौरी कृत्वा कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलके आरोहयितव्या । तन्मरकतकुञ्जस्थितेन देवेन कर्पूरमञ्जरी हिन्दोलन्ती द्रष्टव्या, एतत्तत् कार्यशेषम्]**

राजा—(विचिन्त्य) ता अदिणिउणा वि छलिदा देवी । **[तदतिनिपुणाऽपि छलिता देवी]**

विदूषक—पाइआ जिण्णमज्जारिआ दुद्धत्ति तक्क । **[पायिता जीर्णमार्जारिका दुग्धमिति तक्रम् ।]**

राजा—को अण्णो तुम्हाहिंतो मह कज्जसज्जो ? को अण्णो चन्दाहितो समुद्दवड्ढणणिट्ठो ? । **[कोऽन्यो युष्मत्तो मम कार्यसज्ज ? कोऽन्यश्चन्द्रत समुद्रवर्द्धननिष्ठ ? ।]**

(इति परिक्रम्य कदलीगृहप्रवेश नाटयत)

राजा—मित्र ! वह बाकी काम क्या है ?

विदूषक—आज हिडोला झूलने की चतुर्थी है, महारानी गौरी की पूजा कर कर्पूरमञ्जरी को हिडोले मे झुलायेगी, आप मरकतकुञ्ज नामक प्रासाद मे बैठकर कर्पूरमञ्जरी को झूला झूलते हुये देखे । यही काम बाकी है ।

राजा—(कुछ सोचकर) अत्यन्त चतुर महारानी को भी हम लोगो ने धोखा दे दिया ।

विदूषक—बूढी बिल्ली को दूध के नाम से छाछ पिला दिया ।

राजा—तुम्हारे अतिरिक्त और कौन मेरे कार्य मे इतना तत्पर हो सकता है ? चन्द्रमा के अतिरिक्त और कौन समुद्र को बढाने का काम कर सकता है ?

(इसके बाद दोनो घूमकर कदलीगृह मे प्रवेश करने का अभिनय करते है)

विदूषक—इअ उत्तुगफलिहमणिबेदिआ, ता इह उवविसदु पिअवअस्सो । **[इय-मुत्तुङ्गस्फटिकमणिवेदिका, तदिहोपविशतु प्रियवयस्य ।]**

(राजा तथा करोति)

विदूषक—(हस्तमुद्यम्य) भो । दीसदु पुण्णिमाचन्दो । **[भो दृश्यता पूर्णिमा-चन्द्र ।]**

राजा—(विलोक्य) अए । दोलारूढाए मह वल्लहाए वअण पुण्णिमाचन्दो त्ति णिद्दिससि । **[अये दोलारूढाया मम वल्लभाया वदन पूर्णिमाचन्द्र इति निर्दि-शसि]** (समन्तादवलोक्य)—

विच्छाअन्तो णअररमणीमण्डलस्साणणाइ
पच्छालन्तो गइणकुहरं कन्तिजोण्हाजलेण ।
पेच्छन्तीण हिअअणिहिअ णिद्दलन्तो अ दप्प
दोलालीलासरलतरलो दीसए से मुहेन्दू ॥ ३० ॥

[विच्छाययन्नगररमणीमण्डलस्याननानि
प्रक्षालयन् गगनकुहर कान्तिज्योत्स्नाजलेन ।
प्रेक्षमाणाना हृदयनिहित निर्दलयश्च दर्प
दोलालीलासरलतरलो दृश्यतेऽस्या मुखेन्दु ॥ ३० ॥]

विदूषक—यह स्फटिक मणि का ऊँचा चबूतरा है, मित्र । यहाँ बैठो ।

(राजा बैठता है)

विदूषक—(हाथ उठाकर) महाराज । पूर्णिमा का चन्द्रमा देखिये ।

राजा—(देखकर) अरे । हिडोले पर बैठी हुई मेरी प्रेमिका के मुख को पूर्णिमा का चन्द्र बतलाता है । (चारो ओर देखकर)—

कर्पूरमञ्जरी का चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख नगर की समस्त स्त्रियो के मुखो को अपने सौन्दर्य से मलिन करता हुआ, कान्तिरूपी चॉदनी के विस्तार से आकाश को उज्ज्वल करता हुआ तथा देखने वाले पुरुषो और स्त्रियो के हृदय के गर्व को नष्ट करता हुआ झूठे के आने जाने से पास तथा दूर दिखाई पडता है ॥ ३० ॥

अवि अ **[अपि च]**—

उच्चेहि गोउरेहिं धवलधअवटाडम्बरिल्लावलीहिं
घण्टाहिं विन्दुरिल्लासुरतरुणिविमाणाणुरूयं वहन्ती।
पाकार लङ्घअन्ती कुणइ रअवसा उण्णमन्ती णमन्ती
एन्ती जन्ती अ दोला जणमणहरण कट्टनुक्कट्टणेहिं ॥ ३१ ॥

[उच्चेषु गोपुरेषु धवलध्वजपटाडम्बरबहलावलीषु
घण्टाभिर्विद्राणसुरतरुणिविमानानुरूप वहन्ती।
प्राकार लङ्घयन्ती करोति रयवशादुन्नमन्ती नमन्ती
आयान्ती यान्ती च दोला जनमनोहरण कर्षणोत्कर्षणै ॥ ३१ ॥]

अवि अ **[अपि च]**—

रणन्तमणिणेउर झणझणतहारच्छड
कलक्कणिदकिङ्किणीमुहरमेहलाडम्बर।
विलोलवलआवलीजणिदमज्जुसिञ्जारव
ण कस्स मणमोहण समिमुहीअ हिन्दीलण ॥ ३२ ॥

[रणन्मणिनूपुरझणझणायमानहारच्छट
कलक्वणितकिङ्किणीमुखमेखलाडम्बरम्।
विलोलवलयावलीजनितमञ्जुशिञ्जारव
न कस्य मनोमोहन शशिमुख्या हिन्दोलनम् ॥ ३२ ॥]

श्वेत ध्वजाओ की पङ्क्तियो से युक्त ऊँचे गोपुरो मे घण्टे के शब्द से शीघ्र जाते हुए देवाङ्गनाओ के विमान की तरह चलता हुआ, चहारदीवारी को भी लाङ्घने वाला, वेग से ऊपर और नीचे जाता हुआ, तथा खैचने और छोड देने से पास आता और जाता हुआ यह झूला लोगो के मन को अपनी ओर आकृष्ट करता है ॥ ३१ ॥

और भी—

मणिनूपुरो की झङ्कार से युक्त, हारावली के झन् झन् शब्द से पूर्ण, करधनी की छोटी-छोटी घण्टियो के मधुर शब्द से युक्त तथा चञ्चल कङ्कणो से उत्पन्न मधुर शब्द वाला यह चन्द्रमुखी कर्पूरमञ्जरी का झूलना किसके मन को अच्छा नही लगता ? ॥ ३२ ॥

विदूषक—भो ! सुत्तआरो तुम । अह उण वित्तिआरो भविअ वित्थरेण वण्णेमि ।
[भो ! सूत्रकारस्त्वम् । अह पुनर्वृत्तिकारो भूत्वा विस्तरेण वर्णयामि]—

उवरिट्ठिअथणपब्भारपीडिअ चरणपकजजुअ से ।
फक्कारइव्व मउण रणतमणिणेउररवेण ॥ ३३ ॥

[उपरिस्थितस्तनप्राग्भारपीडित चरणपङ्कजयुग तस्या ।
फूत्कारयतीव मदन रणन्मणिनूपुररवेण ॥ ३३ ॥]

हिन्दोलणलीलाललणलपडं चक्कवत्तुल रमण ।
किलकिलइ व्व सहरिस काञ्चीमणिकिङ्किणिरवेण ॥ ३४ ॥

[हिन्दोलनलीलाललनलम्पट चक्रवर्त्तुल रमणम् ।
किलकिलायतीव सहर्ष काञ्चीमणिकिङ्किणीरवेण ॥ ३४ ॥]

दोलादोलणलीलासरतसरिआछलेण से हारो ।
वित्थारद व्व कुसुमाउहरणवइणो कित्तिवल्लीओ ॥ ३५ ॥

[दोलान्दोलनलीलासरत्सरिकाच्छलेनास्या हार ।
विस्तारयतीव कुसुमायुधनरपते कीर्तिवल्ली ॥ ३५ ॥]

विदूषक—मित्र ! तुम तो सूत्रकार हो—अर्थात् सक्षेप मे बोलते हो, मै वृत्तिकार के रूप मे विस्तारपूर्वक वर्णन करुँगा ।

कर्पूरमञ्जरी के चरण कमल, ऊपर उठे हुए स्तनो के उभार से दब कर मणिनूपुरो के शब्द द्वारा कामदेव को बुलाते हुए से लगते है ॥ ३३ ॥

हिडोले की लीला के साथ लीला करने के लालची और चक्र की तरह गोलकर्पूरमञ्जरी के नितम्ब, करधनी मे लगी हुई रत्नो का छोटी-छोटी घण्टियो के शब्द द्वारा हर्ष के साथ मानो किलकिलाते है ॥ ३४ ॥

हिण्डोले चलने के साथ चलती हुई मुक्तावली के द्वारा कर्पूरमञ्जरी का हार कामदेवरूपी राजा की कीर्ति परम्परा को फैलाता सा है ॥ ३५ ॥

समुहपवणप्पेरिदोवरिवत्थे दरदस्सिदाइ अगाइ ।
हक्कारिऊण मअणं पासम्मि णिवेसअति व्व ॥ ३६ ॥

[सम्मुखपवनप्रेरितोपरिवस्त्रे दरदर्शितान्यङ्गानि ।
आकार्य्य मदन पार्श्वे निवेशयन्तीव ॥ ३६ ॥]

ताडकजुअ गण्डेसु बहलघुसिणेसु घडणलीलाहिं ।
देइ व्व दोलान्दोलणरेहाओ गणणकोदुएण ॥ ३७ ॥

[ताटङ्कयुग गण्डयोर्बहलघुसृणयोर्घटनलीलाभि ।
ददातीव दोलान्दोलनरेखा गणनकौतुकेन ॥ ३७ ॥]

णअणाइ पसिदिसरिसाइ झत्ति फुल्लाइ कोदुहल्लेण ।
अप्पेन्ति व्व कुवलआसलीमुहे पञ्चबाणस्स ॥ ३८ ॥

[नयने प्रसृतिसदृशे झटिति फुल्ले कौतूहलेन ।
अर्प्येते इव कुवलयशिलीमुखे पञ्चबाणस्य ॥ ३८ ॥]

दोलारअविच्छेओ कह पि मा होउ त्ति पडइ व्व ।
पुट्ठम्मि वेणिदडो मम्महचम्मजट्ठिआअतो ॥ ३९ ॥

[दोलारसविच्छेद कथमपि मा भवत्विति पततीव ।
पृष्ठे वेणीदण्डो मन्मथचर्मयष्टिकायमान ॥ ३९ ॥]

सामने से आती हुई हवा के द्वारा ऊपर के वस्त्र के हट जाने पर कुछ-कुछ दिखाई देती हुई इसकी जङ्घाएँ कामदेव को बुला कर पास बैठाती हुई सी दिखाई देती है ॥ ३६ ॥

कर्पूरमजरी के कानो मे पडे हुये ताटङ्क उसके कुङ्कुम लगे हुये कपोलो पर बार-बार लगने से ऐसे मालूम देते हैं जेसे झूला झूलने की गिनती करने के लिए रेखाएँ लगाते हो ॥

कर्पूरमञ्जरी की बडी-बडी ऑखे कुतूहल मे एकाएक खूली हुइ ऐसी लगती है मानो कामदेव ने नीलकमलरूपी बाण कामीपुरुषो के मन मे छोड दिये हो ॥३८ ॥

हिण्डोलने मे किसी तरह कमी न आये— इस विचार से कर्पूरमञ्जरी की वीणा कामदेव की चर्मनिर्मित कशा की तरह उसकी पीठ पर पडती है ॥ ३९ ॥

इअ एआइ विलासुज्जलाइं दोलापवञ्चचरिआइ ।
कस्स ण लिहेइ चित्ते णिउणो कन्दप्पचित्तअरो ।। ४० ।।

[इत्येतानि विलासोज्ज्वलानि दोलाप्रपञ्चचरितानि ।
कस्य न लिखति चित्ते निपुण कन्दर्पचित्रकर ? ।। ४० ।।]

राजा—(सविषादम्) कथमवदिण्णा कप्पूरमञ्जरी । रित्ता दोला, रित्त अ मह चित्त, रित्ताइ दसणुस्सुआइ मह णअणाइ । **[कथमवतीर्णा कर्पूरमञ्जरी । रिक्ता दोला, रिक्त च मम चित्त, रिक्ते दर्शनोत्सुके मम नयने ।]**

विदूषक —ता विज्जुल्लेहा विअ खणदिट्ठणट्ठा । **[तद्विद्युल्लेखेव क्षणदृष्टनष्टा ।]**

राजा—मा एव भण, हरिअदपुरी विअ दिट्ठा पणट्ठा अ । **[मैवं भण, हरिश्चन्द्रपुरीव दृष्टा प्रनष्टाच ।]** (स्मृतिनाटितकेन)—

मञ्जिट्ठी ओट्ठमुद्दा णवघडणसुवण्णुज्जला अङ्गजट्ठी
दिट्ठी बालेन्दुलेहाधवलिमजइणी कुन्तला कज्जलाहा ।
इत्थ बण्णाण रेहा बिहरइ हरिणीचञ्चलच्छी अ एसा
कन्दप्पो दीहदप्पो जुअजणजअणे पुण्णलक्खो ब्व भादि ।। ४१ ।।

कामदेवरूपी चतुर चित्रकार ऊपर वर्णन किए गए विलास से पूर्ण झूला झूलने के विस्तृत चित्रो को किसके हृदय पर चित्रित नही करता है ? ।। ४० ।।

राजा—(दु ख के साथ) अरे, कर्पूरमञ्जरी तो उतर पडी ? झूला खाली हो गया, मेरा मन भी खाली हो गया और उसको देखने के लिए लालायित मेरी ऑखे भी खाली हो गई । ।

विदूषक—वह बिजली की चमक की तरह कभी दिखाई देती है कभी छिप जाती है ।

राजा—ऐसा मत कहो, हरिश्चन्द्र की नगरी की तरह दिखाई दी और नष्ट हो गई । (स्मृति का अभिनय कर)—

कर्पूरमञ्जरी के ओठ लाल है, उसका पतला शरीर नवीन सुवर्ण की तरह चमकता हैं, ऑखे द्वितीया के चन्द्रमा से भी अधिक उज्ज्वल है, केश काजल की

[माञ्जिष्ठी ओष्ठमुद्रा नवघटनसुवर्णोज्ज्वलाऽङ्गयष्टि
दृष्टिर्बालेन्दुरेखाधवलिमजयिनी कुन्तला कज्जलाभा ।
इत्थ वर्णाना रेखा विहरति हरिणीचञ्चलाक्षी चैषा
कन्दर्पो दीर्घदर्पे युवजनजये पूर्णलक्ष्य इव भाति ॥ ४१ ॥]

विदूषक — एद त मरगअकुञ्ज । इह उवविसिअ पिअवअस्सो पडिवालेदु त । सञ्झा वि सण्णिहिदा वट्टदि । **[एतत्तन्मरकतकुञ्जम्। इहोपविश्य प्रियवयस्य प्रतिपालयतु ताम्। सन्ध्याऽपि सन्निहिता वर्त्तते।]**

(उभौ तथा कुरुत)

राजा—अदिसिरसिर वि हिमाणि सतावदाइणि अणुहवामि । **[अतिशिशिरामपि हिमानी सन्तापदायिनीमनुभवामि।]**

विदूषक—ता लच्छीसहअरो खण चिट्ठदु देवो, जाव अह सिसिरोव आरसामग्गि सपादेमि। (इति नाट्येन निष्क्रम्य पुरोऽवलोक्य च) कि पुण एसा विअक्खणा इदो णिअडिआ आअच्छदि ? । **[तल्लक्ष्मीसहचर क्षण तिष्ठतु देव., यावदह शिशिरोपचारसामग्री सम्पादयामि [इति नाट्येन निष्क्रम्य पुरोऽवलोक्य च] किं पुनरेषा विचक्षणा इतो निकटे आगच्छति ?]**

तरह काले है— इस तरह कर्पूरमञ्जरी मे रङ्गो का अनिर्वचनीय सौन्दर्य झलक रहा है, कर्पूरमञ्जरी स्वय भी हिरनी की तरह चञ्चल नेत्र वाली है। ऐसा लगता है कि साक्षात् महान् गर्वशाली कामदेव ही नवयुवको के हृदय को जीतने का अपना मनोरथ पूरा कर रहे है ॥ ४१ ॥

विदूषक—यह मरकतकुञ्ज है, प्रिय मित्र । यहॉ बैठकर उनकी प्रतीक्षा करो शाम भी हो गई है ।

(दोनो बैठते है)

राजा—अत्यन्त शीतल हिम भी गरम मालुम पडता है ।

विदूषक—श्रीमान् लक्ष्मी (राजलक्ष्मी) के साथ यहॉ प्रतीक्षा करे, मैं गर्मी दूर करने की सामग्री तैयार करता हूॅ (अभिनय के साथ बाहर जाकर और सामने देख कर) क्या यह विचक्षणा पास आ रही है ?

राजा—सणिहिदो सकेदकालो कहिदो मतीहि पि। **[सन्निहित सङ्केतकाल कथितो मन्त्रिभ्यामपि ।]** (स्मृत्वा मदनाकूतमभिनीय)—

किसलअकरचरणा वि हु कुवलअणअणा मिअङ्कवअणा वि ।
अहह ! णवचम्पअङ्गी तह वि हु तावेइ अच्चरिय ॥ ४२ ॥

[किसलयकरचरणाऽपि खलु कुवलयनयना मृगाङ्कवदनाऽपि ।
अहह ! नवचम्पकाङ्गी तथाऽपि खलु तापयत्याश्चर्यम् ॥ ४२ ॥]

विदूषक—(सम्यगवलोक्य) अए ! विअक्खणा सिसिरोवआरसामग्गीसहिद-हत्था आअदा । **[अये ! विचक्षणा शिशिरोपचारसामग्रीसहितहस्ता आगता ।]**

(तत प्रविशति शिशिरोपचारसामग्रीसहिता विचक्षणा)

विचक्षणा—(परिक्रम्य) अहो ! पिअसहीए महतो खु विरहदाहज्जरो । **[अहो ! प्रियसख्या महान् खलु विरहदाहज्वर]**

विदूषक—(उपसृत्य) भोदि ! कि एद ? **[भवति ! किमेतत् ?]**

विचक्षणा—सिसिरोवआरसामग्गी । **[शिशिरोपचारसामग्री]**

राजा—मन्त्रियो ने भी सङ्केत-काल के पास होने का जिक्र किया है । (याद करके कामावेश को प्रकट कर) —

नये पत्तो के समान कोमल चरणो वाली, नीलकमल के समान नेत्रो वाली, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली तथा चम्पा के नये फूल के समान मनोहर अङ्गो वाली भी यह कर्पूरमञ्जरी सन्ताप उत्पन्न करती है—यह बडा आश्चर्य है ॥ ४२ ॥

विदूषक—(अच्छी तरह देखकर) अरे ! शिशिरोपचार की सामग्री हाथ मे लिये विचक्षणा आ रही है ?

(शिशिरोपचार की सामग्री लिये विचक्षणा आती है)

विचक्षणा—(घूमकर) प्रिया सखी को बड़ा दाहज्वर है ।

विदूषक—(पास जाकर) मान्ये ! यह क्या है ?

विचक्षणा—शीतलता पहुँचाने का सामान ।

विदूषक —कस्स किदे । **[कस्य कृते ?]**

विचक्षणा—पिअसहीए किदे । **[प्रियसख्या कृते ।]**

विदूषक —ता मह वि अद्ध देहि ? **[तन्मह्यमपि अर्ध देहि ?]**

विचक्षणा—कि णिमित्त ? **[कि निमित्तम् ?]**

विदूषक — महाराअस्स किदे ।**[महाराजस्य कृते ।]**

विचक्षणा—कि पुण कारण तस्स ? **[किं पुन कारण तस्य ?]**

विदूषक—कप्पूरमञ्जरिए वि कि ? **[कर्पूरमञ्जर्या अपि किम् ?]**

विचक्षणा—कि ण जाणासि महाराअस्स दसण ? **[किं न जानासि महाराजस्य दर्शनम् ?]**

विदूषक —तुम वि कि ण जाणासि महाराअस्स कप्पूरमञ्जरीए दसण ? **[त्वमपि किं न जानासि महाराजस्य कर्पूरमञ्जर्या दर्शनम् ?]**

(इत्युभौ हसत)

विदूषक—किसके लिये ?

विचक्षणा—अपनी प्रिय सखी के लिए ।

विदूषक—मेरे लिए भी आधा दो ।

विचक्षणा—किस लिए ?

विदूषक—महाराज के लिए ।

विचक्षणा—उनको क्या हो गया है ?

विदूषक—कर्पूरमञ्जरी को क्या हो गया है ?

विचक्षणा—क्या कर्पूरमञ्जरी के महाराज के दर्शन करने का पता नही है ?

विदूषक—क्या महाराज के कर्पूरमञ्जरी को देखने का पता नही है ?

(दोनो हॅसते हैं)

विचक्षणा—ता कहि महाराओ ? **[तत् कुत्र महाराज ?]**

विदूषक—**तुह वअणेण मरगअकुञ्जे चिट्ठदि। [तव वचनेन मरकतकुञ्जे तिष्ठति।]**

विचक्षणा—ता महाराएण सह मरगअकुञ्जदुआरे चिट्ठ खण, जेण उह अदसणे जादे सिसिरोवआरसामग्गीए जलञ्जली दिज्जदि। **[तन्महाराजेन सह मरकतकुञ्जद्वारे तिष्ठ क्षण, येनोभयदर्शने जाते शिशिरोपचारसामग्र्या जलाञ्जलिर्दीयते।]**

विदूषक—(तामपहत्य) तहि गच्छ जदो णागच्छसि। **[तत्र गच्छ यतो नागच्छसि]** (इति क्षिपति) (पुनस्ता प्रति) ता कीस दुआरदेसे भविदव्व ? **[तत् किं द्वारदेशे भवितव्यम् ?]**

विचक्षणा—देवीए आदेसेण कप्पूरमञ्जरी समाअच्छदि। **[देव्या आदेशेन कर्पूरमञ्जरी समागच्छति।]**

विदूषक—को तीए आदेसो ? **[क तस्या आदेश ?]**

विचक्षणा—तहि देवीए बालतरुणो तिण्णि आरोविदा। [तत्र देव्या बालतरवस्त्रय आरोपिता।]

विदूषक—को को ? **[क क ?]**

विचक्षणा—महाराज कहाँ है ?

विदूषक—तुम्हारे कहने से मरकतमणि से युक्त चबूतरे पर है।

विचक्षणा—महाराज के साथ मरकतकुञ्ज के द्वार पर कुछ देर ठहरो, ताकि दोनो को एक दूसरे के दर्शन हो जाने पर शिशिरोपचार सामग्री को छोड दिया जाय।

विदूषक—(उसको खीच कर) वहाँ जा, जहाँ से फिर न आवे। (धक्का देता है) (फिर उससे) क्या मै द्वार पर ठहरूँ ?

विचक्षणा—देवी के आदेश से कर्पूरमञ्जरी आयेगी।

विदूषक—उनका क्या आदेश है ?

विचक्षणा—वहाँ पर महारानी ने तीन छोटे-छोटे वृक्ष लगाये है।

विदूषक—कौन, कौन ?

विचक्षणा—कुरवअतिलअअसोआ। [कुरबकतिलकाशोका]

विदूषक—ता कि तेहि ? [**तत् किं तै ?**]

विचक्षणा— भणिदा सा देवीए जधा [**भणिता सा देव्या यथा**]—

कुरवअतिलअअसोआ आलिंगणदसणग्गचरणहआ।
विअसन्ति कामिणीण ता ताण देहि दोहलअ॥ ४३॥

[कुरबकतिलकाशोका आलिङ्गनदर्शनाग्रचरणहता।
विकसन्ति कामिनीना तत्तेषा देहि दोहदकम्॥ ४३॥]

एण्हि त सपादइस्सदि। [**इदानी तत् सम्पादयिष्यति।**]

विदूषक—तामरगअकुञ्जादो पिअवअस्स। आणिअ तमालविडवन्तरिद ठाविअ एद पच्चक्ख करइस्स। [**तन्मरकतकुञ्जात् प्रियवयस्यमानीय तमालविटपान्तरित स्थापयित्वा एतत्प्रत्यक्ष कारयिष्यामि**] (तथा नाटयित्वा राजान प्रति) भो भो! उट्ठिअ पेक्ख णिअहिअअसमुद्दचन्दलेह। [**भो भो! उत्थाय प्रेक्षस्व निजहृदयसमुद्रचन्द्रलेखाम्।**]

(राजा तथा करोति)

विचक्षणा—कुरबक, तिलक और अशोक।

विदूषक—उनसे क्या काम ?

विचक्षणा—उससे महारानी ने इस तरह कहा है—

कामिनियो के आलिङ्गन से कुरबक, देखने से तिलक तथा पादाघात से अशोक खिलता है, इसलिए इनका दोहद अभिलाष पूर्ण कर॥ ४३॥

अब वह उसे पूर्ण करेगी।

विदूषक—मरकत कुञ्ज से महाराज को लाकर तमालविटप मे छिपा कर यह दृश्य प्रत्यक्ष दिखलाऊँगा। (ऐसा अभिनय कर-राजा से) अरे, उठो, अपने हृदय समुद्र की चन्द्रलेखा को देखो।

(राजा वैसा ही करता है)

(तत प्रविशति विशेषभूषिताङ्गी कर्पूरमञ्जरी)

कर्पूरमञ्जरी—कहि पुण विअक्खणा ? **[क्व पुनर्विचक्षणा ?]**

विचक्षणा—(तामुपसृत्य) सहि ! करीअदु देवीए समादिट्ठ **[सखि ! क्रियता देव्या समादिष्टम् ।]**

राजा—बअस्स ! कि पुण त ? **[वयस्य ! किं पुनस्तत् ?]**

विदूषक—तमालविडबान्तरितो जाण । **[तमालविटपान्तरितो जानीहि ।]**

(राजा तथा करोति)

विचक्षण—एसो कुरवअतरू । **[एष कुरवकतरू. ।]**

(कर्पूरमञ्जरी तमालिङ्गति)

राजा—

णवकुरवअरुक्खो कुम्भथोरत्थणीए रहसविरइएण णिब्भरालिगणेण ।
तह कुसुमममिद्धि लम्भिदो सुन्दरीए जह भमलकुलाण तत्थ जत्ता पउत्ता ।४४ ॥

[नवकुरवकवृक्ष कुम्भस्थूलस्तन्या रभसविरचितेन निर्भरालिङ्गनेन ।
तथा कुसुमसमृद्धि लम्भित सुन्दर्या यथा भ्रमरकुलाना तत्र यात्रा प्रवृत्ता ॥४४ ॥]

(विशेष रूप से अङ्गो को सजाये हुए कर्पूरमञ्जरी आती है)

कर्पूरमञ्जरी—विचक्षणा कहॉ है ?

विचक्षणा—(उसके पास जाकर) सखी ! महारानी की आशा पूर्ण करो ?

राजा—मित्र ! वह कैसी आशा है ?

विदूषक—तमाल विटप मे छिपकर देखे ।

(राजा वैसा ही करता है)

विचक्षणा—यह कुरबक का वृक्ष है ।

(कर्पूरमञ्जरी उसका आलिगन करती है)

राजा—कुम्भो के समान स्थूल स्तनवाली अर्थात् खूब उभरे हुये स्तनवाली इस नायिका ने यकायक किये हुये अपने प्रगाढ आलिगन से नये कुरबक वृक्ष मे इतने फूल खिला दिये है कि भौरो का वहॉ मडराना प्रारम्भ हो गया है ॥ ४४ ॥

विदूषक —भो । पेक्ख पेक्ख महिन्दजाल । जेण [**भो प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व महेन्द्रजाल येन**] –

बालो वि कुरवअतरू तरुणीए गाढमुवगूढो।
सहस त्ति कुसुमणिअर मअणसर विअ समुग्गिरइ ॥ ४५ ॥

[बालोऽपि कुरबकतरुस्तरुण्या गाढमुपगूढ ।
सहसेति कुसुमनिकर मदनशरमिव समुद्गिरति ॥ ४५ ॥]

राजा—ईदिसो ज्जेव दोहलअस्स प्पहावो । [**ईदृश एव दोहदस्य प्रभाव ।**]

विचक्षणा—अह एसो तिलअद्दुभो । [**अथैष तिलकद्रुम ।**]

(कर्पूरमञ्जरी चिर तिर्यगवलोकयति)

राजा—

तिक्खाणा तरलाण कज्जलकलासवग्गिदाण पि से
पासे पञ्चसर सिलीमुहधर णिच्च कुणन्ताण अ।
णेत्ताण तिलअद्दुमे णिवडिदा घाडी मअच्छीअ ज
त सो मञ्जरिपुञ्जदन्तुरसिरो रोमाञ्चिदो व्व ट्ठिदो ॥ ४६ ॥

विदूषक—अरे ! इस जादू की विद्या को देखो, जिससे कि—

इस छोटे ही कुरबक वृक्ष पर इस सुन्दरी के प्रगाढ आलिगन से अचानक ही कामदेव के बाणो की तरह फूल निकलने लगे है ॥ ४५ ॥

राजा—दोहद का प्रभाव ही ऐसा है ।

विचक्षणा—यह तिलक का वृक्ष है ।

(कर्पूरमञ्जरी बडी देर तक तिरछी निगाह से देखती है)

राजा—हिरन जैसे नयनो वाली इस के तीक्ष्ण और चञ्चल, काजल लगे हुये तथा हमेशा बाण धारण किये हुये कामदेव को अपने पास करने वाले (रखने वाले) नेत्र ज्यो ही तिलक वृक्ष पर पडे कि मजरी के समूह से उसकी अग्रशाखाये इस तरह लद गई जैसे कि उसे रोमाञ्च हो गया हो ॥ ४६ ॥

[तीक्ष्णयोस्तरलयो कज्जलकलासवल्गितयोरप्यस्या
पार्श्वे पञ्चशर शिलीसुखघर नित्य कुर्वतोश्च ।
नेत्रयोस्तिलकद्रुमे निपतिता घाटी मृगाक्ष्या यत्
तत् स मञ्जरीपुञ्जदन्तुरशिरा रोमाञ्चित इव स्थित ॥ ४६ ॥]

विचक्षणा—एसो असोअसाही । **[एष अशोकशाखी ।]**

(कर्पूरमञ्जरी चरणताडन नाटयति)

राजा—

असोअतरुताडण रणिदणेउरेणघिणा
किद मअलञ्छणच्छविमुहीअ हेलुल्लस ।
सिहासु सुअलासु वि त्थवअमण्डणाडम्बर
ठिद अ गअणङ्गण जणणिरिक्खणिज्ज खण ॥ ४७ ॥

[अशोकतरुताडन रणितनूपुरेणाङ्घ्रिणा
कृतञ्च मृगलाच्छनच्छविमुख्या हेलोल्लासम् ।
शिखासु सकलास्वपि स्तबकमण्डनाडम्बर
स्थितञ्च गगनाङ्गन जनरिरीक्षणीय क्षणम् ॥ ४७ ॥]

विदूषक—भो वअस्स ! ज सअ ण किद दोहलअदाण देवीए, जाणासि एत्थ कि कारण ? **[भो वयस्य ! यत् स्वय न कृत दोहदकदान देव्या, जानासि तत्र किं कारणम् ?]**

विचक्षणा—यह अशोक का वृक्ष है ।

(कर्पूरमञ्जरी पैर मारने का अभिनय करती है)

राजा—चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त मुखवाली इस कर्पूरमजरी ने नूपुर बजते हुये अपने चरण से विलासपूर्वक ज्यो ही अशोक वृक्ष पर पदाघात किया कि क्षणमात्र मे ही सब चोटियो पर गुच्छो के खिलने से चमकता हुआ आकाश सुन्दर हो गया ॥ ४७ ॥

विदूषक—मित्र ! महारानी ने स्वय दोहद देने का कार्य नही किया, क्या इसका कारण जानते हो ?

राजा— तुम जाणेसि, **[त्व जानासि]**

विदूषक —भणामि, जइ देवो ण कुप्पदि । **[भणामि, यदि देवो न कुप्यति ।]**

राजा— को एत्थ रोसावसरो ? भण उन्मुद्दिआए जीहाए । **[कोऽत्र रोषावसर ? भण उन्मुद्रितया जिह्वया ।]**

विदूषक —

इह जइ वि कामिणीण सुन्देर धरइ अवअवाण सिरी ।
अहिदेवअ व्व णिवसइ तह वि हु तारुण्णए लच्छी ॥ ४८ ॥

[इह यद्यपि कामिनीना सौन्दर्य धारयत्यवयवाना श्री ।
अधिदेवतेव निवसति तथाऽपि खलु तारुण्ये लक्ष्मी ॥ ४८ ॥]

राजा—सुणिदो दे अहिप्पाओ । कि उण कि वि भणामो **[श्रुतस्तेऽभिप्राय । किं पुन किमपि भणाम]**—

बालाओ होन्ति कोऊहलेण एमेअ चवलचित्ताओ ।
दरलसिदथणीसु पुणो णिवसइ मअरद्धअरहस्स ॥ ४९ ॥

[बाला भवन्ति कौतूहलेनैवमेव चपलचित्ता ।
दरलसितस्तनीषु पुनर्निवसति मकरध्वजरहस्यम् ॥ ४९ ॥]

राजा—क्या तुम जानते हो ?

विदूषक—कहूँ, यदि श्रीमान् क्रोध न करे ।

राजा—इसमे क्रोध का क्या अवसर है, जबान खोलकर कहो ?

विदूषक—ससार मे यद्यपि स्त्रियो के अगो की शोभा मे ही सौन्दर्य होता है, फिर भी युवावस्था मे सौन्दर्य अधिष्ठात्री देवता की तरह रहता है, अर्थात् युवावस्था मे विशेष सौन्दर्य दिखाई पडता है ॥ ४८ ॥

राजा—तेरा अभिप्राय सुना । फिर भी कुछ कहता हूँ—

बालाये कुतूहल से इसी तरह चञ्चल चित्तवाली होती है । जिनके कुछ-कुछ स्तन उभर आये हो, उनमे तो काम का रहस्य ही छिपा रहता है ॥ ४९ ॥

विदूषक—तरुणो वि रूअरेहारहस्सेण फुल्लति, ण उण रइरहस्स जाणन्ति। **[तरवोऽपि रूपरेखारहस्येन विकसन्ति, न पुनः रतिरहस्य जानन्ति।]**

(नेपथ्ये)

वैतालिक—सुअसझा भोदु देवस्स **[सुखसन्ध्या भवतु देवस्य]**—

लोआणं लोअणेहि सह कमलवण अद्धणिद्द कुणन्तो
मुञ्चन्तौ तिक्खभाव सह अ सरभस माणिणीमाणसेहिं।
मुञ्जिट्ठारत्तसुत्तच्छविकिरणचओ चक्कवाएक्कमित्तो
जादो अत्थाचलत्थी सपदि दिणमणी पक्कणारंगपिंगो॥ ५० ॥

[लोकाना लोचनै सह कमलवनमर्द्धनिद्र कुर्वन्
मुञ्चस्तीक्ष्णभाव सह च सरभस मानिनीमानसै।
मञ्जिष्ठारक्तसूत्रच्छविकिरणचयश्चक्रवाकैकमित्र
जातोऽस्ताचलार्थी सपदि दिनमणि पक्वनारङ्गपिङ्ग॥ ५० ॥]

राजा—भो वअस्स। सणिहिदो सझासमओ वट्टदि **[भो वयस्य! सन्नि हित सन्ध्यासमयो वर्त्तते।]**

विदूषक—सकेदकालो कधिदो वदीहि। **[सङ्केतकाल कथितो वन्दिभि।]**

विदूषक—वृक्ष भी सौन्दर्य के प्रभाव से खिल उठते है, यद्यपि के रतिरहस्य नही जानते है।

(नेपथ्य में)

वैतालिक—महाराज के लिये सन्ध्या सुखकर हो—

मञ्जिष्ठा राग से रगे हुये सूत्रो की तरह कान्तिवाली किरणो को धारण करने वाला, चक्रवाक पक्षियो का परम मित्र तथा पकी हुई नारगी के सामन लाल और पीला सूर्य लोगो को ऑखो के साथ-साथ कमल वन को निमीलित-सा करता हुआ, मानिनियो के मन के साथ-साथ अपने तेज को घटाता हुआ एक दम अस्ताचल की ओर जाने लगा है॥ ५० ॥

राजा—मित्र! सन्ध्या समय निकट आ गया है।

विदूषक—बन्दिगणो ने सकेत-काल बता दिया है।

कर्पूरमञ्जरी—सहि विअक्खणे । गमिस्स दाव, विआलो सवुत्तो । **[सखि विचक्षणे । गमिष्यामि तावत् । विकाल सवृत्त ।]**

विचक्षणा—एव्व करीअदु । **[एव क्रियताम् ।]**

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता सर्वे)

॥ इति द्वितीयजवनिकान्तरम् ॥

कर्पूरमञ्जरी—सखि विचक्षणे । मै तो चलूगी, शाम हो रही है ।

विचक्षणा—ऐसा ही करो ।

(घूम कर सब चले जाते हैं)

॥ दूसरा जवनिकान्तर समाप्त ॥

तृतीयं जवनिकान्तरम्

(तत प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—(तामनुसन्धाय)—

दूरे किज्जउ चम्पअस्स कलिआ कज्ज हलिद्दाअ कि
उत्तत्तेण अ कञ्चणेणा गणणा का णाम जच्चेण वि ।
लावण्णस्स णवग्गदेन्दुमहुरच्छाअस्स तिस्सा पुरो
पच्चगोहि वि केसरस्स कुसुमक्केरेहि कि कारण ॥ १ ॥

**[दूरे क्रियता चम्पकस्य कलिका कार्य हरिद्राया. किम्
उत्तप्तेन च काञ्चनेने गणना का नाम जात्येनापि
लावण्यस्य नवोद्गतेन्दुमधुरच्छायस्य तस्या पुर
प्रत्यग्रैरपि केसरस्य कुसुमोत्करै कि कारणम् ॥ १ ॥]**

अवि अ **[अपि च]**–

(राजा और विदूषक रगमच पर आते है)

राजा—(उसको याद कर) —

चम्पा की कली को दूर रखो, हल्दी से भी क्या प्रयोजन ? नवीन चन्द्रमा की तरह मधुर कान्ति वाले कर्पूरमञ्जरी के लावण्य के सामने विशुद्ध और तपे हुये सोने की भी क्या गिनती ? नये केसर के फूलो से क्या फल ? अर्थात् कर्पूरमञ्जरी के सौन्दर्य की चम्पा, हरिद्रा, तपे हुये सोने तथा केसर के फूल इन किसी से भी उपमा नही बन सकती ॥ १ ॥

और भी—

मरगअमणिजुट्ठा हारलट्ठि व्व तारा भमरकवलिअद्धा मालईमालिए व्व ।
रहसवलिअकठी तीअ दिठ्ठी वरिट्ठा सवणपहणिविट्टा माणस मे पविट्टा ॥ २ ॥

[मरकतमणिजुष्टा हारयष्टिरिव तारा भ्रमरकवलिताद्धी मालतीमालिकेव ।
रभसवलितकण्ठी तस्या दृष्टिर्वरिष्टा श्रवणपथनिविष्टा मानस मे प्रविष्टा । २ ।]

विदूषक—भो वअस्स ! कि तुम भज्जाजिदो विअ किं पि कि पि कुरुकुराअन्तो चिट्ठसि ? । **[भो वयस्य ! किं त्व भार्याजित इव किमपि किमपि कुरुकुरायमाणस्तिष्ठसि ?]**

राजा—वअस्स ! सिविणअ दिट्ठ अणुसधेमि । **[वयस्य ! स्वप्न दृष्टमनुसन्दधामि ।]**

विदूषक—ता कधेदु पिअवअस्सो । **[तत् कथयतु प्रियवयस्य ।]**

राजा—

जाणे पङ्करुहाणणा सिविणए म केलिसज्जागअ
कदोट्टेण तडित्ति ताडिडमणा हत्थतरे सठिआ ।
ता कोटेण मए वि झत्ति धरिआ ढिल्ल वरिल्लचले
त मोत्तूण गअ अ तीअ सहसा णट्ठा अ णिद्दा बि मे ॥ ३ ॥

वेग से अथवा प्रसन्नता से दर्शको के ध्यान को अपनी ओर खीचने वाली कर्पूरमञ्जरी की सुन्दर दृष्टि श्यामवर्ण की मरकत मणियो से युक्त उत्तम हार की तरह, भ्रमरो से आधी घिरी हुई मालती पुष्पो की माला की तरह और उसके कानो तक खिची हुई मेरे मन मे समा गई है ॥ २ ॥

विदूषक—मित्र ! पत्नी द्वारा जीते हुए पुरुष की तरह यह तुम क्या कुरकुराते हो ?

राजा—मित्र ! एक स्वप्न देखा था, उसे याद कर रहा हूँ ।

विदूषक—प्रियमित्र ! मुझे भी बतलाओ ।

राजा—मुझे ऐसा याद पडता है कि कमल के समान मुख वाली यह कर्पूरमञ्जरी स्वप्न मे मेरी विहारशय्या पर आई और नीलकमल जैसे अपने नेत्रो से प्रहार करने की इच्छा से अचानक मेरी भुजाओ के बीच बैठ गई । तब मैने भी कुतूहल

**[जाने पङ्करुहानना स्वप्ने मां केलिशय्यागतम्
इन्दीवरेण झटिति ताडितुमना हस्तान्तरे सस्थिता।
तत् कौतूहलेन मयापि झटिति धृता शिथिल वस्त्राञ्चले
तन्मोचयित्वा गत तथा च सहसा नष्टा च निद्राऽपि मे ॥ ३ ॥]**

विदूषक—(स्वगतम्) भोदु एव्व दाव। (प्रकाशम्) भो वअस्स ! अज्ज मए वि सिविण दिट्ठ। **[भवतु एव तावत् (प्रकाशम्) भो वयस्य ! अद्य मयाऽपि स्वप्नो दृष्ट ।]**

राजा—(सप्रत्याशम्) ता कहिज्जदु कीरिस त सिविणअ ? **[तत् कथ्यता कीदृश स स्वप्न]**

विदूषक—अज्ज जाणे, सिविणए सुरसरिदासोत्ते सुत्तो म्हि, ता हर सिरसोवरि दिण्णलीलाचलणाए गगाए पक्खालिदो म्हि तोएण। **[अद्य जाने, स्वप्ने सुरसरित्स्रोतसि सुप्तोऽस्मि, तद्धरशिरस उपरि दत्तलीलाचरणाया गङ्गया प्रक्षालितोऽस्मि तोयेन।]**

राजा—तदो तदो ? **[ततस्तत ?]**

विदूषक—तदो सरअसमअवरिसिणा जलहरेण जधिच्छ पीदो म्हि। **[तत शरत्समयवर्षिणा जलधरेण यथेच्छ पीतोऽस्मि।]**

से उसके अञ्चल को धीरे से पकडा, लेकिन वह छुडाकर भाग गई और मेरी निद्रा भी टूट गई ॥ ३ ॥

विदूषक—(अपने मन में) होगा ऐसा। (प्रकाश में) मित्र ! आज मैने भी स्वप्न देखा है।

राजा—(प्रत्याशा के साथ) बताओ तो तुम्हारा स्वप्न कैसा है ?

विदूषक—आज ऐसा लगता है मानो स्वप्न मे गगा के प्रवाह मे मै सो गया हूँ और शिवजी के सिर पर लीला मे चरण रखने वाली गगा के जल से जैसे मुझे स्नान करा दिया गया है।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर शरत् ऋतु मे बरसने वाले बादलो मे खूब भीगा।

राजा—अच्छरिअ ! ! अच्छरिअ ! ! तदो तदो ? **[आश्चर्यमाश्चर्यम् ! ! ततस्तत ?]**

विदूषक—तदो सत्तिणक्खत्तगदे भअवदि मत्तण्ड तम्बवण्णाण दीसगद समुद्द गदो महामेहो, जाणे, अह वि मेहगब्भट्ठिदो गच्छेमि। **[तत स्वातीनक्षत्रगते भगवति मार्त्तण्डे ताम्रपर्णीनदीसङ्गत समुद्र गतो महामेघ, जाने, अहमपि मेघगर्भस्थितो गच्छामि।]**

राजा—तदो तदो ? **[ततस्तत ?]**

विदूषक— तदो सो तहिं थूलजलबिन्दूहि वरिसिदु पउत्तो । अह अ रदणाअरसुत्तीहि मुत्ताणमहेआहिं सपुड समुग्धाडिअ जलबिन्दूहिं सम पीदो म्हि, ताण अ दसमासप्पमाण मोत्ताहल भविअ गब्भे ट्ठिदो । **[ततोऽसौ तत्र स्थूलजलबिन्दुभिर्वर्षितु प्रवृत्त, अहञ्च रत्नाकरशुक्तिभिर्मुक्तानामधेयाभि सम्पुट समुद्घाट्य जलबिन्दुभि समं पीतोऽस्मि, तासाञ्च दशमाषप्रमाण मुक्ताफल भूत्वा गर्भे स्थित ।]**

राजा—तदो तदो ? **[ततस्तत]?**

राजा—आश्चर्य है ! आश्चर्य है ! फिर क्या हुआ ?

विदूषक—तब भगवान् सूर्य के स्वामी नक्षत्र मे पहुँचने पर महामेघ ताम्रपर्णी नदी से मिले हुये समुद्र पर गया, याद पडता है जैसे मै भी मेघ के गर्भ मे चला जा रहा था ।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर यह वहॉ पर बडी-बडी बूँदो के साथ बरसने लगा, मूझे भी समुद्र मे रहने वाली मुक्ता नाम की सीपियॉ आवरण तोड कर जल की बूँदो के साथ पी गई । दस माष (पचास घुँघली) के बराबर आकार का मोती बनकर मै उनके गर्भ मे रहा ।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक —

तदो चउस्सट्ठिसु सुत्तिसु ट्ठिदो घणम्बुबिन्दू जिदवसरोअणो।
सुवत्तुल णित्तलमच्छमुज्जल कमेण पत्तो णवमोत्तिअत्तण ।। ४ ।।

[ततश्चतु षष्टिषु शुक्तिषु स्थितो घनाम्बुबिन्दुर्जितवशरोचन ।
सुवर्तुल निस्तलमच्छमुज्ज्वल क्रमेण प्राप्तो नवमौक्तिकत्वम् ।। ४ ।।]

राजा—तदो तदो ? **[ततस्तत ?]**

विदूषक —तदो सोहमत्ताण ताण सुत्तीण गब्भगअ मुत्ताहलत्तणेण मण्णेमि । **[तत सोऽहमात्मान तासा शुक्तीना गर्भगत मुक्ताफलत्वेन मन्ये ।]**

राजा—तदो तदो ? **[ततस्तत ?]**

विदूषक—तदो परिणदे काले समुद्दाहिंतो कड्ढिदाओ जाओ सुत्तीओ फाडिदाओ अ । अह चतुस्सट्ठिमुत्तहलत्तण गदो ठिदो । किणिदो अ एक्केण सेट्ठिणा सुवण्ण-लक्ख दइअ । **[तत परिणते काले समुद्रात् कर्षितास्ता शुक्तय विदारिताश्च । अह चतु षष्टिमुक्ताफलत्व गत स्थित । क्रीतश्चैकेन श्रेष्ठिना सुवर्णलक्ष दत्त्वा ।]**

विदूषक—फिर ६४ सीपियो के अन्दर स्थिर जल की बूँद के समान और वशलोचन से भी उत्कृष्ट मै गोल और चमकीले नये मोती मे धीरे-धीरे बदल गया ।।४ ।।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—तब उन शुक्तियो के गर्भ मे पडा हुआ मै अपने को मोती समझने लगा ।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर समय बीतने पर वे सीपियाँ समुद्र से निकाल ली गई और फोडी गई । मै चौसठ मोतियो के रूप मे था । एक सेठ ने सुवर्णलक्ष देकर मुझे मोल ले लिया ।

राजा—अहो । विचित्तदा सिविणअस्स । तदो तदो ? **[अहो । विचित्रता स्पप्नस्य । ततस्तत ?]**

विदूषक—तदो तेण आणिअ वेधआरएहि वेधाबिआइ मोत्तिआइ । मम वि ईसीसि वेअणा समुप्पण्णा । **[ततस्तेनानीय वेधकारैर्वेधितानि मौक्तिकानि। ममापीषद्वेदना समुत्पन्ना ।]**

राजातदो—तदो ? **[ततस्तत, ?]**

विदूषक—तदो **[तत]**—

> **तेणावि मुत्ताहलमण्डलेण एक्केक्कआए दसमासिएण ।**
> **एक्कावली गठिकमेण गुत्था जा संठिआ कोटिसुवण्णमुल्ला ॥ ५ ॥**
> [तेनापि मुक्ताफलमण्डलेनैकैकतया दशमाषिकेण ।
> एकावली ग्रन्थिक्रमेण गुम्फिता सा सस्थिता कोटिसुवर्णमूल्या ॥ ५ ॥]

राजा—तदो तदो ? **[ततस्तत ?]**

विदूषक—तदो त करण्डिआए कदुअ साअरदत्तो णाम बाणिओ गदो पञ्चालाहि-वस्स सिरिवज्जाउहस्स णअर कण्णउज्ज णाम, तहिं च सा विक्किणीदा कोटीए सुबणस्स । **[ततस्ता करण्डिकाया कृत्वा सागरदत्तो नाम वणिक् गत**

राजा—अरे । बडा विचित्र स्वप्न है । फिर क्या हुआ ?

विदूषक—तब उसने वेधकारो को बुलाकार मोतियो मे छेद कराये । मुझे भी कुछ वेदना हुई ।

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—तब फिर—

उस सेठ ने भी दस माष के बराबर (पचास पचास घुघली) मोतियो से एक-एक लड वाला हार बनवाया, उसका मूल्य कोटि सुवर्ण था ॥ ५ ॥

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर इस हार को करण्डिका मे रखकर सागरदत्त नाम का बनिया पाञ्चाल देश के राजा श्रीवज्रायुध के कान्यकुब्ज नगर मे गया । उसने वहॉ उस हार को एक कोटि सुवर्ण मुद्राओ मे बेच दिया ।

पाञ्चालाधिपस्य श्रीवज्रायुधस्य नगर कान्यकुब्ज नाम। तत्र च सा विक्रीता कोट्या सुवर्णस्य।]

राजा—तदो तदो ? **[ततस्तत ?]**

विदूषक —तदो अ **[ततश्च]**–

दट्टूण थोरत्थणतुगिमाण एक्कावलीए तह चगिमाण ।
सा तेण दिण्णा दइदाइ कण्ठे रञ्जन्ति छेआ समसगमम्मि ॥ ६ ॥

[दृष्ट्वा स्थूलस्तनतुङ्गिमानमेकावल्यास्तथा चाङ्गिमानम् ।
सा तेन दत्ता दयिताया कण्ठे रज्यन्ति च्छेका समसङ्गमे ॥ ६ ॥]

अवि अ **[अपि च]**–

णहबहलिअजोण्हाणिब्भरे रत्तिमज्झे
कुसुमसरपहारत्तासमीलिदाण ।
णिहुवणपरिरंभे णिब्भरुतुगपीण-
त्थणकलसणिवेसा पीडिदोह विबुद्धो ॥ ७ ॥

[नभोबहलितज्योत्स्नानिर्भरे रात्रिमध्ये
कुसुमशरप्रहारत्राससमिलितयो ।
निधुवनपरिरम्भे निर्भरोत्तुङ्गपीन-
स्तनकलशनिवेशात्पीडितोऽह विबुद्ध ॥ ७ ॥]

राजा—फिर, फिर ?

विदूषक—फिर—

पाञ्चाल देश के राजा वज्रायुध ने अपनी रानी के उठे हुए स्तनो के उभार तथा एकावली हार के सौन्दर्य को देखकर वह हार अपनी रानी के गले मे पहना दिया। विद्वान् बराबर का बराबर वाले के साथ सगम देखकर प्रसन्न होते है ॥६ ॥

और भी—

आकाश मे जब खूब चादनी खिली हुई थी, ऐसी मध्यरात्रि मे कामदेव के प्रहार और डर से मिले हुए उन राजदम्पती की जब सुरतक्रीडा प्रारम्भ हुई तब आलिंगन मे घट के समान खूब उठे हुये स्तनो के बैठ जाने से मुझ पर दबाव पडा और मै जाग गया ॥ ७ ॥

राजा—(किञ्चिद्विहस्य विचिन्त्य च)—

सिविणअमिअ असच्च त दिट्ठ मेणुसधमाणस्स।
पडिसिविणएण तस्स वि णिआरण तुह अहिप्पाओ॥ ८॥

[स्वप्नमिममसत्य तत् दृष्ट ममानुसन्दधत ।
प्रतिस्वप्नेन तस्यापि निवारण तवाभिप्राय ॥ ८ ॥]

विदूषक—भट्टो ठक्कुरो छुहाकिलन्तो बह्मणो, अविणीदहिअआ बालरण्डा विरहिदो अ माणुसो मणोरधमोदएहि अत्ताण विडबेदि। अवि अ वअस्स! पुच्छेसि, कस्स उण एसो पहाओ? **[भ्रष्टो राजा, क्षुधाक्लान्तो ब्राह्मण, अविनीतहृदया बालरण्डा, विरहितश्च मानुषो मनोरथमोदकैरात्मान विडम्बयति। अपि च वयस्य! पृच्छामि, कस्य पुनरेष प्रभाव?]**

राजा—पेम्मस्स। [प्रेम्ण]

राजा—(कुछ हॅसकर और विचार कर)—

मै इस झूठे स्वप्न का ध्यान कर रहा था। अपने प्रति स्वप्न को सुना कर तूने मुझे स्वप्न के याद करने से भी रोक दिया॥ ८॥

विदूषक—उन्मत्त हुआ राजा, भूख से व्याकुल ब्राह्मण, पुरुषससर्ग को चाहने वाली धूर्त स्त्री और विरही मनुष्य मन के लड्डुओ से अपने को प्रसन्न रखता है। मित्र! बताओ तो, यह किसका प्रभाव है?

राजा—प्रेम का।

विदूषक—मित्र! महारानी से इतना प्रेम होने पर भी कर्पूरमञ्जरी को इस तरह देखते हो जैसे की सारे अग मे ऑखे लगाकर उसे पी जाओगे। क्या महारानी के गुण कर्पूरमञ्जरी से कुछ कम है?

राजा—ऐसा मत कहो।

विदूषक —भो ! देवीगदे पणअप्परूढे वि पेम्मे किं त्ति कप्पूरमञ्जरी सव्वगवित्था-रिदलोअणो पिअन्तो विअ अवलोएसि ? किं तदो वि परिहीअमाणगुणा देवी ? **[भो ! देवीगते प्रणयप्ररूढेऽपि प्रेम्णि किमिति कर्पूरमञ्जरी सर्वाङ्गविस्तारित-लोचन पिबन्निव अवलोकयसि ? किं ततोऽपि परिहीयमाणगुणा देवी ?]**

राजा—मा एव्व भण **[मैव भण]**—

कदा वि सघडइ कस्स वि पेम्मगण्ठी
एवमेव तत्थ ण हु कारणमत्थि रूअ ।
चङ्गत्तण उण महिज्जदि ज तहि पि
ता दिज्जए पिसुणलोअमुहेसु मुद्दा ॥ ९ ॥

[कदापि सङ्घटते कस्यापि प्रेमग्रन्थि
एवमेव तत्र न खलु कारणमस्ति रूपम् ।
चङ्गत्व पुनर्मृग्यते यत्त्रापि
तद्दीयते पिशुनलोकमुखेषु मुद्रा ॥ ९ ॥]

विदूषक —भो ! कि उण एद पेम्म पेम्मति भणन्ति ? । **[भो ! कि पुनरेतत् प्रेम प्रेमेति भणन्ति ?]**

राजा—अण्णोण्णमिलिदस्स मिधुणस्स मअरद्धअसासणेण परूढ पणअग्गठि प्पेम्मति छइल्ला भणन्ति । **[अन्योऽन्यमिलितस्य मिथुनस्य मकरध्वज शासने प्ररूढ प्रणयग्रन्थि प्रेमेति विदग्धा भणन्ति ।]**

किसी भी समय किसी का किसी पर प्रेम यो हो जाता है, इस प्रेम-सम्बन्ध मे सौन्दर्य कारण नही होता । फिर भी प्रेम मे सौन्दर्य को जो कारण बताया जाता है वह दुष्ट लोगो के मुँह को बन्द करने के लिये ही—दुष्ट लोग जिस किसी से भी प्रेम करने को बुरा न बताये इसलिये सुन्दरता आदि गुणो का उल्लेख कर दिया जाता है ॥ ९ ॥

विदूषक—यह 'प्रेम-प्रेम' किसे कहा जाता है ?

राजा—एक दूसरे के पास बैठे हुये स्त्री पुरुषो का कामदेव की आज्ञा से उत्पन्न हुआ भाव प्रेम कहलाता है ।

विदूषक—किदिसो सो ? **[कीदृश स ?]**

राजा—

जस्सि विअप्पघडणाइकलकमुक्को उत्ताणअस्स सरलत्तणमेइ भावो ।
एक्कक्कअस्स पसरन्तरसप्पवाहो सिगारवडिढअमणोहवदिण्णसारो ॥ १० ॥

[यस्मिन् विकल्पघटनादिकलङ्कमुक्त आत्मन. सरलत्वमेति भाव ।
एकैकस्य प्रसरद्रसप्रवाह. शृङ्गारवर्द्धितमनोभवदत्तसार. ॥ १० ॥]

विदूषक—कध विअ सो लक्खीअदि ? **[कथमिव स लक्ष्यते ?]**

राजा—

जाण सहावपसरन्तसुलोलदिट्ठीपेरन्तलुठिअमणाण परम्परेण ।
वड्ढन्तमम्महविइण्णरसप्पसारो ताण पआसइ लहु विअ चित्तभावो ॥ ११ ॥

[ययो स्वभावप्रसरत्सुलोलदृष्टिपर्यन्तलुण्ठितमनसो परस्परेण ।
वर्धमानमन्मथवितीर्णरसप्रसारस्तयो प्रकाशते लघुरिव चित्तभाव ॥ ११ ॥]

अवि अ **[अपि च]**—

अन्तो णिविट्ठमअणविब्भमडम्मर ज
त भण्णए अ मअणमण्डणमेत्थ पेम्म ।

विदूषक—वह भाव कैसा होता है ?

राजा—किस भाव के उत्पन्न होने पर एक दूसरे के चित्त के विचार सशय इत्यादि भावो से रहित हो जाते है, जिसमे आनन्द का स्रोत-सा बहता है और शृङ्गार से प्रवृद्ध कामदेव के द्वारा जिसमे उत्कर्ष आ जाता है तथा सरलता आ जाती है वह भावप्रेम कहलाता है ॥ १० ॥

विदूषक—वह भाव किस तरह दिखाई पडता है ।

राजा—आपस मे स्वभाव से ही बडी और चञ्चल ऑखो के कटाक्षो के प्यासे जिन स्त्री पुरुषो मे आनन्दातिरेक प्रवृद्ध कामदेव द्वारा उत्पन्न दिखाई पडता है, उन स्त्री-पुरुषो के मन का अभिप्राय बहता हुआ सा प्रकट होता है ॥ ११ ॥

और भी—

दुल्लक्खअ पि ज पअडेइ जणो जअम्मि
त जाणिमो अ सुबहुलं मअणिन्दजाल ॥ १२ ॥

[अन्तर्निविष्टमदनविभ्रमडम्बर यत्
तत् भण्यते च मदनमण्डनमत्र प्रेम ।
दुर्लक्ष्यमपि यत् प्रकटयति जनो जगति
तज्जानीमश्च सुबहुल मदनेन्द्रजालम् ॥ १२ ॥]

विदूषक—जइ चित्तगद पेम्ममणुराअमुप्पादेदि, ता किं कज्जदि मण्डणाडम्बरविडम्बणाए ? **[यदि चित्तगत प्रेम अनुरागमुत्पादयति, तत् किं क्रियते मण्डनाडम्बरविडम्बनया ?]**

राजा—वअस्स ! सच्चमिण [वयस्य ! सत्यमिदम्]—

किं मेहलावलअणेउरसेहरेहिं ? किं
चङ्गिमाअ ? किमु मण्डणडम्बरेहिं ?
त अण्णमत्थि इह किंपि णिअम्बिणी-
ओ जेण लहन्ति सुहअत्तणमञ्जरीओ ॥१३ ॥

[कि मेखलावलयनूपुरशेखरै ? कि
चङ्गिमत्वेन ? किमु मण्डनाडम्बरै ?
तदन्यदस्तीह किमपि नितम्बिन्यो
येन लभन्ते सुभगत्वमञ्जरी ॥ १३ ॥]

हृदय को प्रभावित किये हुये कामदेव को जो विलासाडम्बर है वह ही इस ससार मे प्रेम कहलाता है । ससार मे लोग गुप्त बातो को भी इसके प्रभाव से प्रकट कर देते है यह कामदेव ॥ १२ ॥

विदूषक—अगर हृदय का प्रेम ही आसक्ति उत्पन्न करता है, तो अलङ्कारो मे क्यो बेकार परिश्रम किया जाता है ?

राजा—मित्र ! यह सत्य है—

करधनी, कङ्कन, पायजेब और सिर के आभूषण से कुछ नही होता है । सौन्दर्य भी कही-कही व्यर्थ रहता है । बाह्य शृङ्गार भी व्यर्थ है । ससार मे यह तो कोई और ही चीज है जिससे स्त्रियाँ आकर्षक लगती है ॥ १३ ॥

अवि अ **[अपि च]**–

किं गेअणिट्टविहिणा ? किमु वारुणीए ?
धूवेण किं अणुरुणा ? किमु कुकुमेण ?
मिट्ठत्तणे महिअलम्मि ण कि वि अण्ण
रुच्चिस्स अत्थि सरिस पुणु माणुसस्स ? ॥ १४ ॥

[कि गेयनृत्यविधिना ? किमु वारुण्या ?
धूपेन किमगुरुणा किमु कुङ्कुमेन ।
मधुरत्वे महीतले न किमप्यन्यत्
रुचेरस्ति सदृश पुनर्मानुषस्य ॥ १४ ॥]

अवि अ **[अपि च]**–

जा चक्कवट्टिघरिणी जणगेहिणी वा
पेम्मम्मि ताण ण तिल वि विसेसलाहो ।
जाणे सिरीअ जई किज्जइ को वि भावो
माणिक्कभूसणणिअसणकुङ्कुमेहिं ॥ १५ ॥

[या चक्रवर्तिगृहिणी जनगेहिनी वा
प्रेम्णि तयोर्न तिलमात्रमपि विशेषलाभ ।
जाने श्रिया यदि क्रियते कोऽपि भावो
माणिक्यभूषणनिवसनकुङ्कुमै ॥ १५ ॥]

और भी—

गाने और नाचने से कुछ नही होता है, मदिरा भी बेकार है, अगुरु का सुगन्धित धुआँ भी निरर्थक है, कुङ्कुमराग से भी कुछ लाभ नही । मनुष्य की रुचि के समान पृथ्वी पर कोई भी वस्तु मधुर नही है ॥ १४ ॥

और भी—

चाहे चक्रवर्ती राजा की रानी हो, या साधारण पुरुष की स्त्री हो, इन दोनो के प्रेम मे तिलभर भी भेद नही होता है । अगर सौन्दर्य-शोभा से कोई भाव होता है तो वह मानसिक, आभूषण, सुन्दर वस्त्र और कुङ्कुम से होता है—ऐसा मै समझता हूँ ॥ १५ ॥

अवि अ **[अपि च]**—

किं लोअणेहिं ?तरलेहिं किमाणणेण
चन्दोवमेण ? थणएहिं किमुण्णएहि ?
त किं पि अण्णमिह भूवलए णिमित्तं
जेणगणाउ हिअआउ ण ओसरन्ति ॥ १६ ॥

[किं लोचनैस्तरलै ? किमाननेन चन्द्रोपमेन ? स्तनै किमुन्नतै ?
तत्किमप्यन्यदिह भूवलये निमित्त येनाङ्गना हृदयान्नापसरन्ति ॥ १६ ॥]

विदूषक—एव्व णेद, कि उण उण्ण पि मे कधेसु, ज, कुमारत्तणे माणुसस्स अमणोज्जमेतस्सि वि तरुणत्तणे चङ्गत्तण वद्ढदि । **[एवमेतत्, किं पुनरन्यदपि मे कथय, तत् कुमारत्वे मानुषस्यामनोज्ञम्, एतस्मिन्नपि तारुण्ये चङ्गत्त्व वर्द्धते ?]**

राजा—

णूण दुवे इह पजावइणो जअम्मि जे देहणिम्मवणजोव्वणदाणदक्खा ।
एक्को घडेइ पढम कुमरोणमङ्ग उक्कारिऊण पअडेइ पुणो दुदीओ ॥ १७ ॥

[नून द्वाविह प्रजापती जगति यौ देहनिर्माणयौवनदानदक्षो ।
एको घटयति प्रथम कुमारीणामङ्गम् उत्कीर्य्य प्रकटयति पुनर्द्वितीय ॥ १७ । ।]

और भी—

चञ्चल नेत्रो से क्या ? चन्द्रमा जैसे मुख से भी कोई लाभ नही । उन्नत उरोजो से भी क्या प्रयोजन । इस ससार मे कोई और ही कारण है, जिससे स्त्रियॉ पुरुष के हृदयो को अपने वश मे कर लेती है ॥ १६ ॥

विदूषक—यह तो ऐसा है ही, कुछ और भी मुझे बताओ । यह क्या बात है कि जो शरीर कुमारावस्था मे सुन्दर नही लगता, वह युवावस्था मे सुन्दर हो जाता है ?

राजा—इस ससार मे दो प्रजापति है, जो शरीर बनाने मे और यौवन देने मे चतुर है । इनमे ब्रह्मा तो केवल कुमारियो का शरीर ही बनाता है किन्तु शरीर का विकास तो कामदेव के द्वारा ही होता है ॥ १७ ॥

तेण च [तेन च]–

रणिअवलअकञ्चीणेउरावासलच्छी
मरगअमणिमाला गोरिआ हारलट्ठी।
हिअअहरणमन्त जोव्वण कामिणीण
जअइ मअणकण्ड छट्ठइ वड्ढअ अ॥ १८॥

[रणितवलयकाञ्चीनूपुरावासलक्ष्मी-
मरकतमणिमाला गौरिका हारयष्टि ।
हृदयहरणमन्त्र यौवन कामिनीना जयति
मदनकाण्ड षष्ठको वर्द्धकश्च ॥ १८ ॥]

तहा अ [तथा च]–

अङ्ग लावण्णपुण्ण सवणपरिसरे लोअणा हारतारा
वच्छथोरत्थणिल्ल तिवलिवलइअ मुट्ठिगेण्ह च मज्झ।
चक्काआरो णिअम्बो तरुणिमसमए किं णु अण्णेण कज्ज?
पञ्चेहिं जेव्व बाला मअणजअमहावैजअन्तीउ होन्ति॥ १९॥

और उससे—

बजते हुए कङ्कण, करधनी और पायजेबो के पहिनने मे उत्पन्न होने वाली शोभा तो कुछ भी नही है, मरकतमणियो की माला तथा सोने का हार भी रहने दो। हृदय को वश मे करने वाला तथा कामदेव के छठे और प्रबल बाण के समान कामिनियो का यह यौवन सर्वोत्कृष्ट है ॥ १८ ॥

वैसे भी—

युवावस्था मे सुन्दरियो का शरीर लावण्य से भरपूर हो जाता है, ऑखे भी आकर्षक और बडी लगने लगती है, वक्ष स्थल पर स्तन खूब उभर आते है, कमर पतली हो जाती है तथा उस पर त्रिवलियॉ पड जाती है, नितम्बभाग खूब सुडौल और गोल हो जाता है। इन पॉच अङ्गो से ही बालाये कामदेव के ससार-विजय मे पताका का काम करती है अर्थात् सबसे आगे रहती है। किसी और की आवश्यकता ही क्या है ॥ १९ ॥

[अङ्ग लावण्यपूर्ण श्रवणपरिसरे लोचने हारतारे
वक्ष स्थूलस्तन त्रिवलिवलयित मुष्टिग्राह्यञ्च मध्यम् ।
चक्राकारो नितम्बस्तररुणिसमये कि त्वन्येन कार्यम् ?
पञ्चभिरेव बाला मदनजयमहावैजयन्त्यो भवन्ति ॥ १९ ॥]

(नेपथ्ये)

सहि कुरगिए ! इमिणा सिसिरोवआरेण णलिणीविअ काम किलिस्सामि [सखि कुरङ्गिके ! अनने शिशिरोपचारेण नलिनीव काम क्लाम्यामि]—

विस व्व विसकन्दली विसहरो व्व हारच्छडा
वअस्समिव अत्तणो किरइ तालवेण्टाणिलो ।
तहा अ करणिग्गअ जलइ जन्तधाराजल
ण चन्दणमहोसह हरइ देहदाह च मे ॥ २० ॥

[विषमिव बिसकन्दली विषधर इव हारच्छटा
वयस्यमिवात्मन किरति तालवृन्तानिल ।
तथा च करनिर्गत ज्वलति यन्त्रधाराजल
न चन्दनमहौषध हरति देहदाह च मे ॥ २० ॥]

विदूषक:—सुद पिअवअस्सेण ? भरिदा कण्णा पीऊसगण्डूसेहि, ता कि—अज्जवि उपेक्खीअदि घणघम्मेण किलिमती मुणालिआ ? गाढकड्ढणदुस्सहेण सलिलेण सिंञ्चिज्जन्ती केलिकुड्कुमत्थली ? छम्मासिअमोत्तिआण झडित्ति फुडती एक्काव-लिआ ? गण्ठिवण्णकेदारिआ लण्ठिज्जती गन्धहरिणेण ? ता सच्च दे

(नेपथ्य में)

सखि ! कुरगिके ! इस शिशिरोपचार से कमलिनी की तरह अत्यन्त ऊब गई हूँ ।

कमल का नाल विष की तरह मालूम पडता है, हार सापो की तरह लगते है । पखो की हवा भी अपने मित्र अग्नि को ही फैलाती है । यन्त्रधाराओ का जल भी तप रहा है । चन्दन का लेप भी शरीर का ताप दूर नही करता है ॥ २० ॥

विदूषक—क्या प्रिय मित्र ने सुना ? कान जैसे अमृत रस से भर गये हो । तीव्र धूप से मुरझाती हुई मृणालिका की क्या अब भी उपेक्षा की जायगी ? खूब गरम और

सिविणअ सपण्ण । एहि, पविसम्ह । उट्ठिज्जदु मअरद्धअपदाआ । पअट्टदु कण्ठ-कुहरम्मि पञ्चमहुकाराणा रिच्छोली । थक्कन्तु बाप्फप्पवाहा । मन्थरिज्जन्तु णीसा-सप्पसरा । लहदु लावण्ण पुणो णवभाव । ता एहि, खिडक्किआदुआरेण प्पविसम्ह । **[श्रुत प्रियवयस्येन ? भृतौ कर्णौ पीयूषगण्डूषै, तत् किमद्यापि उपेक्ष्यते घनघर्मेण क्लाम्यन्ती मृणालिका ? गाढक्वथितदु सहेन सलिलेन सिच्यमाना केलिकुङ्कुमस्थली ? षाण्मासिकमौक्तिकाना झटिति स्फुटन्ती एका-वली ? ग्रन्थिपर्ण-केदारिका लुण्ठ्यमाना गन्धहरिणेन ? तत् सत्य ते स्वप्न सम्पन्नम् । एहि, प्रविशाव उत्थाप्यतां मकरध्वजपताका । प्रवर्त्तता कण्ठकुहरे पञ्चमहुङ्काराणा रचना स्तोकीक्रियन्ता बाष्पप्रवाहा । मन्थरीक्रियन्ता नि श्वास-प्रसरा । लभता लावण्य पुनर्नवभावम् । तदेहि, खिडक्किकाद्वारेण प्रविशाव ।]**

(इति प्रविशत)

(तत प्रविशति नायिका कुरङ्गिका च)

नायिका—(ससाध्वस स्वगतम्) अम्मो ! किं एसो सहसा गअणङ्गणादो अवदीण्णो पुण्णिमाहरिणको ? किं बा तुट्ठेण णीलकण्ठेण णिअदेह लभिदो मणोहओ ? कि वा हिअअस्स दुज्जणो णअणाण सज्जणो जणा म सभावेदि ?

न सहने योग्य जल से सीची जाती हुई यह क्रीडाभूमि कब तक उपेक्षित रहेगी ? उत्कृष्ट मोतियो को एक दम गिराता हुआ यह हार कब तक उपेक्षित रहेगा ? ग्रन्थिपर्णो की यह क्यारी कस्तूरी मृग से बर्बाद होती हुई कब तक देखी जायगी ? तुम्हारा स्वप्न तो सच्चा ही हो गया । आओ, चले । कामदेव के झण्डे को उठाये । कोयल की पुकार शुरू होने दो । इसके आसुओ को रोके । इसका चित्त शान्त करे । लावण्य फिर से नया हो । आओ, खिडकी के द्वार से अन्दर घुसे ।

(अन्दर जाते है)

(तब नायिका और कुरङ्गिका रंगमच पर आती हैं)

नायिका—(घबराहट के साथ अपने मन में) अरे ! यह सहसा आसमान से पूर्णिमा का चन्द्रमा कैसे उतर आया ? क्या शिवजी ने प्रसन्न होकर कामदेव को उसका शरीर दे दिया ? क्या मेरे हृदय को चुराने वाला और आखो को तृप्त करने वाला कोई मुझे प्रसन्न कर रहा है ? (प्रकट में) सखि कुरङ्गिके ! मै तो जादू-सा देखती हूँ ।

(प्रकाशम्) सहि कुरङ्गिए ! इन्दजाल विअ पेक्खामि । **[अहो ! किमेष सहसा गगनाङ्गनादवतीर्णः पूर्णिमाहरिणाङ्कः ? कि वा तुष्टेन नीलकण्ठेन निजदेह लम्भितो मनोभव ? किं वा हृदयस्य दुर्जनो नयनाना सज्जनो जनो मा सम्भावयति ? (प्रकाशम्) सखि कुरङ्गिके । इन्द्रजालमिव पश्यामि ।]**

विदूषक — (राजान हस्ते गृहीत्वा) भोदि ! सच्च इन्दजाल सपण्ण । **[भवति ! सत्यमिन्द्रजाल सम्पन्नम् !]**

(नायिका लज्जते)

कुरङ्गिका—सहि कप्पूरमञ्जरी ! अब्भुट्ठाणेण सभावेहि भट्टारअ । **[सखि कर्पूर-मञ्जरि ! अभ्युत्थानेन सम्भावय भट्टारकम् ।]**

(नायिका उत्थातुमिच्छति)

राजा—(हस्तेन गृहीत्वा)—

उट्ठिऊण थणभारभगुर मा मिअकमुहि ! भञ्ज मज्झअ ।
तुज्झ ईरिसणिवेसदसणे लोअणाण मअणो पसीअउ ।। २१ ।।

[उत्थाय स्तनभारभङ्गुर मा मृगाङ्कमुखि ! भञ्जय मध्यम् ।
तवेदृशनिवेशदर्शनाल्लोचनयोर्मदन प्रसीदतु ॥ २१ ॥]

अवि अ **[अपि च]**–

विदूषक—(राजा का हाथ पकड कर) वस्तुत इन्द्रजाल ही हो गया ।

(नायिका शर्माती है)

कुरङ्गिका—सखी कर्पूरमञ्जरी ! उठकर महाराज का स्वागत करो ?

(नायिका उठना चाहती है)

राजा—(हाथ पकड कर)—

अयि चन्द्रमुखी ! मेरे स्वागत के लिये उठ कर स्तनो के भार से झुकी हुई अपनी कमर को मत तोडो । तुमको इस अवस्था मे देखकर ही मेरे नेत्र आनन्द का अनुभव कर रहे है ॥ २१ ॥

और भी—

जिस्सा पुरो ण हरिदा दलिआ हलिद्दा
रोसाणिअ ण कणकं ण अ चम्पआइ ।
ताइ सुवण्णकुसुमेहिं विलोअणाइ
अच्चेमि जेहिं हरिणच्छ ! तुमसि दिट्ठा ॥ २२ ॥

[यस्या पुरो न हरिता दलिता हरिद्रा
उज्ज्वलीकृत न कनक न च चम्पकानि ।
ते सुवर्णकुसुमैर्विलोचने
अर्चयामि याभ्या हरिणाक्षि ? त्वमसि दृष्टा ॥ २२ ॥]

विदूषक—गब्भघरवासेण सेअसलिलसित्तगता सभूदा तत्थभोदी कप्पूरमञ्जरी, ता इम सिचअचलेण वीजइस्स दाव । (तथा कुर्वन्) । हा ! हा ! कध वरिल्लपवणेण णिव्वणो प्पदीबो । (विचिन्त्य स्वगतम्) । भोदु, लीलोज्जाण जेव्व गच्छम्ह । (प्रकाशम्) । भो अधआरणच्चिद वट्टदि, ता णिक्कमम्ह सुरगामुहेण जेव्व पमदुज्जाण दाव । **[गर्भगृहवासेन स्वेदसलिलसिक्तगात्रा सम्भूता तत्रभवती कर्पूरमञ्जरी, तदिमा सिचयाञ्चलेन वीजयिष्यामि तावत् ।** (तथा कुर्वन्) **हा ! हा ! कथ वस्त्राञ्चलपवनेन निर्वाण प्रदीप ।** (विचिन्त्य स्वगतम्) **भवतु, लीलोद्यानमेव गच्छाम ।** (प्रकाशम्) **भो ! अन्धकारनृत्य वर्त्तते, तन्निष्क्रमाम सुरङ्गमुखेनैव प्रमदोद्यान तावत् ।]**

(सर्वे निष्क्रमण नाटयन्ति)

अयि हिरनी से नयनो वाली ! तेरे सामने पिसी हुई हल्दी भी कुछ नही है, साफ किया हुआ सोना भी तेरे सौन्दर्य के सामने तुच्छ है, चम्पा के फूल भी तेरी तुलना नही कर सकते । मेरी जिस ऑखो ने तुझ को देखा है, उनकी मै सुवर्ण के फूलो से पूजा करूँगा ॥ २२ ॥

विदूषक—अन्तर्गृह मे रहने से कर्पूरमञ्जरी के सारे शरीर पर पसीना आ रहा है, वस्त्र के छोर से इसको हवा कर दूँ (हवा करते हुए) अरे ! अरे ! वस्त्र के छोर की हवा से दीपक बुझ गया । (विचार कर अपने मन मे) चलो सैर करने बाग मे चलें । (प्रकट मे) बडा अन्धेरा है । सुरग के दरवाजे से ही बाग की ओर चलें ।

(सब निकलने का अभिनय करते हैं)

राजा—(कर्पूरमञ्जरी करे धृत्वा)—

मज्झ हत्थट्ठिदपाणिपल्लवा ईस सचरणबन्धुरा भव।
ज चिराअ कलहसमण्डली होउ केलिगमणम्मि दुब्भगा ॥ २३ ॥

[मम हस्तस्थितपाणिपल्लवा ईषत्सञ्चरणबन्धुरा भव।
यच्चिराय कलहसमण्डली भवतु केलिगमने दुर्भगा ॥ २३ ॥]

(स्पर्शसुखमभिनीय)

जे णवस्स तिउसस्स कण्टआ जे कदम्बमउलस्स केसरा।
अज्ज तुज्झ करफससगिहिं ते हुअंति मह अगणिज्जिदा ॥ २४ ॥

[ये नवस्य त्रपुषस्य कण्टका ये कदम्बमुकुलस्य केसरा ।
अद्य तव करस्पर्शसङ्गिभिस्ते भवन्ति ममाङ्गनिर्जिता ॥ २४ ॥]

(नेपथ्ये)

वैतालिक—सुहणिबन्धणो भोदु देवस्स चन्दुज्जोदो। **[सुखनिबन्धनो भवतु देवस्य चन्द्रोद्द्योत.]**—

राजा—(कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकड कर)—

मैंने अपने हाथ से तेरा कोमल हाथ पकड लिया है, तू धीरे-धीरे चलने के लिये प्रयत्न कर, ताकि हसो की चाल भी तेरी चाल के सामने अप्रिय हो जाय ॥२३ ॥

(स्पर्शजनित सुख का अभिनय कर)

त्रपुष नाम के फल मे जो काटे होते है, अथवा कदम्ब के फूल मे जो केसर होती है, वे सब तेरे हाथ का स्पर्श पाकर उत्पन्न हुए रोमाञ्च वाले मेरी अगो के सामने कुछ भी नही है ॥ २४ ॥

(नेपथ्य में)

वैतालिक—महाराज के लिए चन्द्रोदय सुखकर हो ।

भूगोले तिमिराणुबन्धमलिणे भूमीरुहेव्व ट्ठिदे
सजादा णवभुज्जपिज्जरमुही जोण्हाअ पुव्वा दिसा ।
मुञ्चन्तो मुजुकुन्दकेसरसिरीसोहाणुआरे करे,
चन्दो पेक्ख कलक्कमेण अ गदो सम्पुण्णबिम्बत्तण ॥ २५ ॥

[भूगोले तिमिरानुबन्धमलिने भूमिरुह इव स्थिते
सञ्जाता नवभूर्जपिञ्जरमुखी ज्योत्स्नया पूर्वा दिशा ।
मुञ्चन्मुचुकुन्दकेसरश्रीशोभानुकारान् करान्
चन्द्र पश्य कलाक्रमेण च गत सम्पूर्णबिम्बत्वम् ॥ २५ ॥]

अवि अ **[अपि च]**–

अकुकुममचन्दण दसदिसावहूमडण
अककणमकुण्डल भुवणमण्डलीभूसण ।
असोसणममोहण मअरलञ्छणस्साउह
मिअककिरणावली णह अलम्मि पुज्जिज्जइ ॥ २६ ॥

[अकुङ्कुममचन्दन दशदिशावधूमण्डन
अकङ्कणमकुण्डल भुवनमण्डलीभूषणम् ।
अशोषणममोहनं मकरलाञ्छनस्यायुध
मृगाङ्ककिरणावली नभस्तले पुञ्जीभवति ॥ २६ ॥]

अन्धकार के लगातार बढने से भूमण्डल के मलिन और वृक्ष की तरह नीले मालूम पडने पर पूर्व दिशा चॉदनी से नये भोजपत्र के समान पीली हो गई है । मुचुकुन्द फूल की केसर की शोभा के समान शोभावाली किरणो को बरसाता हुआ चन्द्रमा, देखो किस तरह धीरे-धीरे अपनी कलाओ से पूर्ण हो रहा है ॥ २५ ॥

और भी—

कुङ्कुम से रहित, चन्दनविहीन, दशो दिशाओ को सजाने वाली, कङ्कणरहित, विना कुण्डल की, ससार की शोभा, लोगो को तुम करने वाली तथा मोह न करने वाली और कामदेव की अस्त्रभूत ये चन्द्ररश्मियॉ आकाश मे इकट्ठी हो रही है ॥२६ ॥

विदूषक—भो। कणअचण्डेण वण्णिदा चन्दुज्जोदलच्छी, ता सम्पद माणिक्कचण्डस्सावसरो। [भो ! **कनकचण्डेन वर्णिता चन्द्रोद्द्योतलक्ष्मी, तत् साम्प्रत माणिक्यचण्डस्यावसर. ।**]

(नेपथ्ये)

द्वितीयो वैतालिक—

उज्झन्तागुरुधूववट्टिकलिआ दीज्जन्तदीवुज्जला
लम्बिज्जन्तविचित्तमोत्तिअलआ मुञ्चन्तपारावआ।
सज्जिज्जन्तमणोज्जकेलिसअणा जम्पन्तदूईसआ
सज्जुच्छङ्गवलन्तमाणिणिजणा वट्टन्ति लीलाघरा॥ २७॥

[दह्यमानागुरुधूपवर्त्तिकलिका दीप्यमानदीपोज्ज्वला
लम्ब्यमानविचित्रमौक्तिकलता मुच्यमानपारावता ।
सज्जीक्रियमाणमनोज्ञकेलिशयना जल्पद्दूतीशता
शय्योत्सङ्गवलन्मानिनीजना वर्त्तन्ते लीलागृहा ॥ २७ ॥]

अवि अ [**अपि च**]–

विदूषक—कनकचण्ड ने चादनी का वर्णन कर दिया, अब माणिक्यचण्ड की बारी है।

(नेपथ्य में)

द्वितीय वैतालिक—लीलागृहो मे अगरधूप की बत्तियॉ कलियो की तरह जल रही है, दीप्यमान दीपको से लीलागृहो मे प्रकाश हो रहा है, सुन्दर मौक्तिक लताएँ सजावट के लिए लटकी हुई है, अपने स्थानो से कबूतर छोड दिये गये है, सुन्दर शय्याये सजा दी गई है, सैकडो दूतियॉ इधर-उधर बात कर रही है, मानिनी स्त्रियॉ शय्याओ के पास बैठी हुई है ॥ २७ ॥

और भी—

देन्ता कप्पूरपूरच्छुरणमिव दिसासुन्दरीण मुहेसु
लण्ह होण्ह किरन्तो भुअणजणमणोणदण चदण ब्व ।
जिण्ण कन्दप्पकन्द तिहुअणकलणाकन्दलिल्ल कुणन्ता
जादा एणङ्कपादा सअलजलहरोम्मुक्कधाराणुआरा ॥ २८ ॥

[ददत कर्पूरपूरच्छुरणमिव दिशासुन्दरीणा मुखेषु
श्लक्ष्णा ज्योत्स्ना किरन्तो भुवनजनमनोनन्दन चन्दनमिव ।
जीर्ण कन्दर्पकन्द त्रिभुवनकलनाकन्दलित कुर्वन्तो
जाता एणाङ्कपादा सजलजलधरोन्मुक्तधारानुकारा ॥ २८ ॥]

विदूषक —

दिसवहुत्तसो णहसरहसो । णिहुवणकन्दो पसरइ चन्दो ॥ २९ ॥

[दिग्वधूत्तसो नभ सरोहस । निधुवनकन्द प्रसरति चन्द्र ॥ २९ ॥]

कुरङ्गिका—

ससहररइदमरट्टो माणिणिमाणघरट्टो ।
णवचम्पअकोदडो मअणो जअइ पअण्डो ॥ ३० ॥

[शशधररचितगर्वो मानिनीमानघरट्ट ।
नवचम्पककोदण्डो मदनो जयति प्रचण्ड: ॥ ३० ॥]

जल से भरे हुये मेघो से उन्मुक्त धाराओ जैसी चन्द्रमा की किरणे दिशारूपी सुन्दरियो के मुख पर कपूर के चूर्ण का लेप-सा देती हुई दिखाई देती है, सारे ससार के मन को प्रसन्न करने वाले चन्दन की तरह स्वच्छ और चिक्कण चादनी फैला रही है, शान्त कामदेव को तीनो लोको मे फैलाकर ये चन्द्रकिरणे काम का उद्दीपन कर रही है ॥ २८ ॥

विदूषक—दिशारूपी स्त्रियो का आभूषण, आकाशरूपी सरोवर मे हस की तरह विहार करने वाला तथा शृङ्गार रस का उद्दीपक यह चन्द्रमा उदय हो रहा है ॥२९ ॥

कुरङ्गिका—चन्द्रमा ने जिसको गर्वीला बना दिया है, जो मानिनी स्त्रियो के मान को चूर करने वाला है तथा चम्पा का नया फूल ही जिसका धनुष है ऐसा कामदेव बडी प्रचण्डता से ससार को जीत रहा है ॥ ३० ॥

(कर्पूरमञ्जरी प्रति)—पिअसहि ! तुए किद चन्दवण्णण महाराअस्स पुरदो पढिस्स । **[प्रियसखि ! त्वया कृत चन्द्रवर्णनं महाराजस्य पुरत पठिष्यामि ।]**

(कर्पूरमञ्जरी लज्जते । कुरङ्गिका पठति)

मण्डले ससरहस्स गोरए दन्तपज्जरविलासचोरए ।
भाई लछणमओ फुरन्तओ केलिकोइलतुल धरन्तओ ॥ ३१ ॥

मण्डले शशधरस्य गौरे दन्तपञ्जरविलासचौरे ।
भाति लाच्छनमृग स्फुरन् केलिकोकिलतुला धारयन् ॥ ३१ ॥

राजा—अहो ! कप्पूरमञ्जरीए अहिणवत्थदसण रमणीओ सद्दो, उत्तिविचित्त, रस-णिस्सदो अ । **[अहो ! कर्पूरमञ्जर्य्या अभिनवार्थदर्शन, रमणीय शब्द, उक्ति-विचित्रता, रसनिष्यन्दश्च ।]** (ता प्रति)

मा कहं पि वअणेण बिब्भमो होउ इत्ति तुह णूणमिन्दुणा ।
लछणच्छलमसीविसेसओ पेच्छ बिम्बफलये णिए कओ ॥ ३२ ॥

[मा कथमपि वदनेन विभ्रमो भवत्विति तव नूनमिन्दुना ।
लाच्छनच्छलमसीविशेषक पश्य बिम्बफलके निजे कृत ॥ ३२ ॥]

कि अ **[किञ्च]**—

(कर्पूरमञ्जरी से) प्रियसखि ! तुम्हारे द्वारा किया हुआ चन्द्रवर्णन महाराज के सामने पढूँगा ।

(कर्पूरमञ्जरी शर्माती है । कुरङ्गिका पढती है ।)

उज्ज्वल तथा हाथीदाँत के बने पिंजडे से भी अधिक सुन्दर चन्द्रमा के मण्डल मे घूमता हुआ यह कलङ्क मृग खिलौने के कोयल की तरह शोभायमान है ॥ ३१ ॥

राजा—आश्चर्य है, कर्पूरमञ्जरी ने नई बात कही है, शब्द भी सुन्दर है, उक्ति विचित्र है, रस भी खूब झलकता है । (कर्पूरमञ्जरी से)—

तेरे मुख को देख कर लोग चन्द्रमा न समझ बैठे इसलिए निश्चय ही चन्द्रमा ने अपने मण्डल मे कलङ्क के बहाने वह धब्बा लगा दिया है, तू देख ? ॥ ३२ ॥

और भी—

पण्डुरेण जई रज्जए मुह कोमलांगि ! खडिआरसेण दे ।
दिज्जए पुण कवोलकज्जल ता लहेदि ससिणो विडम्बण ॥ ३३ ॥

[पाण्डुरेण यदि रज्यते मुख कोमलाङ्गि ! खटिकारसेन ते ।
दीयते पुन कपोलकज्जल तदा लभते शशिनो विडम्बनम् ॥ ३३ ॥]

(चन्द्रमुद्दिश्य)

मुक्कसक ! हरिणक ! कि तुमं सुन्दरीपरिसरेण हिण्डसि ?
गोरेगण्डपरिपण्डुरत्तण पेच्छ दिण्णममुणा मुहे ण दे ? ॥ ३४ ॥

[मुक्तशङ्क ! हरिणाङ्क ! किं त्व सुन्दरीपरिसरेण हिण्डसे ? ।
गौरगण्डपरिपाण्डुरत्व पश्य दत्तममुना मुखे न ते ? ॥ ३४ ॥]

(नेपथ्ये महान् कलकल । सर्वे आकर्णयन्ति)

राजा—कि उण एस कोलाहलो ? **[किं पुनरेष कोलाहल ?]**

कर्पूरमञ्जरी—(ससाध्वसम्) पिअसहि ? एदअवगमिअ आअच्छ । **[प्रियसखि ! एतदवगम्य आगच्छ ।]**

(कुरङ्गिका निष्क्रम्य प्रविशति)

अयि कोमल शरीरवाली ! यदि सफेद खडिया का रस तुम्हारे मुँह पर लगाया जाय और गालो पर काला चिह्न बना दिया जाय, तो तुम्हारा मुख चन्द्रमा की समता करने लगेगा ॥ ३३ ॥

(चन्द्रमा को देख कर)

हे निर्लज्ज चन्द्रमा ! जिस सुन्दरी के मुख ने तेरे गोरे-गोरे गालो पर सफेदी दी है उस सुन्दरी के पास तू क्यो नही घूमता ?— तू बड़ा निर्लज्ज है ॥ ३४ ॥

(नेपथ्य मे बडा शोर होता है । सब सुनते है ।)

राजा—यह कोलाहल क्यो हो रहा है ?

कर्पूरमञ्जरी—(घबडाहट के साथ) प्रियसखि ! यह जान कर आओ ।

(कुरङ्गिका बाहर जाकर लौट आती है)

विदूषक—देवीए पिअवअस्सस्स वञ्चणा किदेत्ति तिक्केमि। **[देव्या प्रियवयस्यस्य वञ्चना कृतेति तर्कयामि।]**

कुरङ्गिका—पिअसहि! भट्टारअस्स वञ्चण कदुअ तुए सह सगम जाणिअ आअच्छदि देवी, तेण कुज्ज-वामण-किरात-वरिस वर-सोविदल्लाण एस हलबोलो। **[प्रियसखि! भट्टारकस्सय वञ्चना कृत्वा त्वया सह सङ्गम ज्ञात्वा आगच्छति देवी, तेन कुब्ज-वामन-किरात-वर्षवर-सौविदल्लानामेष कोलाहल ।]**

कर्पूरमञ्जरी—(सभयम्) ता म पेसेदु महाराओ, जेणाह इमिणा सुरगामुहेण ज्जेव पविसिअ रक्खाघरअ गच्छेमि, जह देवी महारायेण सह सगम ण जाणादि। **[तत् मा प्रेषयतु महाराज, येनाहमनेन सुरङ्गमुखेनैव प्रविश्य रक्षागृहक गच्छामि, यथा देवी महाराजेन सह सङ्गम न जानाति।]**

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

इति तृतीयजवनिकान्तरम्

विदूषक—महारानी ने प्रियमित्र को धोखा दिया—ऐसा समझता हूँ।

कुरङ्गिका—प्रियसखि! धोखा देकर तुझ से महाराज के मिलने का समाचार पाकर महारानी आ रही है, इसलिए कुब्ज-वामन-किरात-वर्षवर और सौविदल्लो का यह कोलाहल है।

कर्पूरमञ्जरी—(डर के साथ) महाराज मुझे आज्ञा दे, ताकि मै इस सुरङ्ग से ही निकल कर रक्षागृह मे चली जाऊ और महारानी को भी आप से मिलने का वृत्तान्त ज्ञात न हो।

(सब का प्रस्थान)

चतुर्थं जवनिकान्तरम्

(तत प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—अहो ! गाढअरो गिम्हो, पवणो अ प्पचण्डो, ता कध णु सहिव्वो, जदो—
[अहो गाढतरो ग्रीष्म, पवनश्च प्रचण्ड: तत कथं नु सोढव्य, यत]—

इह कुसुमसरेक्कगोअराण इदमुभअ पि हुदूसह त्ति मण्णे ।
जरढरइकरालिओ अ कालो तह अ जणेण पिएण विप्पलम्भो ॥ १ ॥

**[इह कुसुमशरैकगोचराणामिदमुभयमपि सुदु सहमिति मन्ये ।
जरठरविकरालितश्च कालस्तथा च जनेन प्रियेण विप्रलम्भ ॥ १ ॥]**

विदूषक—

एक्के दाव मम्महबाहणिज्जा अण्णे दाव सोसणिज्जा ।
अम्हारिसो उण जणो ण कामस्स बाहणिज्जो ण तावस्स सोसणिज्जो ॥ २ ॥

**[एके तावत् मन्मथबाधनीया अन्ये तापशोषणीया ।
अस्मादृश पुनर्जनो कामस्य बाधनीयो न तापस्य शोषणीय ॥ २ ॥]**

(राजा और विदूषक रगमच पर आते हैं)

राजा—अरे ! बडी गर्मी है, हवा भी गर्भ है, कैसे रहा जाय, क्योकि—

इस ससार मे कामार्तो के लिए ग्रीष्मऋतु तथा प्रियजन से वियोग ये दोनो बडे ही कष्ट देने वाले है—ऐसा मैं समझता हूँ ॥ १ ॥

विदूषक—कुछ लोगो को तो काम सताता है कुछ लोग गर्मी से दु ख पाते है । हम जैसे को तो न काम ही सताता है न गर्मी ही दु ख देती है ॥ २ ॥

(नेपथ्ये)

ता किं ण क्खु दे मूलुप्पाडिआविअल सीस करिस्स ? ।

[तत् किं न खलु ते मूलोत्पाटितचूलिकाविकलं शीर्ष करिष्यामि ? ।]

राजा—(विहस्य) बअस्स ! लीलावणसच्छन्दचारिणा केलिसुएण किं भणिद ? **[वयस्य ! लीलावनस्वच्छन्दचारिणा केलिशुकेन किं भणितम् ?]**

विदूषक—(सक्रोधम्) आ दासीए उत्त ! सूलाअरणजोग्गोसि । **[आ दास्या पुत्र ! शूलाकरणयोग्योऽसि ।]**

(नेपथ्ये)

सव्व तुम्हारिसाहिंतो सम्भाविज्जदि, जइ मे ण होन्ति पक्खावलीओ । **[सर्व युष्मादृशेभ्य सम्भाव्यते, यदि मे न भवन्ति पक्षावल्य ।]**

राजा—(विलोक्य) कह उड्डीणो ज्जेव्व । **[कथमुड्डीन एव ।]**

(विदूषक प्रति)

(नेपथ्य मे)

जड सहित चोटी कर तेरे सिर को विरूप क्यो न कर दूँ ?

राजा—(हँसकर) मित्र ! लीलावन मे स्वच्छन्द घूमने वाले तोते ने क्या कहा ?

विदूषक—(क्रोध के साथ) अरे दासी के पुत्र ! फाँसी देने के योग्य हो ।

(नेपथ्य मे)

तुम्हारे जैसे सब कुछ कर सकते है, अगर मेरे पख न हो ।

राजा—(देखकर) क्या उड ही गया ।

(विदूषक से)

णिसा तलिणवित्थरा तह दिणेसु वड्ढत्तण
ससी लहदि खण्डण तह अ चण्डबिम्बो रई ।
णिदाहदिअसेसु विप्फुरदि जस्स एव्व क्कसो
कह ण स विही तदो सुरसिहाइ खण्डिज्जदि ॥ ३ ॥

[निशाऽस्तलीनविस्तरा तथा दिनेषु वृद्धत्व
शशी लभते खण्डन तथा च चण्डबिम्बो रवि ।
निदाघदिवसेषु विस्फुरति यस्यैष क्रम
कथ न स विधिस्तत खुरशिखाभि खण्ड्यते ॥ ३ ॥]

किं अ, णिउण सेवणिज्जो जइ सुहसगमो भोदि । जदो-**[किञ्च, निपुण सेवनीयो यदि शुभसङ्गमो भवति। यत]**—

मज्झण्णे सिरिखण्डपककलणा आ सझमोल्लसुअ
लीलामज्जणमापदोससमअ साअ सुरा सीअला ।
गिम्हे पच्छिमजामिणीणिहुवण ज किं पि पञ्चेसुणो
एदे पञ्च सिलीमुहा विजइणो सेसा सरा जज्जरा ॥ ४ ॥

[मध्याह्ने श्रीखण्डपङ्ककलना आसन्ध्यमार्द्रांशुक
लीलामज्जनमा-प्रदोषसमय साय सुरा शीतला ।
ग्रीष्मे पश्चिमयामिनीनिधुवन यत् किमपि पञ्चेषो
एते पञ्च शिलीमुखा विजयिन शेषा शरा जर्जरा ॥ ४ ॥]

विदूषक—मा एव्व भण । **[मा एव भण]**—

रात्रि छोटी होती है, दिन बडे होते हैं, चन्द्रमा घटता जाता है, सूर्य अत्यन्त प्रचण्ड होता जाता है । गर्मी के दिनो मे जिस विधि का ऐसा नियम रहता है उसे क्यो न छुरी से काट दिया जाय ॥ ३ ॥

अगर अपना प्रिय पास मे हो, तो इस समय का सदुपयोग करना चाहिए । क्योकि—

ग्रीष्मऋतु मे दोपहर को चन्दन का लेप करना चाहिए । शाम तक गीले वस्त्र पहिनने चाहिए । रात्रि के प्रारम्भ होने पर खूब जलक्रीडा करनी चाहिए । फिर शीतल मदिरा पीनी चाहिए । रात्रि के पश्चिम भाग मे सुरत का आनन्द लेना चाहिए । कामदेव के ये पॉच बाण बडे तेज है और तो सब पुराने हो गये ॥ ४ ॥

पण्डुच्छविच्छुरिदणाअलदादलाण साहारतेल्लपरिपेसलपोप्फलाण ।
कप्पूरपसुपरिवासिदचन्दणाण भद्द णिदाहदिअसाण वअस्स ! भोदु ॥ ५ ॥]

[पाण्डुच्छविच्छुरितनागलतादलाना
सहकारतैलपरिपेशलपूगफलानाम् ।
कर्पूरपाशुपरिवासितचन्दनाना भद्र
निदाघदिवसाना वयस्य ! भवतु ॥ ५ ॥]

राजा—एद उण एत्थ रमणिज्ज । **[इद पुनरत्र रमणीयम्]**

सपञ्चमतरगिणो सवणसीअला वेणुणो
सम सिसिरवारिणा वअणसीअला वारुणी ।
सचन्दणघणत्थणी सअण-सीअला कामिणी
णिदाहदिअहोसह सहजसीअल कस्स वि ॥ ६ ॥

[सपञ्चमतरङ्गिण श्रवणशीतला वेणव
सम शिशिरवारिणा वदनशीतला वारुणी ।
स चन्दनघनस्तनी शयनशीतला कामिनी
निदाघदिवसौषध सहजशीतल कस्यापि ॥ ६ ॥]

विदूषक—ऐसा मत कहो—

मित्र ! पान की बेल के पीले रग के पत्तो से युक्त, आम, तेल और कोमल पूगफलो (सुपारियो) वाले तथा कपूर की सुगन्ध से युक्त चन्दन जिनमे खूब पाया जाता है ऐसे गर्मी के दिनो का कल्याण हो—अर्थात् यह ग्रीष्मऋतु चिरकाल तक बनी रहे ॥ ५ ॥

राजा—इस ऋतु मे यह सुन्दरता है ।

रागमय, पञ्चमस्वर के साथ तथा कानो को मधुर लगने वाला वशीरव, शीतल जल के साथ मुख को ठण्डा करने वाली मदिरा, चन्दन लगे हुए तथा कठोर स्तनो वाली और शय्या मे सुख देने वाली कामिनी ये तीन स्वभाव से ही शीतल चीज किसी भाग्यवान् को ही ग्रीष्मऋतु मे उपचार रूप से मिलती है ॥ ६ ॥

अवि अ **[अपि च]**—

लीलुत्तसो सिरीस सिहिणपरिसरे सिन्दुवाराण हारो
अगे ओल्ल वरिल्ल रमणपणइणी मेहला उप्पलेहिं ।
दोसु दोकन्दलीसु णवबिसवलआ कामवेज्जो मणोज्जो
तावातकक्खमाण महुसमए गदे एस वेसोऽबलाण ॥ ७ ॥

**[लीलोत्तस शिरीष स्तनपरिसरे सिन्दुवाराणा हार
अङ्गे आर्द्र वस्त्र रमणप्रणयिनी मेखलोत्पलै ।
द्वयोर्दो कन्दल्योर्नवबिसवलया कामवैद्यो मनोज्ञ
तापातङ्कक्षमाणा मधुसमये गते एष वेशोऽबलानाम् ॥ ७ ॥]**

विदूषक—अह उण भणामि । **[अहं पुनर्भणामि]**—

मज्झण्ह लण्ह घणचन्दणपकिलाण
साअ णिसेविदणिरन्तरमज्जणाण ।
सज्जासु वीअणजवारिकणुक्खिदाण
दासत्तण कुणइ पञ्चसरोऽवलाण ॥ ८ ॥

**[मध्याह्नश्लक्ष्णघनचन्दनपङ्किलाना
साय निषेवितनिरन्तरमज्जनानाम् ।
शय्यासु व्यजनजवारिकणोक्षिताना
दासत्व करोति पञ्चशरोऽबलानाम् ॥ ८ ॥]**

और भी—

कानो मे शिरीष का फूल लगाना, वक्ष स्थल पर सिन्दुवार के फूलो का हार धारण करना, शरीर पर गीले वस्त्र धारण करना, रत्न जडी हुई करधनी पहिनना तथा लता जैसी दोनो भुजाओ मे नवीन मृणाल-तन्तुओ के कङ्कण पहिनना-इस तरह का सुन्दर वेश ग्रीष्म-ऋतु मे गर्मी के कष्ट को सहन करने वाली अबलाओ के कामावेश को शान्ति पहुँचाता है ॥ ७ ॥

विदूषक—मै तो यह कहता हूँ—

दोपहर मे जो चिकना और गाढा चन्दन लगाती है, सायकाल जो लगातार नहाती रहती है, शय्याओ पर पखे से निकले हुए जल के कणो से जिनके शरीर भीगे रहते है— ऐसी स्त्रियो का कामदेव दास बना रहता है ॥ ८ ॥

राजा—(स्मरणमभिनीय)—

पच्चग णवरूअभगिघडणाम्मे जणे सगमो
जाण ताण खण व्व झत्ति दिअहा वट्टन्ति दीहा अपि ।
जाण ते अ मणम्मि देन्ति ण रइ चित्तस्स सन्दाविणो
जाण जान्ति जागम्मि दीरहतमा समासोवमा बासरा ॥ ९ ॥

**[प्रत्यङ्ग नवरूपभङ्गिघटनारम्ये जने सङ्गमो
येषा तेषा क्षणमिव झटिति दिवसा वर्तन्ते दीर्घा अपि ।
येषा ते च मनसि ददति न रतिं चित्तस्य सन्तापिन
तेषां यान्ति जगति दीर्घतमा मासोपमा वासरा ॥ ९ ॥]**

राजा—(विदूषक प्रति) वअस्स ! अत्थि तग्गदा का वि वत्ता ? **[वयस्य ! अस्ति तद्गता काऽपि वार्त्ता ?]**

विदूषक—अत्थि, सुणादु पिअवअस्सो, कधेमि सुहामिद दे । जदो पहुदि कप्पूर-मञ्जरी रक्खाभवणादो सुरगादुआरे देवीए दिट्ठा, तदो पहुदि त सुरगादुआर देवीए बहलसिलासञ्चएण णीरन्ध कदुअ पिहिद । अणगसेणा कलिगसेणा कामसेणा वसन्तसेणा विब्भमसेणेत्ति पञ्चसेणाणामधेआओ चामरधारिणीओ फारप्फुरक्किद-करवालहत्थपाइक्कसहस्सेण सह कारामन्दिरस्स रक्खाणिमित्त पुव्वदिसाए णिउ-त्ताओ । **[अस्ति, शृणोतु प्रियवयस्य, कथयमि सुभाषितं ते। यत प्रभृति कर्पूरमञ्जरी रक्षाभवनात् सुरङ्गद्वारे देव्या दृष्टा, तत प्रभृति तत् असुरङ्गसेना,**

राजा—(स्मृति का अभिनय कर)—

जिन लोगो का अग-प्रत्यग के सौन्दर्य से युक्त अपने प्रियजन के साथ सगम हो जाता है, उनके लम्बे-लम्बे दिन शीघ्र ही क्षणे की तरह बीत जाते हे और प्रियजन जिनके चित्तो को अपने मिलने का आनन्द नही देते, ससार मे उनके चित्त को दु ख पहुँचाने वाले दिन महीनो के बराबर अत्यन्त लम्बे हो जाते हो ॥ ९ ॥

राजा—(विदूषक से) मित्र ! कुछ उसका भी हाल मालूम है ?

विदूषक—हॉ, हे, मित्र सुनो ! तुम्हारे लिए शुभ समाचार सुनाता हूँ । जब से महारानी ने कर्पूरमञ्जरी को रक्षाभवन से सुरगद्वार पर जाती हुई देखा, तब से उस सुरग के दरवाजे को बहुत पत्थरों से नीरन्ध्र कर के ढक दिया है और अनगसेना,

सुरङ्गाद्वार देव्या बहुलशिलासञ्चयेन नीरन्ध्रं कृत्वा पिहितम्। कलिङ्गसेना, कामसेना, वसन्तसेना, विभ्रमसेनेति पञ्च सेनानामधेयाश्चामरधारिण्य स्फारस्फुरत्करवालहस्तपदातिसहस्रेण सह कारामन्दिरस्य रक्षानिमित्त पूर्वदिशि नियुक्ता ।]

अणगलेहा चित्तलेहा चन्दलेहा मिअकलेहा बिब्भमलेहत्ति लेहाणामधेआओ पञ्च सेरन्धीओ पुखिदसिलीमुहधणुहत्थेण णिबिडणिबद्धतूणीरदुद्धरेण धाणुक्कसहस्सेण सम दक्खिणाए दिसाए णिवेसिदाओ । **[अनङ्ग लेखा, चित्रलेखा, चन्द्रलेखा, मृगाङ्कलेखा, विभ्रमलेखेति, लेखानामधेया पञ्च सैरिन्ध्र्य पुङ्खितशिलीमुखधनुर्हस्तेन निबिडनिबद्धतूणीरदुर्द्धरेण धनुष्कसहस्रेण सम दक्षिणस्या दिशि निवेशिता ।]**

कुन्दमाला चन्दणमाला कुबलअमाला कञ्चणमाला बउलमाला मकल माला माणिक्कमाला त्ति सत्त मालत्तिणामधेआओ णवणिसिदकुन्तहत्थपाइक्कसहस्सेण सम ताम्बूलकरकबाहिणीओ पच्छिमाए दिसाए णिवेसिदाओ । **[कुन्दमाला, चन्दनमाला, कुवलयमाला, काञ्चनमाला, बकुलमाला, मङ्गलमाला, मणिक्यमालेति सप्त मालेतिनामधेया नवनिशितकुन्तहस्तपदातिसहस्रेण सम ताम्बूलकरङ्कवाहिन्य पश्चिमाया दिशि निवेशिता ।]**

कलिंगसेना, कामसेना, वसन्तसेना तथा विभ्रमसेना नाम वाली पॉच चॅवर डुलाने वालियो को अत्यन्त चमकती हुई तलवार हाथ मे लिये हजार पैदल सिपाहियो के साथ कारागार की रक्षा के लिए पूर्वदिशा मे नियुक्त कर दिया है ।

अनगलेखा, चित्रलेखा, चन्द्रलेखा, मृगाङ्कलेखा और विभ्रमलेखा—इन लेखा नाम वाली पॉच सैरिन्ध्रियों को बाण चढे हुए धनुष को हाथ मे लिये हुए और खूब बधे हुए तरकस से सज्जित हजार धनुर्धारियो के साथ दक्षिण मे नियुक्त कर दिया है ।

कुन्दमाला, चन्दनमाला, कुबलयमाला, काञ्चनमाला, वकुलमाला, मङ्गलमाला और माणिक्यमाला—इन सात माला नाम वाली ताम्बूल पात्र को धारण करने वालियो को नये तेज किये हुए भाले हाथ मे लिये हुए हजार पैदल सिपाहियो के साथ पश्चिम मे नियुक्त कर दिया है ।

अणगकेली पुक्कहकेली कन्दप्पकेली सुन्दरकेली कन्दोदृकेलि त्ति पञ्च केलित्तिणामधेआओ मज्जणकारिणीओ फलअखग्ग कम्पबिन्दुरिल्लेण पाइक्क-सहस्सेण सम उत्तरदिसाए आणत्ताओ। **[अनङ्गकेलि, पुष्करकेलि, कन्दर्प-केलि, सुन्दरकेलि, उत्पलकेलिरिति पञ्च केलीतिनामधेया मज्जनकारिण्य फलकखड्गकम्पभीषणेन पदातिसहस्रेण सममुत्तरदिशि आज्ञप्ता ।]**

ताण वि उण उवरि मदिरावदी केलिवदी कल्लोलवदी तरगवदी अण गवदित्ति पञ्च वदित्ति णामधेआओ परिचारिआ कुमारीओ कणअचित्तदण्डहत्थाओ सुहासिअपाढिआओ वदीणामधेआओ सेणाए अज्झक्खीकिदाओत्ति। **[तासा-मपि पुनरुपरि मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरङ्गवती, अनङ्गवतीति पञ्च वतीतिनामधेया परिचारिकाकुमार्य कनकवेत्रदण्डहस्ता सुभाषितपाठिका वतीनामधेया सेनाया अध्यक्षीकृता इति।]**

राजा—अहो। देवीए सामग्गी अन्तेउरोचिदा। **[अहो। देव्या सामग्री अन्त पुरोचिता।]**

विदूषक—भो वअस्स। एसा देवीए सारगिआ णाम सही किपि णिवेदेदु पेसिदा। **[वयस्य। एषा देव्या सारङ्गिकानाम सखी किमपि निवेदितु प्रेषिता।]**

(तत प्रविशति सारङ्गिका)

अनगकेलि, पुष्करकेलि, कन्दर्पकेलि, सुन्दरकेलि, उत्पलकेलि—इन पॉच केलि नाम वाली स्नान कराने वालियो को ढाल और तलवार लिये हजार पैदल सिपाहियो के साथ उत्तर दिशा मे नियुक्त कर दिया है।

उनके भी ऊपर मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरगवती और अनग-वती—इन वती नाम वाली पाच कुमारी परिचारिकाओ को जो कि हाथ मे सोने के डण्डे लिये हुई हैं और सुभाषित पढती रहती है—सेना का अध्यक्ष बना दिया है।

राजा—अरे। देवी की परिचर्या का सामान अन्त पुर के उपयुक्त ही है।

विदूषक—मित्र। (देखो) महारानी ने इस सारगिका नाम की सखी को कुछ कहने के लिए भेजी हैं।

(तब सारगिका आती है)

सारङ्गिका—जअदु जअदु भट्टा । देव ! देवी विण्णवेदि–'अज्ज चतुत्थदिअहे भविअवडसाइत्तीमहूसवोवकरणाइ केलिविमाणप्पसाद आरुहिअ प्पेक्खिदव्वाइ'त्ति । **[जयतु जयतु भर्त्ता ! देव ! देवी विज्ञापयति–'अद्य चतुर्थदिवसे भाविवटसावित्रीमहोत्सवोपकरणानि केलिविमानप्रासादमारुह्य प्रेक्षितव्यानि' इति ।]**

राजा—ज देवी आणवेदि । **[यत् देवी आज्ञापयति ।]**

(चेटी निष्क्रान्ता ! उभौ प्रासादाधिरोहण नाटयत)

(तत प्रविशति चर्चरी)

विदूषक —

मुत्ताहलिल्लाहरणुच्चआओ लासावसाणे चलिअसुआओ ।
सिञ्चन्ति अण्णेण्णमिमीअ पेक्ख जन्ताजलेहिं मणिभाजणेहि ॥ १० ॥

**[मुक्ताफलाभरणोच्चया लास्यावसाने चलिताशुका ।
सिञ्चन्त्योऽन्यमिमा प्रेक्षस्व यन्त्रजलैर्मणिभाजनै ॥ १० ॥]**

इदो अ **[इतश्च]**–

सारङ्गिका—महाराज की जय हो । महाराज ! महारानी कहती है कि आज चौथे दिन होने वाले वटसावित्री के महोत्सव की सज्जा को महाराज केलिविमानप्रासाद पर चढ कर देखे ।

राजा—जो महारानी की आज्ञा ।

(चेटी बाहर जाती है । दोनो महल पर चढने का अभिनय करते हैं)

(तब चर्चरी—नर्तकियाँ आती हैं)

विदूषक—मोतियो के आभूषण धारण किये हुए तथा जिनके वस्त्र हवा मे उड रहे है ऐसी मे नर्तकियाँ नृत्य समाप्त होने पर यन्त्र से निकले जल से युक्त माणिक्य पात्रो से एक दूसरे को भिगो रही है ॥ १० ॥

इधर तो—

परिब्भमन्तीअ विचित्तबन्ध इमाउ दोसोलह णच्चणीसो ।
खेलन्ति तालाणुगदप्पदाओ तुहगणे दीसइ दण्डरासो ॥ ११ ॥

**[परिभ्रमन्त्यो विचित्रबन्धमिमा द्विषोडश नर्त्तक्य ।
खेलन्ति तालानुगतपदास्तवाङ्गने दृश्यते दण्डरास ॥ ११ ॥]**

समससीसा समबाहुहत्था रेहाविसुद्धा अपरा अ देन्ति ।
पन्तीहि दोहि लअतालबन्ध परप्पर साहिमुहीउ चल्लि ॥ १२ ॥

**[समांसशीर्षा समबाहुहस्ता रेखाविशुद्धा अपराश्च ददति ।
पङ्क्तिभ्या द्वाभ्या लयतालबन्ध परस्पर साभिमुखा भवन्ति ॥ १२ ॥]**

मोत्तूण अण्णा मणिवारआइ जन्तेहि धारासलिल खिवन्ति ।
पडन्ति ताओ अ पिआणमगे मणोहुओ वारुणवाणकप्पा ॥ १३ ॥

**[मुक्त्वा अन्या मणिवारणानि यन्त्रैर्धारासलिल क्षिपन्ति ।
पतन्ति ताश्च प्रियाणामङ्गे मनभुवो वारुणबाणकल्पा ॥ १३ ॥]**

इमा मसीकज्जलकालकाआ तिक्खच्छचावा अ विलासिणीओ ।
पुलिन्दरूवेण जणस्स हास समोरपिच्छाहरणा कुणन्ति ॥ १४ ॥

**[इमा मसीकज्जलश्यामकायास्तीक्ष्णाक्षिचापाश्च विलासिन्य ।
पुलिन्दरूपेण जनस्य हास समयूरपिच्छाभरणा कुर्वन्ति ॥ १४ ॥]**

ये बत्तीस नर्तकियॉ विचित्र बन्ध बनाकर घूम रही है, इनके पैर भी ताल के मुताबिक पड रहे है । इसलिए तुम्हारे ऑगन मे दण्डरास-सा दिखाई पड रहा है ॥ ११ ॥

कुछ नर्तकियॉ कन्धे और सिर बराबर किये हुए तथा भुजाएँ और हाथो को भी एक-सी स्थिति मे रखे हुए और जरा भी गलती न करते हुए दो पक्तियो मे लय और ताल के मेल के साथ चलती है और एक दूसरे के सामने आती है ॥ १२ ॥

कुछ नर्तकियॉ रत्न जडे हुए कवच उतार कर यन्त्रो से पानी की धारे छोडती है । पानी की वे धाराये उनके प्रेमियो के शरीर पर कामदेव के वारुण बाण की तरह पडती है ॥ १३ ॥

स्याही और काजल की तरह कृष्ण शरीर वाली, धनुष की तरह तिरछी नजरे वाली और मोर के पखो के आभूषणो से युक्त से विलासिनी स्त्रियॉ शिकारी के रूप से लोगो को हॅसाती हैं ॥ १४ ॥

हत्थे महामसबलीधराओ हुकारफेक्कारखा रउद्दा ।
णिसाअरीण पडिसीसएहि अण्णा समाणाभिणअ कुणन्ति ॥ १५ ॥

**[हस्ते महामासबलिधारिण्यो हुङ्कारफेत्काररवा रौद्रा ।
निशाचरीणा प्रतिशीर्षकैरन्या श्मशानाभिनय कुर्वन्ति ॥ १५ ॥]**

का वि वाइतकरालहुडुक्कारम्ममद्दलरएण मिअच्छी ।
भूलदाहि परिवाडिअलाहिं चेटिकम्मकरणम्मि पउट्टा ॥ १६ ॥

**[काऽपि वादितकरालहुडुक्का रम्यमर्दलरवेण मृगाक्षी ।
भ्रूलताभ्या परिपाटीचलाभ्या चेटीकर्मकरणे प्रवृत्ता ॥ १६ ॥]**

कि किणीकिदरणज्झणसद्दा कण्ठगीदलअजन्तिदताला ।
जोगिणीबलअणच्चणकेलि तालणेउररअ विरअन्ति ॥ १७ ॥

**[किङ्किणीकृतरणज्झणशब्दा कण्ठगीतलययन्त्रितताला ।
योगिनीवलयनर्त्तनकेलिं तालनूपुररव विरचयन्ति ॥ १७ ॥]**

कोदुहल्लवसचञ्चलवेसा वेणुवादणपरा अवराओ ।
कालवेसवसहासिदलोआ ओसरन्ति पणमन्ति हसन्ति ॥ १८ ॥

**[कौतूहलवशचञ्चलवेषा वेणुवादनपरा अपरा· ।
कालवेषवशहासितलोका अपसरन्ति प्रणमन्ति हसन्ति ॥ १८ ॥]**

कुछ स्त्रियाँ हाथ मे नरमास को ही उपहाररूप से धारण किये हुये और हुकाररूप से सियारो का सा शब्द करती हुई तथा रौद्ररूप बनाकर राक्षसियो के चेहरे लगाकर श्मशान का अभिनय करती है ॥ १५ ॥

कोई हरिणी जैसे नेत्रो वाली नर्तकी मर्दल बाजे के मधुर शब्द के साथ हुडुक्का को जोर जोर से बजाती हुई अपनी चञ्चल भौहो से चेटी कर्म करने मे लगी हुई है ॥ १६ ॥

कुछ स्त्रियाँ क्षुद्रघण्टिकाओ से झणझण शब्द करती हुई, अपने कण्ठो के गीत के लय से ताल को जमाती हुई, परिव्राजिकाओ के वलय को बनाकर नाचती हुई ताल से अपने नूपुरो को बजाती है ॥ १७ ॥

कुछ स्त्रियाँ कुतूहलवश चचल वेश बनाकर, वीणा बजाती हुई और मलिन-वेश से लोगो को हसाती हुई पीछे हटती है, प्रणाम करती हैं और हसती है ॥१८ ॥

(प्रविश्य)

सारङ्गिका—(पुरोऽवलोक्य) एसो महाराओ उणो मरग-अकुञ्ज जेव्व गदो, कदलीघर अ अणुप्पइट्टो, ता अग्गदो गदुअदेवीविण्णविअ विण्णवेमि। (उपसृत्य) जअदु जअदु देवो। देवी एद विण्णवेदि जधा 'सज्झासमए जूअ मए परिणेदव्वा'। **[एष महाराज पुनर्मरकतकुञ्जमेव गत कदलीगृहञ्च अनुप्रविष्ट, तदग्रतो गत्वा देवीविज्ञापित विज्ञापयामि। (उपसृत्य) जयतु जयतु देव। देवी इद विज्ञापयति यथा 'सन्ध्यासमये यूय मया परिणेतव्या'।]**

विदूषक—भो! कि इद अकालकोहण्डपडण? **[भो किमेतदकालकूष्माण्डपतनम्?]**

राजा—सारगिए! सव्व वित्थरेण कधेहि। **[सारङ्गिके! सर्व विस्तरेण कथय]**

सारङ्गिका—एद विण्णवीअदि, अणन्तरातिक्कन्तचउद्दसीदिअहे देवीए पोम्मराअमणिमई गोरी कदुअ भइरवाणन्देण प्पडिट्ठाविदा, अअ अ दिक्खा गहिदा। तदो ताए बिण्णत्तो जोगिससरो गुरुदक्खिणाणिमित्त। भणिद च तेण, जइ अवस्स गुरुदक्खिणा दादव्वा, ता एसा दीअदु महाराअस्स। तदो देवीए विण्णत्त, ज आदिसदि भअव ति। उणो वि उल्लविद तेण, अत्थि एत्थ लाडदेसे चण्डसेणो णाम राआ, तस्स दुहिदा घणसारमञ्जरिणाम सा देवण्णेहि आदिट्ठा, एसा चक्कव-

---

(रगमञ्च पर आकर)

सारगिका—(सामने देखकर) महाराज तो मरकत-कुञ्ज मे चले गये। कदलीगृह मे भी घुस गये। इसलिये बढकर महारानी का सन्देश कहूँगी। (पास जाकर) महाराज की जय हो। महारानी कहती हैं कि आज शाम को मै तुम्हारा विवाह कराऊगी।

विदूषक—अरे! कुसमय मे यह कुष्माण्ड कैसे गिर पडा?

राजा—सारगिके! सब विस्तार से कहो।

सारगिका—ऐसा कहा जाता है कि पिछली चतुर्दशी के दिन महारानी के पद्मरागमणि की गौरी की प्रतिमा बनवाकर भैरवानन्द से उसकी प्राणप्रतिष्ठा करवाई और भैरवानन्द को गुरु बना कर उनसे इष्टमन्त्र ग्रहण किया। फिर महारानी ने उनसे

ट्टिघरिणी भविस्सदित्ति । तदो महाराअस्स परिणेदव्वा, तेण गुरुदक्खिणा दिण्णा भोदि, भट्टा वि चक्कवट्टी किदो भोदि । तदो देवीए विहसिअ भणिद, ज आदि-सदिभअव । अह च विण्णविदु पेसिदा गुरुस्स गुरुदक्खिणाणिमित्त । **[इद विज्ञाप्यते, अनन्तरातिक्रान्तचतुर्दशीदिवसे देव्या पद्मरागमणिमयी गौरी कृत्वा भैरवानन्देन प्रतिष्ठापिता, स्वयञ्च दीक्षा गृहीता । ततस्तया विज्ञप्तो योगीश्वरो गुरुर्दक्षिणानिमित्तम् । भणितञ्च तेन, यद्यवश्य गुरुदक्षिणा दातव्या, नदेषा दीयता महाराजस्य । ततो देव्या विज्ञप्त, यदादिशति भगवान् इति । पुनरपि उल्लपित तेन, अस्ति अत्र लाटदेशे चण्डसेनो नाम राजा, तस्य दुहिता घनसारमञ्जरी नाम, सा दैवज्ञैरादिष्टा, एषा चक्रवर्त्तिगृहिणी भविष्यतीति, ततो महाराजेन परिणेतव्या, तेन गुरुदक्षिणा दत्ता भवति, भर्त्ताऽपि चक्रवर्ती कृतो भवति । ततो देव्या विहस्य भणित यत् आदिशति भगवान् । अहञ्च विज्ञापयितु प्रेषिता गुरोर्गुरुदक्षिणानिमित्तम् ।]**

विदूषक—(विहस्य) एद त सविधाणअ सीसे सप्पो देसन्तरे वेज्जो । इह अज्ज विवोहो, लाडदेसे घणसारमञ्जरी । **[एतत्तत् सविधानक शीर्षे सर्प, देशान्तरे वैद्य । इहाद्य विवाहो, लाटदेशे घनसारमञ्जरी ।]**

गुरुदक्षिणा लेने के लिए कहा । भैरवानन्द ने कहा कि अगर गुरुदक्षिणा देना ही चाहती हो तो वह महाराजा के लिए दो । तब महारानी ने कहा—जो आपकी आज्ञा । फिर भैरवानन्द ने कहा—लाटदेश मे चण्डसेन नाम का राजा है, उसकी घनसार मजरी नाम की पुत्री है । उसके सबध मे ज्योतिषियो ने कहा है कि यह चक्रवर्ती राजा की रानी बनेगी । इसलिए महाराज से इसका विवाह कर देना चाहिए । यह गुरुदक्षिणा पर्याप्त होगी, महाराज भी तुम्हारे द्वारा चक्रवर्ती हो जायेगे । तब महारानी ने हॅस कर कहा—जैसी आपकी आज्ञा और मुझे आपके पास गुरुदक्षिणा के निमित्त भेजा है ।

विदूषक—(हॅस कर) यह कैसा काम—सिर पर सॉप, वैद्य दूसरे देश मे । आज यहॉ विवाह और घनसारमञ्जरी लाटदेश मे ?

राजा—कि ते भइरवाणन्दस्स पहावो ण प्पच्चक्खो ? । (ता प्रति) कहि सपद भइरवाणान्दो ? **[किन्ते भैरवानन्दस्य प्रभावो न प्रत्यक्ष ? ।]** (ता प्रति) (कुत्रसाम्प्रत भैरवानन्द ?)

सारङ्गिका—देवीकारिदप्पमदुज्जाणस्स मज्झट्ठिदवडतरुमूले चामुण्डा अदणे भइरवाणन्दो देवी अ आअमिस्सदि, ता अज्जदक्खिणाविहिदो कोदुहलवरो विवाहो, ता इह ज्जेव्व देवेणे ठादव्व । **[देवीकारितप्रमदोद्यानस्य मध्यस्थितवटतरुमूले चामुण्डायतने भैरवानन्दो देवी च आगमिष्यति, तदद्य दक्षिणाविहित कौतूहलपरो विवाह, तदिहैव देवेन स्थातव्यम्]**

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ता)

राजा—वअस्स ! सव्व एद भइरवाणन्दस्स विजिभिद त्ति तक्केमि । **[वयस्य ! सर्वमेतत् भैरवानन्दस्य विजृम्भितमिति तर्कयामि ।]**

विदूषक—एव्व णेद । ण क्खु मिअलछणमन्तरेण अण्णो मिअकमणिपुत्तलिअ प्पस्सेदअदि । ण क्खु सरअसमीरमन्तरेण सेफालिआकुसुमक्कर विकासेदि । **[एवमेतत् । न खलु मृगलाञ्छनमन्तरेण अन्यो मृगाङ्कमणिपुत्तली प्रस्वेदयति । न खलु शरत्समीरमन्तरेण शेफालिकाकुसुमोत्कर विकासयति ।]**

(तत प्रविशति भैरवानन्द)

राजा—क्या तुम्हे भैरवानन्द जी की शक्ति का पता नही है ? (सारगिका से) इस समय भैरवानन्द कहाँ है ?

सारगिका—महारानी के द्वारा बनवाये हुय प्रमदोद्यान के मध्य मे स्थित वटवृक्ष के नीचे चामुण्डा देवी के मन्दिर मे भैरवानन्द और महारानी आयेगी । आज दक्षिणा मे कुतूहल से विवाह किया जाएगा, महाराज यहाँ ठहरे ।

(इस तरह घूमकर चली जाती है)

राजा—मित्र ! यह सब भैरवानन्द का काम है ऐसा सोचता हूँ ।

विदूषक—ऐसा ही है । चन्द्रमा के अतिरिक्त और कौन चन्द्रकान्तमणि की पुत्तलिका को पिघला सकता है ? शरद् ऋतु की शेफालिका के फूलो को पवन के अतिरिक्त और कौन खिला सकता है ?

(तब भैरवानन्द रङ्गमञ्च पर आता है)

भैरवानन्द —इअ सा वडतरुमूले णिब्भिण्णस्स सुरङ्गादुआरस्स पिहाण चामुण्डा। **[इय आ वटतरुमूले निर्भिन्नस्य सुरङ्गाद्वारस्य पिधान चामुण्डा।]** (हस्तेन प्रणम्य पठति)—

कप्पन्तकेलिभवणे कालस्स पुराणरुहिरसुरम्।
जअदि पिअन्ती चण्डी परमेट्ठिकवालचसएण ॥ १९ ॥

[कल्पान्तकेलिभवने कालस्य पुराणरुधिरसुराम्।
जयति पिबन्ती चण्डी परमेष्टिकपालचषकेण ॥ १९ ॥]

(उपविश्य)—अज्ज वि ण णिग्गच्छदि सुरङ्गादुआरेण कप्पूरमज्जरी। **[अद्यापि न निर्गच्छन्ति सुरङ्गाद्वारेण कर्प्पूरमञ्जरी]**

(तत प्रविशति सुरङ्गोद्घाटितकेन कर्पूरमञ्जरी)

कर्पूरमञ्जरी—भअव। पणमिज्जसि। **[भगवन् प्रणाम्यसे]**

भैरवानन्द—उइद वर लहेसु। इह ज्जेव उवविस। **[उचित वर लभस्व। इहैव उपविश]**

(कर्पूरमञ्जरी तथा करोति)

भैरवानन्द—वटवृक्ष के नीचे खुले हुये सुरङ्ग द्वार पर यह चामुण्डा देवी विराजमान है।

(हाथ से प्रणाम कर पढता है)

महाकालरूपी रुद्र के प्रलयकालरूपी क्रीडामन्दिर मे ब्रह्मा के कपालरूपी प्याले से प्राणियो के रुधिररूपी मद्य को पीती हुई चण्डी की जय हो ॥ १९ ॥

(बैठकर) कर्पूरमञ्जरी सुरङ्ग के द्वार से अभी तक नही निकली।

(तब सुरङ्ग के द्वार से कर्पूरमञ्जरी निकलती है)

कर्पूरमञ्जरी—भगवन्! प्रणाम करती हूँ।

भैरवानन्द—उचित वर पाओ। यहाँ ही बैठो।

(कर्पूरमञ्जरी ऐसा ही करती है)

भैरवानन्द—(स्वगतम्) अज्ज वि ण आअच्छदि देवी। **[अद्यापि नागच्छति देवी]**

(प्रविश्य)

राज्ञी—(परिक्रम्य अवलोक्य च) इअ भअवदी चामुण्डा। (प्रणम्य अवलोक्य च) अए! इअ कप्पूरमज्जरी!! ता किं णेद? । (भैरवानन्द प्रति) इद विण्णवीअदि, णिअभवणे कदुअ विवाहसामग्गि आअदम्हि, तदो त गेण्हिअ आअमिस्स। **[इय भगवती चामुण्डा। (प्रणम्य अवलोक्य च) अये। इय कर्पूरमञ्जरी!! तत् किमिदम्? (भैरवानन्द प्रति) इद विज्ञाप्यते, निजभवने कृत्वा विवाहसामग्रीम् आगताऽस्मि, ततस्ता गृहीत्वा आगमिष्यामि]**

भैरवानन्द—वच्छे! एव्व करीअदु। (वत्से! एव क्रियताम्)

(राज्ञी व्यावृत्य परिक्रामति)

भैरवानन्द—(विहस्य स्वगतम्) इअ कप्पूरमञ्जरीठाण अण्णेसिदु गत (प्रकाशम्) पुत्ति कप्पूरमञ्जरी! सुरङ्गादुआरेण ज्जेव तरिदपद गदुअ सुट्ठाणे चिट्ठ, देवी आअमणे उणो आअतब्व। **[इय कर्पूरमञ्जरीस्थानमन्वेष्टु गता (प्रकाशम्) पुत्रि कर्पूरमञ्जरि! सुरङ्गाद्वारेणैव त्वरितवद गत्वा स्वस्थाने तिष्ठ, देव्यागमने पुनरागन्तव्यम्]**

भैरवानन्द—(अपने मन में) अब भी महारानी नही आ रही है।

(प्रवेश कर)

राज्ञी—(घूम कर और देख कर) यह भगवती चामुण्डा है। (प्रणाम कर और देखकर) अरे यह कर्पूरमञ्जरी है। यह क्या बात है (भैरवानन्द से) अपने यहाँ विवाह सामग्री तैयार कर आई हूँ, अब उसको लेकर आती हूँ।

भैरवानन्द—वत्से ऐसा करो।

(महारानी दूर जाकर घूमती है)

भैरवानन्द—(हँसकर, अपने आप) यह कर्पूरमञ्जरी को ढूढने गई। (प्रकाश में) पुत्री कर्पूरमञ्जरी! सुरङ्ग के दरवाजे से शीघ्र ही जाकर अपने स्थान पर ठहरो, महारानी के आने पर फिर आ जाना।

(कर्पूरमञ्जरी तथा करोति)

देवी—एद रक्खागेहम् । (प्रविश्यावलोक्य च) अए ! इअ कप्पूरमञ्जरी ! ! सा का वि सरिच्छा मए दिट्ठा ! वच्छे कप्पूरमञ्जरि ! कीरिस दे सरीरम् ? । (आकाशे) कि भणासि, मह सरीरे वेअणा ? (स्वगतम्) ता पुणो तहि गमिस्स । (प्रविश्य पार्श्वतोऽवलोक्य च) हला सहीओ ! विवाहोवकरणाई लहु गोण्हिअ आअच्छध । **[इद रक्षागृहम्।** (प्रविश्यावलोक्य च) **अये ! इय कर्पूरमञ्जरी ! ! सा काऽपि सदृशी मया दृष्टा । वत्से कर्पूरमञ्जरि ! कीदृश ते शरीरम् ?** (आकाशे) **किं भणसि मम शरीरे वेदना ?।** (स्वगतम्) **तत् पुनस्तत्र गमिष्यामि।** (प्रविश्य पार्श्वतोऽवलोक्य च) **हला सख्य ! विवाहोपकरणानि लघु गृहीत्वा आगच्छत]**

(इति परिक्रामति)

(प्रविश्य कपूरमञ्जरी तथैवास्ते)

राज्ञी—(पुरोऽवलोक्य) इअ कप्पूरमञ्जरी ! ! **[इय कर्पूरमञ्जरी ! !]**

भैरवानन्द—वच्छे ! विब्भमलेहाए आणीदाइ विवाहोवअरणाइ ? **[वत्से ! विभ्रमलेखया आनीतानि विवाहोपकरणानि ?]**

(कर्पूरमञ्जरी ऐसा ही करती है)

देवी—यह रक्षाघर है । (घुसकर और देखकर) अरे यह कर्पूरमञ्जरी है । उससे कुछ सदृश तो मैने अभी देखी थी । वत्से कर्पूरमञ्जरि ! तुम्हारा शरीर कैसा है । (आकाश में) क्या कहती है—मेरे शरीर मे दर्द है । (अपने मन मे) फिर वहाँ जाऊगी । (घुसकर और एक तरफ देखकर) अरे सहेलियो ! विवाह का सामान लेकर शीघ्र आओ ?

(घूमती है)

(कर्पूरमञ्जरी आती है और वैसे ही बैठती है)

राज्ञी—(सामने देखकर) यह कर्पूरमञ्जरी है ।

भैरवानन्द—वत्से ! क्या विभ्रमलेखा विवाह का सामान ले आई ?

देवी—आणीदाइ । कि उण घणसारमञ्जरीसमुचिदाइ आहरणाइ विसुमरिदाइ । ता उणो गमिस्स । **[आनीतानि । कि पुनर्घनसारमञ्जरीसमुचितानि आभरणानि वि-स्मृतानि । तत्पुनर्गमिष्यामि]**

भैरवानन्द—एव्व करीअदु । **[एव क्रियताम्]**

(देवी नाटितकेन निष्क्रामति)

भैरवानन्द—पुत्ति कप्पूरमञ्जरिं । तह जेव्व करीअदु । **[पुत्रि कर्पूर मञ्जरि । तथैव क्रियताम्]**

(कर्पूरमञ्जरी निष्क्रान्ता)

राज्ञी—(रक्षागह प्रविश्य कर्पूरमञ्जरी दृष्ट्वा) अए । सारिच्छएण विडविदम्हि ।। (स्वगतम्) झाणविमाणेण णिव्विग्घपरिसप्पिणा त आणेदि महाजोई । (प्रकाशम्) सहीओ । जज णिवेदिद त त गेण्हिअ आअच्छध । **[अये । सादृश्येन विड-म्बिताऽस्मि ! । (स्वगतम्) ध्यानविमानेन निर्विघ्नपरिसर्पिणा तामानयति महा-योगी । (प्रकाशम्) सख्य । यत् यन्निवेदित तत्तत् गृहीत्वा आगच्छत]**

(चामुण्डायतनप्रवेशनाटितकेन तानवलोक्य)

देवी—विवाह का सामान आ गया । लेकिन घनसारमञ्जरी के लायक गहने भूल आई । इसलिए फिर जाऊगी ।

भैरवानन्द—ऐसा ही करो ।

भैरवानन्द—पुत्रि कर्पूरमञ्जरी । वैसा ही करो ।

(कर्पूरमञ्जरी निकल जाती है)

राज्ञी—(रक्षागृह मे जाकर और कर्पूरमञ्जरी को देखकर) अरे । सादृश्य से तो मै आश्चर्य मे पड गई हूँ । (अपने मन में) बिना रोक टोक ले चलने वाले ध्यान रूपी विमान से महायोगी उसको लाया है । (प्रकाश में) सखियो । जो जो मगाया गया है, वह-वह सामान लेकर जाओ ।

(चामुण्डा देवी के मन्दिर मे प्रवेश का अभिनय कर और कर्पूरमञ्जरी को देखकर) आश्चर्य है, कैसी समानता है ?

अहो सारिच्छअ (अहो ! सादृश्यम्),

भैरवानन्द—देवि उवविस । महाराओ वि आअदो ज्जेव्व वट्टदि **[देवि ! उपविश । महाराजोऽपि आगत एव वर्त्तते ।]**

(तत प्रविशति राजा विदूषक सारङ्गिका च)

भैरवानन्द—आसण महाराअस्स । **[आसन महाराजस्य]**

(सर्वे यथोचितमुपविशन्ति)

राजा—(नायिका प्रति) एसा सरीरिणी मअरद्धअपारिद्धिआ, देहन्तरेण सठिदा सिगाररसलच्छीव ? दिअससचारिणी पुण्णिमाचन्दचन्दिआ, अवि अ प्पगुणगुणमाणिक्कमञ्जूसा, रअणमई अञ्जणसलाआ, तधा अ एसा रअणकुसुमणिप्पण्णा महुलच्छी । कि च— **[एषा शरीरिणी मकरध्वजपारिध्वजिका, देहान्तरेण संस्थिता शृङ्गाररसलक्ष्मीरिव; दिवससञ्चारिणी पूर्णिमाचन्द्रचन्द्रिका, अपि च प्रगुणगुणमाणिक्यमञ्जूषा, रत्नमयी अञ्जनशलाका, तथा चैषा रत्नकुसुमनिष्पन्ना मधुलक्ष्मी । किञ्च–]**

भुअणजअपडाआ रूअसोहा इमीए
जह जह णअणाण गोअरे जस्स जाइ ।
वसइ मअरकेदू तस्स चित्ते विचित्तो
वलइअधणुदडो पुखएहि सरेहि ॥ २० ॥

भैरवानन्द—देवी ! बैठो । महाराज भी आये हुए है ।

(तब राजा, विदूषक और सारङ्गिका रगमञ्च पर आते है)

भैरवानन्द—महाराज के लिए आसन दो ।

(सब यथास्थान बैठते है)

राजा—(नायिका से) कामदेव की पताका को उठाने वाली यह साक्षात् शृङ्गार रस की शो की तरह देहान्तर से विराजमान है, दिल मे चमकने वाली पूर्णिमा के चन्द्र की चॉदनी है, उच्चकोटि के रत्नो की मञ्जूषा जैसी है, रत्नो से बनी हुई, अञ्जन लगाने की सलाई जैसी है तथा रत्नकुसुमो से युक्त वसन्तशोभा-सी साक्षात् प्रतीत होती है । और क्या—

[भुवनजयपताका रूपशोभाऽस्या
यथा यथा नयनयोर्गोचर यस्य याति।
वसति मकरकेतुस्तस्य चित्ते विचित्रो
वलयितधनुर्दण्ड पुङ्खितै शरै ॥ २० ॥]

विदूषक—(जनान्तिकम्) सच्च किद तुए आभाणक। तड गदाए वि णावाए ण विवसीदव्व, ता तुण्हि चिट्ठ। **[सत्य कृत त्वया आभाणकम्। तट गताया अपि नौकाया न विश्वसितव्यम् तत्तूष्णी तिष्ठ]**

राज्ञी—(कुरङ्गिका प्रति) तुम महाराअस्स णेवच्छ कुरु। सारङ्गिआ घणसारमञ्जरीए करेदु। **[त्व महाराजस्य नेपथ्य कुरु। सारङ्गिका घनसार-मञ्जर्या, करोतु]**

(इत्युभे उभयोर्विवाहनेथ्यकरण नाटयत)

भैरवानन्द—उवज्झाओ हक्कारीअदु। **[उपाध्याय आकार्यताम्]**

राज्ञी—अज्जउत्त। एसो उवज्झाओ अज्जकविञ्जलो चिट्ठदि, ता करेदु अग्गिआ-रिअ। **[आर्यपुत्र। एष उपाध्याय आर्यकपिञ्जलस्तिष्ठति, तत् करोतु अग्रयाचा-र्यकम्]**

कामदेव की पताका के समान इसकी सुन्दरता जिसकी ऑखो से समा जाती है, उसी के चित्त मे अद्भुत कामदेव बाण चढे हुए टेढे धनुष के साथ वास करने लगता है॥ २० ॥

विदूषक—(जनान्तिक में) तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया। किनारे पर पहुँची हुई भी नाव का विश्वास नही करना चाहिए, इसलिए चुप ही रहो।

राज्ञी—(कुरगिका से) तू महाराज के वस्त्र सजा। सारगिका घनसारमञ्जरी के वस्त्र तैयार करती है।

(दोनो विवाह के वस्त्र तैयार करने का अभिनय करती है)

भैरवानन्द—पुरोहित को बुलाओ?

राज्ञी—आर्यपुत्र। यह आर्य कपिजल खडे हुए है, आइये, पुरोहित का कार्य कीजिये।

विदूषक—एस सज्जेम्हि । भो वअस्स । उत्तरीए गण्ठि दाइस्स, दाव हत्थेण हत्थ गण्ह कप्पूरमञ्जरीए। **[एष सज्जोऽस्मि। भो वयस्य । उत्तरीये ग्रन्थि दास्यामि, तावद्धस्तेन हस्त गृहाण कर्पूरमञ्जर्या]**

राज्ञी—(सचमत्कारम्) कुदो कप्पूरमञ्जरी । । **[कुत कर्पूरमञ्जरी ?]**

भैरवानन्द—(त तस्या भावमुपलभ्य विदूषक प्रति) तुम सुट्ठतरभुल्लो सि, जदो कप्पूरमञ्जरीए घणसारमञ्जरी त्ति णामान्तर जाणासि। **[त्व सुष्ठुतरं भ्रान्तोऽसि, यत कर्पूरमञ्जर्या घनसारमञ्जरीति नामान्तर जानासि]**

राजा—(करमादाय)—

जे कण्ठआ तिउसमुद्धफलाण सन्ति जे केअईकुसुमगब्भदलावलीसु ।
फसेण णूणमिह मज्ज सरीअस्स ते सुन्दरीअ बहला पुलअकुराओ ॥ २१ ॥

[ये कण्टकास्त्रपुषमुग्धफलाना सन्ति ये केतकीकुसुमगर्भदलावलीषु ।
स्पर्शेन नूनमिह मम शरीरस्य ते सुन्दर्या बहला पुलकाङ्कुरा ॥ २१ ॥]

विदूषक—भो वअस्स । भामरीओ दिज्जन्तु । हुदवहे लाजञ्जलीओ खिविअदु । **[भो वयस्य । भ्रामर्यो दीयन्ताम्। हुतवहे लाजाञ्जलय क्षिप्यन्ताम्]**

विदूषक—मै तैयार हूँ। प्रिय मित्र । दुपट्टे मे गाँठ लगाता हूँ, तब तक अपने हाथ से कर्पूरमञ्जरी का हाथ पकडो ।

राज्ञी—(चौककर) कर्पूरमञ्जरी कहाँ है ।

भैरवानन्द—(रानी के उस भाव को जानकर विदूषक से) तुम तो भूल मे हो, जो घनसारमञ्जरी को कर्पूरमञ्जरी का दूसरा नाम समझते हो ।

राजा—(हाथ पकडकर)—

त्रपुषलता के सुन्दर और कोमल फूलो मे जो काँटे होते हैं तथा केतकी के फूलो के अन्दर के पत्तो मे जो काटे होते है, वैसा निश्चय ही कर्पूरमञ्जरी के स्पर्श से उत्पन्न मेरे शरीर के रोमाञ्चो का समूह है ॥ २१ ॥

विदूषक—प्रिय मित्र ! भावरे दो (अग्नि की परिक्रमा करो) और अग्नि मे खीले छोडो ।

**(राजा भ्रमण नाटयति । नायिका धूमेन व्यावृत्तमुखी तिष्ठति राजा परिण-
यति । राज्ञी सपरिवारा निष्क्रान्ता)**

भैरवानन्द—विवाहे दक्खिणा दिज्जदु आचरिअस्स । **[विवाहे दक्षिणा दीयताम् आचार्यस्य]**

राजा—दिज्जदु वअस्स । गामसअ ते दिण्ण **[दीयते । वयस्य । ग्रामशत ते दत्तम्]**

विदूषक—सोत्थ होदु । **[स्वस्ति भवतु]**

(इति नृत्यति)

भैरवानन्द—महाराअ । कि ते उणो वि प्पिअ कुणोमि ? **[महाराज । किन्ते पुनरपि प्रिय करोमि ?]**

राजा—जोईसर किमवर पिअ बट्टदि ? जदो—**[योगीश्वर । किमपर प्रिय वर्त्तते ? यत]**—

कुन्तलेस्सरसुआकरफस्सप्फारसोक्खसिढिलीकिदसग्गो ।
पालएमि वसुहातलरज्ज चक्कवट्टिपदवीरमणिज्ज ॥ २२ ॥

**[कुन्तलेश्वरसुताकरस्पर्शस्फारसौख्यशिथिलीकृतस्वर्ग ।
पालयामि वसुधातलराज्य चक्रवर्त्तिपदवीरमणीयम् ॥ २२ ॥]**

(राजा घूमने का अभिनय करता है । कर्पूरमञ्जरी धुएँ से मुख घुमाये खडी रहती है । राजा विवाह करता है । रानी अपने परिवार के साथ बाहर चली जाती है)

भैरवानन्द—आचार्य के लिए विवाह मे दक्षिणा दो ।

राजा—दी जायगी, मित्र । सौ गाव तुम्हारे लिए दिये ।

विदूषक—कल्याण हो ।

(प्रसन्नता से नाचता है)

भैरवानन्द—महाराज । और आपकी क्या इच्छा पूर्ण करूँ ?

राजा—योगीश्वर । इससे बढकर और प्रिय क्या हो सकता है, क्योकि—

कुन्तल देश के राजा की पुत्री कर्पूरमञ्जरी के करस्पर्श के निरतिशय आनन्द से मुझे स्वर्ग भी तुच्छ जान पडता है और चक्रवर्ति के साथ सारे महीतल पर मै राज्य कर रहा हूँ ॥ २२ ॥

तहावि इद होदु दाव— **[तथाऽपि इद भवतु तावत्]**–

सच्चे णन्ददु सज्जणाण सअलो वग्गो खलाण पुणो
णिच्च खिज्जदु होन्दु बह्मणजणा सच्चासिहो सव्वदा।
मेहो मुञ्चदु सञ्चिद वि सलिल सस्सोचिद भूदले
लोओ लोहपरम्मुहोऽणुदिअह धम्मे मई भोदु अ ॥ २३ ॥

[सत्ये नन्दतु सज्जनाना सकलो वर्ग खलाना पुन-
र्नित्य खिद्यतु भवन्तु ब्राह्मणजना सत्याशिष सर्वदा।
मेघो मुञ्जतु सञ्चितमपि सलिल शस्योचित भूतले
लोको लोभपराङ्मुखोऽनुदिवस धर्मे मतिर्भवतु च ॥ २३ ॥]

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

॥ इति चतुर्थ जवनिकान्तरम् ॥

कर्पूरमञ्जरी समाप्ता

तो भी ऐसा हो—

सारे सज्जनवृन्द सत्यभाषण तथा सदाचार मे आनन्द का अनुभव करे, दुष्टगण हमेशा दु ख भोगते रहे, ब्राह्मणो के आशीर्वाद सर्वदा सच्चे निकले, मेघ इकट्ठे किये हुये जल को पृथिवी पर कृषि के अनुकूल बरसाये, जनता दिन प्रतिदिन लोभ से दूर हटे और धर्म मे उसका दृढ विश्वास बना रहे ॥ २३ ॥

(सबका प्रस्थान)

चतुर्थ जवनिका समाप्त

कर्पूरमंजरी समाप्त

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

१	सम्राट् विद्याधरमल्ल	उज्जयिनी का स्वामी नाटक-नायक
२	सूत्रधार	नाटकाभिनयप्रबन्धक
३	चारायण	विदूषक, राजा का मित्र
४	हरदास	राजा के मन्त्री भागुरायण का शिष्य
५	भागुरायण	सम्राट् विद्याधरमल्ल का मन्त्री
६	कुरङ्गक	सम्राट् विद्याधरमल्ल का पत्र-वाहक
७	दूतद्वय	लाटाधिपति के दो दूत

स्त्री-पात्र

१	देवी	राजा की प्रथम पत्नी
२	मृगाङ्कावली	लाटप्रदेश के अधिपति चन्द्रवर्मा की पुत्री नायिका
३	कुवलयमाला	कुन्तलदेश के राजा चण्डमहासेन की कन्या
४	मेखला	देवी की धात्री की कन्या
५	पुष्करमाला	विदूषक की पत्नी
६	कुरङ्गिका	देवी की चेटी
७	तरङ्गिका	" " "
८	सुलक्षणा	" " "
९	विचक्षणा	देवी की चेटी मृगाङ्कावली की प्रिय सखी

॥ श्री ॥

विद्धशालभञ्जिका

प्रथमोऽङ्कः

कुलगुरुरबलाना केलि-दीक्षा-प्रदाने
परमसुहृदनङ्गे रोहिणी-वल्लभस्य ।
अपि कुसुम-पृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति सुरतलीलानाटिका-सूत्रधार. ॥ १ ॥

अपि च—

दृशा दग्ध मनसिजं जीवयन्ति दृशैव या ।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ता स्तुवे वाम-लोचना ॥ २ ॥

(पुन समाधाय) –

स्त्रियो की रति-क्रीडा का मन्त्र देने मे उनके कुलक्रमागत गुरु, रोहिणी—वल्लभ चन्द्रमा के परम मित्र, कुसुम-शरो से देवदेव शकर जी को भी जीतने वाले और सभोग-लीलारूपी नाटिका के सूत्रधार कामदेव जी सर्वश्रेष्ठ है ॥ १ ॥

और भी—

(शङ्कर जी के द्वारा) दृष्टि से जला दिये गये काम को (अपनी) दृष्टि से ही (पुन) जो जीवित कर देती है, (इस प्रकार) शकर जी को परास्त कर देने वाली उन परम सुन्दरियो की मै स्तुति करता हूँ ॥ २ ॥

(पुन समाहित होकर)

गोनासाविनियोजितायतजरत्सर्पाय बद्धौषधि
कण्ठस्थाय विषाय वीर्यमहते पाणौ मणीन् बिभ्रती ।
भर्तुर्भूतगणाय गोत्रजरतीनिर्दिष्टमन्त्राक्षरा
रक्षत्वद्रिसुता विवाहसमये ह्रीता च भीता च व ॥ ३ ॥

नान्द्यन्ते

सूत्रधार.—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) न जाने का पुनरद्य श्रीयुवराजदेवस्य परिषदाज्ञा ? नेपथ्ये गीयते—

कुन्दलदाऐ विमुक्क-मअरन्दरसाए वि चञ्चरीअओ ।
पणअप्परूढ-पेम्मभरभञ्जन-काअरभावभीअओ ॥ ४ ॥

तरुणी तरङ्गिआ विअ पिआ विअ चारुपसूणदिट्ठिआ ।
रक्खइ णअइ धुणइ परिरम्भइ चुम्बइ चूदलट्ठिआं ॥ ५ ॥

(कुन्दलताया विमुक्तमकरन्दरसायामपि चञ्चरीकक ।
प्रणयप्ररूढप्रेमभरभञ्जनकातरभावभीरुक ॥ ४ ॥)

तरुणी तरलितामपि प्रियामपि चारुप्रसूनदृष्टिकाम् ।
रक्षति नयति धुनोति परिरम्भते चुम्बति चूतयष्टिकाम् ॥ ५ ॥

विवाह के समय शकर जी को भयकर देखकर लजाई और डरी हुई पार्वती जी, जिन्होने शकर जी के बैल के नथुनो मे लगाये गये दीर्घकाय पुराने साँप का प्रतीकार करने के लिए औषधि बाँध ली, शिव जी के कण्ठ मे स्थित विष के प्रतीकारार्थ हाथ मे मणियाँ धारण कर ली तथा भूतगण के निवारणार्थ जिन्हे कुल की बूढी स्त्रियो ने मन्त्राक्षर सिखा दिया, आप लोगो की रक्षा करे ॥ ३ ॥

नान्दी समाप्त होने पर

सूत्रधार—(नेपथ्य की ओर देखकर) मै नही जानता की आज भी युवराजदेव की सभा की क्या आज्ञा है ? नेपथ्य मे गाया जा रहा है—

कुन्दलता के मकरन्द रस को त्याग देने पर भी प्रगाढ प्रेम के भङ्ग होने की शका से सशकित भ्रमर, कम्पायमान मनोहारी सुन्दर पुष्परूपी दृष्टिवाली रसाल की मञ्जरी को अपनाता है, धारण करता है, हृदय से लगाता है और चूमता है ॥ ४-५ ॥

सूत्रधार — (आकर्ण्य) अये । यायावरेण दौहिकिना कविराजशेखरेण विरचिताया विद्ध-शालभञ्जिका-नामनाटिकाया वस्तूपक्षेपो गीयते । (विभाव्य) तन्मन्ये तदभि-नये श्रीयुवराजदेवस्य परिषदाज्ञा । तदहमपि मन्त्रिणो भागुरायणस्य प्रतीकवृत्या शिष्यैर्विहितचारुनाम्नोऽन्तेवासिनो हरदासस्य भूमिका सम्पादयामि ।

(आकाशे)—सखे सोमदत्त ! किमात्थ ? तदकालजलदस्य प्रणप्तुस्तस्य गुण-गण किमिति न वर्ण्यते ? तत्रैव शृणु-

किमु परमपरै परोपकारव्यसननिधेर्गुणितैर्गुणैरमुष्य ।
रघुकुलतिलको महेन्द्रपाल सकलकलानिलय स यस्य शिष्य ॥६ ॥

आकर्णय च गोष्ठीगरिष्ठस्य कृष्णशङ्करवर्मणो वाच —

पातु श्रोत्ररसायनं रचयितुं वाचः सता सम्मता
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्त्रोतस ।
भोक्तु स्वादुफलं च जीविततरोर्यद्यस्ति ते कौतुक
तद् भ्रात ! शृणु राजशेखरकवे सूक्ती सुधास्यन्दनी ॥ ७ ॥

सूत्रधार—(सुनकर) अये ! यायावर मे उत्पन्न दुहिक के पुत्र कविराजशेखरविरचित विद्धशालभञ्जिका का वस्तूपक्षेप (रूपक का सम्पूर्ण वृत्तान्त) गाया जा रहा है । (समक्ष कर) तो मै यह समझता हूँ कि उसका अभिनय करने के लिए श्री युवराज देव की सभा की आज्ञा है । तो मै भी मन्त्री भागुरायण, शिष्यो के द्वारा जिनका प्रतीकात्मक नाम चारु रक्खा गया है—के शिष्य हरदास की भूमिका का सम्पादन करूँ ।

(आकाश में) मे सखे सोमदत्त ! क्या कहते हो ? अकालजलद के प्रपौत्र (राजशेखर) का गुण-वर्णन क्यो नही करते ? उसी विषय मेसुनो—रघुकुलतिलक, सकलकलाओ के आगार, महेन्द्रपाल जिनके शिष्य है, परोपकार के व्यसन के धनी इन (राजशेखर) के प्रकृष्ट गुणो से बढकर और क्या है ॥ ६ ॥

गोष्ठी—विद्वत्सभा के गौरवशाली विभूति कृष्णशकर वर्मा के वचनो को सुनो—यदि तुम कर्णो के लिए रसायन पीना, सज्जन-सम्मत वचनो की रचना, परम विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त करना, रस-स्त्रोत की पराकाष्ठा तक पहुँचना, जीवनरूपी वृक्ष के मधुर फल का आस्वादन करना चाहते हो तो भाई ! राजशेखर कवि की अमृत-वर्षिणी सूक्तियो को सुनो ॥ ७ ॥

(निष्क्रान्त)

इति प्रस्तावना

(तत प्रविशति हरदास)

हरदास—(सशिर कम्पम्) अहह ! प्रज्ञाप्रकर्ष सर्वेषामुपरि वसति तदुक्तम्-

श्रिय प्रसूते विपदो रुणद्धि यशासि दुग्धे मलिन प्रमार्ष्टि ।
सस्कारशौच्चेन परं पुनीते शुद्धा हि बुद्धि किल कामधेनु ॥ ८ ॥

तदिद चास्मद्गुरोश्चरितेषु परमुपलभ्यते । तथा हि—

लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा नरपतितिलक कल्पिता तेन पुत्री
निष्पुत्रेणैकपुत्र कथितमपि तथा मन्त्रिणे तस्य चारै ।
तस्मात् पुत्रावकल्पच्छलत इह महाराजसन्दर्शनार्थ
तेनाद्यानायितासौ निरुपधि दधता साधु षाड्गुण्यचक्षु ॥ ९ ॥

(रग मञ्च से चला गया)

इति प्रस्तावना ।

(तदनन्तर हरदास प्रविष्ट होता है)

हरदास—(सिरहिलाते हुए) अहह ! प्रकृष्ट बुद्धि सबसे उत्तम है । कहा गया है—समस्त वैभवो को उत्पन्न करती है, विपत्तियो को रोकती है, यश प्राप्ति कराती है, पाप को विनष्ट करती है और सस्कारो को शुद्ध कर परम पवित्र करती है । (अत) शुद्ध बुद्धि निश्चय ही कामधेनु है ॥ ८ ॥

यह हमारे गुरु के चरित्र मे पूर्ण रूप से मिलता है । यथा—लाट प्रदेश के अधिपति नृपतिश्रेष्ठ चन्द्रवर्मा के एक पुत्री पैदा हुई । निष्पुत्र होने के कारण उसके दूतो ने मन्त्रियो से पुत्रोत्पति की सूचना दी । उस पुत्री को पुत्रवेश मे सम्राट् (विद्याधर मल्ल) के सदर्शनार्थ बडे सफल ढग से राजनीति के षड्गुणरूपी नेत्र रखने वाले उन्होने (भागुरायण ने) यहाँ मॅगवा लिया ॥ ९ ॥

(आकाशे) अये । चारायण । किमात्थ ?

अन्तेउरिकासहस्सपरिवारस्स महाराअस्स किं तीए विणा विसूरदित्ति ? (अन्त पुरिकासहस्रपरिवारस्य महाराजस्य कि तया बिना विस्रसति ।)

त प्रति मा मैवम् । अत्र किचन मत्रबीजमस्ति, तत् कार्यसिद्धावाविर्भविष्यति ।

(नेपथ्ये) पच्चूसमुहपडिबुद्धस्स सुप्पभाद देवस्स । सपद खु— (प्रत्यूषसुखप्रतिबुद्धस्य सुप्रभात देवस्य । साप्रत खलु)—

माणो जाण ण खण्डिदो ससि अरुक्केरेण वित्थारिणा
हुकारा णअपचमस्स वि चिर जासु ट्ठिदा कुठिदा ।
पच्चूसाणिअदोलणेण ललणा मोत्तूण माणग्गह
चूडाचुबिदवल्लहग्गचलणा वट्टन्ति ता सपदम् ॥ १० ॥

(मानो यासा न खण्डित शशिकरोत्करेणा विस्तारिणा
हुङ्कारा नवपञ्चमस्यापि चिर यासु स्थिता कुण्ठिता ।
प्रत्यूषानिलदोलनेन ललना मुक्त्वा नु मानग्रह
चूडाचुम्बित वल्लभाग्रचरणा वर्तन्ते ता साप्रतम् ॥ १० ॥)

(आकाश में) अरे चारायण । क्या कह रहे हो ? महाराज के अन्त पुर मे हजारो रानियाँ हैं । उस (कन्या) के बिना उनको क्या दु ख ?

उनके प्रति ऐसा मत कहो । इसमे कोई रहस्य है जो कार्य-सिद्धि के अनन्तर प्रकट होगा ।

(नेपथ्य में) प्रात सुख से जगे हुए देव को प्रभात सुखकारी हो । इस समय—

जिन स्त्रियो का मान चन्द्रमा की किरणो से खण्डित नही हुआ, जिन पर कोकिल की हुङ्कार कुण्ठित रही अर्थात् कुछ प्रभाव हीन रही, उनका प्रात वेला के वायु-सचार से मान-भङ्ग हो गया और अब (मान छोड देने के कारण) उनके मस्तक प्रियतम के चरण चूम रहे हैं—उन्होने मान त्याग कर प्रियतमाओ के आगे आत्मसमर्पण कर दिया ॥ १० ॥

(पुनस्तत्रेव) भो भो वदि-विंदारआ मतिविणिम्मिदमहाराअवास घरपेरत-वासी महमल्लओ तुम्हे भणदि को विअ कालो विबुद्धस्स विज्जाहरमल्लदेवस्स विवुधस्स । ता कत्तो पभादभोआवलि ण गायधत्ति ।

(भो भो वन्दिवृन्दारका, मन्त्रिविनिर्मापितमहाराजवासगृहपर्यन्तवासी महामल्लको युष्मान् भणति क इव कालो विद्याधरमल्लदेवस्य विबुधस्य, तत् कस्मात् प्रभातभोगावलि न गायथ ?)

(तत्रैव) —

जय जयोज्जयिनीभुजङ्ग । सुप्रभात भवत । सम्प्रति हि—

द्वित्रैर्व्योम्नि पुराणमौक्तिकमणिच्छायै स्थित तारकै-
र्ज्योत्स्नापानभरालसेन वपुषा सुप्ताश्चकोराङ्गना ।
यातोऽस्ताचलमस्तमुद्रसमधुच्छत्रच्छविश्चन्द्रमा
प्राची बालविडाललोचनरुचा जाता च पात्र ककुप् ॥ ११ ॥

अपि च—

(पुन वहीं)

हे हे वन्दी जनो । मन्त्री द्वारा बनवाये गये महाराज के वासगृह के पास ही रहने वाले महामल्लक तुम लोगो से कह रहे है—महापण्डित विद्याधरमल्ल देव को जगे अधिक समय हो गया । तुम लोग प्रभात गान क्यो नही गाते हो ?

(वहीं) हे उज्जयिनी के स्वामी । प्रभात आप को मगलकारी हो । इस समय—

पुराने मोती और मणियो की सी कान्ति वाले दो-तीन तारे आकाश मे स्थित है (दिखाई दे रहे है), चकोरियॉ चन्द्रिका को छककर पीने के कारण शरीर के अलसा जाने से सो गई । रसयुक्त मधु के छत्ते की छवि वाला चन्द्रमा अस्ताचल पर अस्त को प्राप्त हो गया । प्राची दिशा विडालशावक के लोचनो की कान्ति को प्राप्त हो गई ॥ ११ ॥

और भी—

भिन्दानः सुन्दरीणा पतिषु रुषमय हर्म्यपारावतेभ्यो
वाचालत्व ददान कवयितृषु गुण प्रातिभ सन्दधान. ।
प्रातस्त्यस्तूर्यनाद. स्थगयति गगन मांसल पासुतल्पा-
दस्वल्पादुत्थिताना नरवरकरिणा शृखलाशिञ्जितेन ॥ १२ ॥

हरदासः—महत्येव प्रभाते प्रबुद्धो देव इति मत्रि-मत्र-प्रभाव एवैष ।

यत —

कारुभि कारितं तेन कृत्रिम स्वप्नहेतवे ।
सुषिरस्तम्भसञ्चार नृपतेर्वासमन्दिरम् ॥ १३ ॥

तदहमपि सुषिरस्तम्भप्रवेशसचारापसार वासगृहनिर्मितवता तथा विधा-रत्नैश्चतुष्किका च करिष्यता शिल्पिना मन्त्रिसमादिष्ट दापयितु महाभाण्डा-गार प्रति यास्यामि । (इति निष्क्रान्ता) ।

तुरही अथवा मृदङ्ग का यह प्रात कालीन गभीर स्वर सुन्दरियो के पतिविषयक क्रोध को विदीर्ण करता, महल के कपोतो मे वाचालता देता, कवियो मे प्रतिभासम्बन्धी गुणो को युक्त करता—उनकी काव्य-प्रतिभा को उद्दीप्त करता हुआ, धूल-शयन से उठे, राजा के, हाथियो की शृङ्खला की खनखनाहट से गगन-मण्डल को भर दे रहा है ॥ १२ ॥

हरदास—बडे ही तडके महाराज जग गये, यह मत्री के मत्र का ही प्रभाव है । क्योकि—

महाराज के वास-मन्दिर को शिल्पियो द्वारा छिद्रो से युक्त स्तम्भों के कारण सञ्चार वाला बनवाया है ॥ १३ ॥

तो मै भी छिद्रो से युक्त स्तम्भो के कारण जिसमे वायु, ध्वनि आदि का प्रवेश, सचार और अपसार होता है, ऐसे वास-गृह का जिन्होने निर्माण किया और रत्नो से उसी प्रकार की चतुष्किका का निर्माण किया है, उन शिल्पियो को मत्री द्वारा आदिष्ट धन दिलाने महाभाण्डागार को जाऊगा । चला जाता है ।)

इति विष्कम्भक

(तत प्रविशति सुप्तोत्थित सोत्कण्ठो राजा द्वारावस्थितो विदूषकश्च)

राजा—(साङ्गभङ्गमुत्थाय पठति—)

तद्वक्त्र यदि मुद्रिता शशि-कथा हा हेम ? सा चेद् द्युति-
स्तचक्षुर्यदि हारित कुवलयैस्तच्चेत् स्मित का सुधा ।
धिक्कन्दर्पधनुर्भ्रुवौ च यदि ते किं वा बहु ब्रूमहे
यत् सत्य पुनरुक्त-वस्तुविरस सर्गक्रमो वेधस ॥ १४ ॥

विदूषक—(उपसृत्य) वड्ढदु भव । (वर्धता भवान् ।)

राजा—(तदेव पठति)

विदूषक—अहो । अपुव्वो कोवि पाभादिओ अज्झयणविही पिअवअस्सस्स । (अहो । अपूर्व कोऽपि प्राभातिकोऽध्ययनविधि प्रियवयस्यस्य ।)

राजा—(तथैव) ।

इति विष्कम्भक

(तदनन्तर सोकर उठा हुआ शोकाकुल राजा और द्वारावस्थित विदूषक रगमञ्च पर आते है ।)

राजा—(अङ्गो को ऐठता हुआ उठकर कहता है)—यदि उसका मुख है, तो चन्द्रमा का वर्णन समाप्त हुआ (समझो) अर्थात् उसके मुख के सामने चन्द्रमा की शोभा व्यर्थ है । उसकी शरीर-कान्ति की तुलना मे सुवर्ण तुच्छ है । उसकी भौहो के सामने कामदेव का धनुष क्या है ? अधिक क्या कहे—सचमुच अनावश्यक इन वस्तुओ का पुनर्निर्माण करने से विधाता का सृष्टिक्रम व्यर्थ सा लगता है ॥ १४ ॥

विदूषक—(निकट जाकर) आप फले-फूले ।

राजा—(उसी श्लोक को पढ़ता है ।)

विदूषक—अहो । प्रिय सखा का प्राभातिक पाठ का ढग कुछ अपूर्व सा है ।

राजा—(उसी प्रकार पढता है ।)

विदूषक—अहो अस्स हिअअस्खेवो ता कि णु खु एद। **(विचिन्त्य)** भोदु अणुबन्धिस्स। णहु अणुप्पीडिओ सहआरपिट्ठ-गठी रस-सव्वस्स मुञ्चदि। (पुरत स्थित्वा) परिणामफुट्टिअ विअ दाडिमफल फुट्टणभूइट्ठ वट्ठदि मे हिअअ कोदूहलेण, ता जधापत्थुद आचक्ख-तो कज्जरहस्सेण सभावेदु म पिअवअस्सो। **(अहो अस्य हृदयाक्षेप। तस्मात् किं तु खल्वेतत्।(विचन्त्य) भवतु अनुभन्त्स्यामि(अनुबन्ध करिष्यामि)। न खलु अनुत्पीडित सहकारपृष्ठग्रन्थि रस-सर्वस्व मुञ्चति। परिणामस्फुटितमिव दाडिमी फल स्फुटनभूयिष्ठ वर्त्तते मे हृदय कौतूहलेन, तस्मात् यथाप्रस्तुत आचक्षाण कार्यरहस्येन सभावयतु मा प्रियवयस्य।)**

राजा—(तदभिमुखमवलोक्य) अये चारायण! सखे! कथ न कथयामि, लघूभवत्सुहृत्सञ्चारितरहस्य हि चेत सविभक्तचिन्ताभारमिव भविष्यति।

विदूषक—अवहिदोह्मि (अवहितोऽस्मि)

राजा- **जाने स्वप्नविधौ ममाद्य-चुलकोत्सेक्य पुरस्तादभूत्**
प्रत्यूषे परिवेषमण्डलमिव ज्योत्स्नासपत्न मह.।
तस्यान्तर्नखनिस्तुषीकृतशच्चन्द्रप्रभैरङ्गकै-
र्दृष्टा काप्यबला बलात् कृतवती सा मन्मथ मन्मथम्॥ १५॥

विदूषक—अहो! इनका हाल कैसा विक्षिप्त सा है? तो क्या बात है। (सोचकर) अच्छा, सम्बन्ध स्थापित करूँ जिससे घटना को बताते हुए प्रिय सखा मुझे रहस्य से परिचित कराये। (क्योकि) आम की ढेपी बिना दबाए रस नही निकालता। कौतूहल से मेरा हृदय पकने पर फट जाने वाले अनार के समान फटा जा रहा है।

राजा—(उसकी ओर देखकर) अये चारायण! सखे! क्यो न कहूँगा? मित्र से रहस्य प्रकट कर देने से चिन्ता-भार बँट सा जाता है और इस प्रकार मन हल्का हो जाता है।

विदूषक—मै स्थिरचित्त हुआ।

राजा—मुझे याद है—आज भोर के समय स्वप्न मे मण्डलाकृति तथा चन्द्रिका से प्रतिद्वन्द्विता करने वाली दीप्ति मेरे सामने प्रकट हुई। उसके अन्दर नखो से साफ किये गये शरद् के चन्द्रमा की प्रभा के समान कमनीय अग वाली एक अबला दिखाई पडी, जिसने बलपूर्वक मन्मथ (कामदेव) को सचमुच मन्मथ (मन को मथने वाला) कर दिया॥ १५॥

विदूषकः—भो सुट्ठु क्खु तुम महिलालपडो जादो जा सा तए णम्मदामज्जपुत्तिण्णा दिट्ठा कुवलअमाला णाम जाव तग्गद किं पि अणुसंधेमि दाव एसो अवरो गडस्स उवरि फुडिउब्भिदो । हु तदो तदो । (भो सुष्ठु खलु त्व महिलालपटो जात । या सा त्वया नर्मदामज्जनोत्तीर्णा दृष्टा कुवलयमाला नाम यावत्तद्गत किमप्यनुसन्दधामि तावदेषोऽपरो गण्डस्योपरि स्फोटिकोद्भेद । हुम् ततस्तत ।)

राजा—ततश्च ।

आलिखितामिव चेतः फलकतलेऽस्मिन् विकल्पवर्तिकया ।
बाला स्मरचित्रगतां विलोक्य जातोऽस्मि तद्वन्दी ॥ १६ ॥

(पुनस्तद्वक्त्रमित्यादि पठति)

विदूषक—तदो (तत)

राजा—शृणु श्रवणामृतम्, गण्डूषय मधु, पिब नयनामृतम् ।

हारोऽय केरलस्त्रीविहसितशुचिभि पङ्क्तिभिर्मौक्तिकाना ।
सद्य षाण्मासिकाना मम मदिरदृशा दत्तचन्द्रोदयश्री ॥

विदूषक—अच्छा, तुम स्त्री-लपट हो गये । जो तुमने नर्मदा मे स्नान करने निकली कुवलयमाला देखी, उसके विषय मे जब तक कुछ अनुसन्धान करुँ तब तक यह दूसरी समस्या । हूँ ! इसके बाद ।

राजा—इसके बाद मेरे इस मन रूपी चित्रपट पर विकल्प की तूलिका से कामदेव द्वारा चित्रित उस बाला को देखकर मैं अब उसका बन्दी बन गया हूँ ॥ १६ ॥

(पुन- उसी उपर्युक्त श्लोक को पढता है ।)

विदूषक—इसके बाद ।

राजा—कानो के लिए अमृत सुनो, मधु का आचमन करो, नयनामृत पियो ।

केरल प्रदेश की स्त्री के हास सी मोतियों की पक्तियो से निर्मित यह हार चन्द्रोदय की सी शोभा को मेरे मदिर नेत्रो ने ग्रहण किया, नायिका द्वारा जिसकी ‘ओउम् नमो मन्मथाय—’ ऐसा पढकर उत्कण्ठापूर्वक, शीघ्रता से कुच के ऊपर से

सोत्कण्ठ कण्ठदेशाज्झटिति कुचतटादो नमो-मन्मथाये-
त्यन्तो यन्मध्यरत्न छुरयति ककुभः कौङ्कुमीभि प्रभाभि ॥ १७ ॥

विदूषक —(यज्ञोपवीत परिमृश्य) सुक्खकुसरज्जुकक्कसदारस्स मे वम्हणस्स वअणेण सच्चसिविणत्तण दे भोदु । (स्वगतम्) अहो दासीए पुत्त ! सिविणइदजालिअ ! जाणासि महा-मदीण वि मदिबिब्भम कादु (प्रकाशम्) तदो । (शुष्ककुशरज्जुकर्कशदारस्य मम ब्राह्मणस्य वचनेन सत्यस्वप्नत्व ते भवतु । अहो दास्या पुत्र ! स्वप्नेन्द्रजालिक ! जानासि महामतीनामपि मतिविभ्रम कर्त्तुम् तत ।)

राजा—ततश्च ।

कथय किमिह वाले ! का त्वमित्युल्लपस्ता
झटिति किल दुकूलस्याञ्चले धारयामि ।
अगमदथ निकेतात् क्वाप्यसौ सारयन्ती
नव-कुवलयमालामासलैर्दृष्टिपातै ॥ १८ ॥

विदूषक —अध एक्कपल्लकगदाए देवीए कि पडिवण्ण ? (अथैकपर्यङ्कगतया देव्या कि प्रतिपन्नम् ?)

(हटाकर) कण्ठदेश से (निकालकर) डाल दिया गया, जिसका मध्यरत्न कुकुम की प्रभा से दिशाओ को प्रकाशित कर रहा है ॥ १७ ॥

विदूषक—(यज्ञोपवीत स्पर्श कर) कुश की रस्सी की तरह कर्कशा पत्नी वाले मुझ ब्राह्मण के वचन से तुम्हारा स्वप्न सत्य हो । (स्वगत) अरे दासीपुत्र ! इन्द्रजालिक स्वप्न ! तू बडे-बडे बुद्धिमानो को भी विभ्रम मे डालता है । (प्रकाश) इसके बाद ।

राजा—इसके बाद

हे बाले ! कहो, यहॉ क्यो, तू कौन है ? ऐसा कहते हुए मैं शीघ्र ही उसका वस्त्राञ्चल पकडता हूँ । (इतने में) कुवलयमाला मासल दृष्टिपात से निर्बल करती हुई घर से निकली ॥ १८ ॥

विदूषक—उसी शय्या पर देवी भी तो थी, उन्होने क्या किया ?

राजा—

अत्रान्तरे ललितहारलतानितम्ब-
सवाहनस्खलितवेगतरङ्गिताङ्गी ।
देवी व्यपास्य शयन धृतमानतन्तु-
रन्त पुर गतवती सह सौविदल्लै ॥ १९ ॥

विदूषक—अहो । दे अणागरिअत्तण किति तुए पुरदो भवीअ णाणुणीदा देवी केच्चिर वा चन्दे पसादिदकरे अविसट्ठकदोट्टा णीलुप्पलिणी चिट्ठदि । (अहो ते अनागरिकत्व किमिति त्वया पुरतो भूत्वा नानुतीता देवी ? कियच्चिर वा चन्द्रे प्रसादितकरे अविस्पष्टोत्पला नीलोत्पलिनी तिष्ठति ।)

राजा—(सखेदस्मितम्) तदनुध्यानपरतन्त्रचेतसा धारयितु न पारिता कि पुनरनुनेतुम् ।

विदूषक—सच्च एव्व एद किद णडे दिट्ठे मुडिदे उवविट्ठो पइ मुडिदोत्ति । (सत्यमेव एतत्कृतम्—नटे दृष्टे मुण्डिते उपविष्ट पतिर्मुण्डित इति ।)

राजा—(सखेदस्मितम्) भगवत्याशे । सत्यम् प्रतिहतासि । ननु विचारय चिरम्—

राजा—इस बीच मे जघन पर ललित हार की लडियो के रहने के कारण देवी का गमन-वेग बाधित हो गया था, अतएव कम्पित शरीर वह शय्या त्याग करके मान धारण कर अन्त पुर के अनुचरो के साथ अन्त पुर मे चली गई ॥ १९ ॥

विदूषक—आपकी अनागरिकता भी कैसी है ? आपने सामने जाकर देवी को प्रसन्न क्यो नही किया ? चन्द्रमा के करो (किरणो, हाथों) के फैलाने पर नीलोत्पलिनी (कुमुदो का तालाब) कब तक अविकसितकुमुद रहेगी ?

राजा—(खेद और मुस्कराहट के साथ) उस (स्वप्न मे देखी गई सुन्दरी) के अनुचिन्तन मे मै देवी को पकड भी नही सका, फिर अनुनय करने की क्या बात ।

विदूषक—नट को मुण्डित देखकर पति भी मुडाकर बैठा, इस (लोकोक्ति) को तुमने सच कर दिया ।

राजा—(खेद और स्मित के साथ) हे भगवति आशे । सचमुच तुम कभी विनष्ट नहीं होती । देर तक सोचो—

क्व पातव्या ज्योत्स्ना भृतभुवनगर्भाऽपि तृषितै-
र्मृणाली-तन्तुभ्य सिचयरचना कुत्र भवतु।
क्व वा पार्यामेयो बत वकुलदाम्ना परिमल
कथ स्वप्न साक्षात् कुवलयदृश कल्पयतु ताम्॥ २० ॥

(स्मृतिमभिनीय हृदयदेशमवलोक्य च)

स्वप्न किमेष किमु सविदिय तु साक्षाज्-
ज्ञान किमेतदुभयात्मकमन्यदेव।
यद् दृश्यते न खलु सा तरलायताक्षी
कण्ठप्रदेशमधिरोहति चैष हार ॥ २१ ॥

विदूषक —मण्णे णिशापिणद्धेण णिअहारेण विप्पलद्धोसि। (मन्ये निशा-पिनद्धेन निजहारेण विप्रलब्धोऽसि।)

राजा—(मदनाकूतमभिनीय)

भुवन के अन्दर फैली चॉदनी को प्यासे कहॉ पी पाते है ? कमल-नाल के तन्तुओ से वस्त्र-रचना कहॉ हो सकती है ? मौलसिरी पुष्पो की गन्ध कहॉ नापी या तौली जा सकती है ? स्वप्न साक्षात् (सत्य) कैसे हो सकता है ? कमलो के समान नेत्र वाली उस सुन्दरी की आप कल्पना कीजिए ॥ २० ॥

(स्मृति का अभिनय कर तथा हृदय को देखकर)

क्या यह स्वप्न है ? अथवा साक्षात् सत्य प्रतीति है ? अथवा क्या एक दूसरा ही उभयात्मक (सत्यासत्य-मिश्रित) ज्ञान है ? जो वह चञ्चल और बडे-बडे नेत्रो वाली सुन्दरी दीख नही पडती और यह हार मेरे कण्ठप्रदेश मे स्थित है ॥ २१ ॥

विदूषक—मै समझता हूॅ कि रात मे पहने हुए अपने ही हार द्वारा तुम छले गए हो।

राजा—(कामावेश को प्रकट कर)

बाणान् सहर मुञ्च कार्मुकलता लक्ष्य तव त्र्यम्बक
के नामात्र वय शिरीषकलिकाकल्प यदीय मन ।
तत् कारुण्यपरिग्रहात् कुरु दयामस्मिन् विधेये जने
स्वामिन् ! मन्मथ ! तादृश पुनरपि स्वप्नाद्भुतं दर्शय ॥ २२ ॥

विदूषक—एसो सिविणअलद्धेहि मोदएहिं गाम उवणिमतेसि । ता एहि गदुअ देवी पसादेह्म । वर तक्कालोपणदो तित्तिरोण उण दिअह तरिदो मोरो । (एष स्वप्नलब्धैर्मोदकैग्रामम् उपनिमन्त्रयसे । तस्मादेहि देवीं प्रसादयाव । वर तत्कालो-पनतस्तित्तिर., न पुनर्दिवसान्तरितो मयूर ।)

राजा—यदभिरुचित भवते ।

विदूषक—पणअपणमतसामतसहस्सअ अत्थाणमडवमग्गम् उज्झीअ इमिणा खिडक्किआ दुवारेण पमोअउज्जाण पविसिअ गच्छह्मा । **[तथा कुरुत]** (प्रणय-प्रणमत्सामन्तसहस्रकमास्थानमण्डपमार्गमुज्झित्वा अनेन गवाक्षद्वारेण प्रमोदोद्यान प्रविश्य गच्छाव ।)

(नेपथ्ये) सुखाय वसन्तावतारो भवतु देवस्य । सप्रति हि—

बाणो को बटोर लो, धनुष त्याग दो । शिव जी तुम्हारा लक्ष्य बन चुके है, हमारा मन शिरीष-कलिका की भॉति (कोमल) है, हमारी क्या गणना ! दयावान् होने के नाते इस सेवक पर दया करो । हे स्वामिन् मन्मथ ! वैसा ही अद्भुत स्वप्न पुन दिखाओ ॥ २२ ॥

विदूषक—यह तो स्वप्नलब्ध मोदको से गॉव भर को बुलावा दे रहे हो । तो आओ, हम दोनो चखकर देवी को प्रसन्न करे । नौ नगद न तेरह उधार ।

राजा—जो आपको पसन्द हो ।

विदूषक—विनय एव श्रद्धा से प्रणाम करते हुए सहस्रो सामन्त है, अत दरबार वाले मार्ग को छोडकर इस गवाक्ष-द्वार से प्रमोदोद्यान मे प्रवेशकर हम दोनो चले ।

(नेपथ्य में) देव को वसन्त का आगमन सुखकर हो । इस समय—

गर्भग्रन्थिषु वीरुधां सुमनसो मध्येऽङ्कुर पल्लवा
वाञ्छामात्रपरिग्रह: पिकवधूकण्ठोदरे पञ्चम ।
तस्मात् त्रीणि जगन्ति जिष्णु दिवसैर्द्वित्रैर्मनोजन्मनो
देवस्यापि चिरोज्झित यदि भवेदभ्यासवश्यं धनु ॥ २३ ॥

सपदि सखीभिर्निभृतं विरहवतीस्त्रातुमत्र भज्यन्ते ।
सहकारमञ्जरीणां शिखोद्गतग्रन्थय प्रथमे ॥ २४ ॥

राजा—अये । सुरभेरम्भ । सैवेय मन्मथसैन्यसामग्री ।

विदूषक—बंदिवअणसुव्वमाणसिसुभावो उअवणदीसतत्थोअवित्थारो सुरहि समयारभो । ता कि ण वण्णिज्जइ । (बन्दिवचनश्रूयमाणशिशुभाव उपवनदृश्यमानस्तोकविस्तार सुरभिसमयारम्भ । तस्मात् किं न वर्ण्यते ।)

राजा—ततश्चात्र

लताओ की गर्भग्रन्थियो मे पुष्पो के मध्यम मे अकुर ओर पल्लव एव कोकिलबधू के कण्ठ के अन्दर पचम स्वर लगभग उत्पन्न हो गया है, केवल इच्छामात्र चाहिए । मनोज देव का चिरकाल से परित्यक्त तीनो जगत् को जीतने वाला धनुष भी कदाचित् दो-तीन दिन मे अभ्यास-वश्य हो जाय—अभ्यास से काम देने लगे ॥ २३ ॥

सखियॉ तत्काल गुप्त-रीति से विरहिणियो की रक्षा करने के लिए आम्र-मञ्जरियो के अग्र-भाग मे निकली ग्रन्थियो को सर्वप्रथम उपयोग मे लाती है ॥ २४ ॥

राजा—अये । सुरभि का आरम्भ । वही कामदेव की सैन्य-सामग्री है ।

विदूषक—वन्दी जनो के वचनो से जिसका शिशु-भाव सुना जा रहा है, उपवन मे जिसका थोडा सा विस्तार दिखाई पड रहा है, (उसी) वसन्त के समय का आरम्भ है । तो क्यो न वर्णन किया जाय ।

राजा—तो इसके बाद यहॉ—

साम्य सम्प्रति सेवते विचकिल षाण्मासिकैर्मौक्तिकै-
र्बाह्लीकीरदनच्छदारुणतरै पत्रैरशोकोऽर्चित ।
भृङ्गीलघितकोटिकिशुकमिद किंचिद्धि वृन्तायते
माञ्जिष्ठैर्मुकुलैश्च पाटलितरोरन्येव काचिल्लिपि ॥ २५ ॥

(विचिन्त्य)

सा कापिस्वप्नविधौ दृष्टा च मधुश्च यत् समायात ।
तदिद मम लीढमधोरनुपान तप्तदुग्धेन ॥ २६ ॥

विदूषक—(परिक्रामितकेन) कलमकूरउक्करपडरेसु सिंदुवारमजरीपुजेसु तक्कालकप्पिततघिअमजिट्ठेसु असोअत्थवएसु, निज्जिद-मजिट्ठमसूरमणहरेसु, माहवीकुसुमेसु, दधिसरिच्छेसु णोमालिआमुअलेसु, दरावत्तिददुद्धमुद्धेसु विचइल उपफुल्लपुप्फेसु, णीसेसपसवसपद वज्जीअ उवमाणेसुसज्जदि मे दिट्ठी । (कलमकूरोत्करपाण्डरेषु सिन्दुवारमञ्जरीपुञ्जेषु तत्कालकल्पितघृतमञ्जिष्ठेषु अशोकस्तवकेषु, निर्जितमञ्जिष्ठमसूरमनोहरेषु माधवीकुसुमेषु, दधिसदृशेषु नवमल्लिकामु-

---

इस समय विचकिल पुष्प पके मोतियो से समता कर रहा है । बाह्लीकी के ओष्ठो की भाँति अत्यन्त अरुण पत्तो से अशोक वृक्ष समृद्ध हो गया है । यह पलाश पुष्प, जिसकी सर्वोत्कृष्टता भृङ्गी द्वारा तिरस्कृत की गई, कुछ-कुछ वृन्तायमान हो रहा है मजीठ की तरह लाल कलियो से पाटलिद्रुम की एक अपूर्व शोभा है ॥ २५ ॥

(सोचकर)

स्वप्न मे मैने उस सुन्दरी को देखा और (इधर) वसन्त जो आ गया, यह मधु पीने के बाद गर्म दूध का पीना हो गया ॥ २६ ॥

विदूषक—(घूमकर)

कलम (धान्य विशेष) के भात के ढेर सा श्वेत सिन्दुवार निर्गुण्डी) के मजरी-पुजों, तत्काल तैयार किये गए घृत सा ईषद्रक्त अशोक के गुच्छो, लाल रग को मात करने वाले मसूर से मनोहर वासन्ती के पुष्पो, दधि सी श्वेत नवमल्लिका की कलियो, शख और दूध को भ्रमित और मुग्ध बना देने वाले विचकिल

कुलेषु, दरावर्तितदुग्धमुग्धेषु विचकिलोत्फुल्लपुष्पेषु, नि शेषप्रसवसपद वर्जयित्वा उपमानेषु सज्जति से दृष्टि ।)

राजा—अत्र हि किलोचितोपमानाभिनिवेशिनी ते जिह्वा ।

विदूषक —(अग्रतो निर्दिश्य) रगगण लदा-णञ्चकीण, वाहिआलीमलआणिलतुरगस्स वारित्थाण वारित्थाण वमहमहवारणस्स, सकेदसदण णीसेसकुसुमाण, पीऊसवरिस हिअअस्स पमदुज्जाण । ता इम निव्वणअतो इदो एदु पिअवअस्सो । (रगागण लतानर्तकीना, वाहिरालीमलयानिल तुरङ्गस्य, वारित्थान मन्मथमहावारणस्य, सकेतसदन निश्शेषकुसुमाना,पीयूषवर्ष हृदयस्य प्रमोदोद्यानम् । तस्मादिद निर्वर्णयन्नित एतु प्रियवयस्य ।)

राजा—(पवनस्पर्शमभिनीय)

ये दोलाकेलिकारा मनसि मृगदृशा मान तन्तुच्छिदो ये
सद्य शृङ्गारदीक्षाव्यतिकरगुरवो ये च लोकत्रयेऽपि ।
ते कण्ठे लोलयन्त परभृतवयसा पञ्चम रागराजम्
वान्ति स्वैर समीरा स्मरविजयमहासाक्षिणो दाक्षिणात्या ॥ २७ ॥

(एक प्रकार की मल्लीका) के खिले हुए पुष्पो के विषय मे सम्पूर्ण कुसुमसौन्दर्य एव समृद्धि को त्याग कर केवल उपमानो पर मेरी दृष्टि जाती है ।

राजा—तुम्हारी जिह्वा सचमुच उचित उपमान कहती है ।

विदूषक—लता-रूपिणी नर्तकियो की रगभूमि, मलयानिलरूपी तुरङ्ग की वाहिराली (दौडने का मैदान), मन्मथरूपी मतवाले हाथी का जल-कुण्ड, सभी कुसुमो का सकेत स्थान (परस्पर मिलने का स्थान), हृदय को आनन्द देने वाला (यह) प्रमोदोद्यान है । अत इसे भलीभॉति देखते हुए प्रिय सखा इधर आये ।

राजा—(पवन-स्पर्श का अभिनय कर)

दोला—केलि (झूला-झूलने की क्रीडा) का सम्पादन करने वाला, मृगनयनियो के मनोगत मान-तन्तु को तोडने वाला, तीनो लोक मे प्रेम-दीक्षा के व्यतिकरो (अडचनों) का (निवारक) गुरु, पिको के कण्ठ मे रागराज पचम को गति प्रदान करने वाला एव कामदेव की विजय का महासाक्षी दक्षिणानिल स्वच्छन्द वह राह है ॥२७ ॥

अपि च—

सुरतभरखिन्नपन्नगविलासिनीपानकेलिजर्जरित ।
पुनरपि विरहिश्वासैर्मलयमरुन्मासलो भवति ॥ २८ ॥

विदूषक—एव्व एद

लकातोरणमालिआतरलिणो माणोसह सिघली
सघाणं दविडीण वम्महमहालासैकणट्टाबओ ।
कण्णाडीकुरलालित डवअरो लाटीण लीलागुरू
उम्मत्तो महरट्ठिवड्ढिदमणो चेत्ताणिलो वड्ढदि ॥ २९ ॥

(लकातोरणमालिकातरलिनो मानौषध सिंहली-
सधाना द्रविडीना मन्मथमहालास्यैकनर्त्तापक ।
कर्णाटीकुरलालिताण्डवकरो लाटीना लीलागुरु-
रुन्मत्ती महाराष्ट्रीवर्धितमनाश्चैत्रानिलो वर्धते ॥ २९ ॥)

(संस्कृतमाश्रित्य)

इह हि नववसन्ते मञ्जरीपुञ्जरेणु-
च्छुरणधवलदेहाबद्धहेल चरन्ति ।
तरलमलिसमूहा हारिहुकारिकण्ठा
बहुलपरिमलाली सुन्दर सिन्दुवारम् ॥ ३० ॥

और भी सभोगातिरेक के कारण क्लान्त सर्पिणी के द्वारा पान किये जाने से क्षीण हुआ मलयानिल विरहीजनो के (दीर्घ) सॉसो से पुन हृष्ट-पुष्ट हो रहा है ॥ २८ ॥

विदूषक—लका के बहिर्द्वार पर स्थित मालाओ को हिलाने वाला, सिहली कामिनियों का मानौषध (मानभङ्ग करने के लिए औषध-स्वरूप), द्रविडी युवतियो के कामकृत्य का कर्णाटी कुरलियो को ताण्डव सिखाने वाला, लाटी ललनाओ का लोलागुरु एव महाराष्ट्री महिलाओ के मन को बढ़ाने वाला उन्मत्त चैत्रानिल बढ रहा है ॥ २९ ॥

इस नव वसन्त मे मजरियो के पराग के लेप से धवलदेह, मोहक और हुकारयुक्त कण्ठ वाले अलि-समूह सुन्दर एव अत्यन्त सुगन्धमय सिन्दुवार की ओर जा रहे है ॥ ३० ॥

राजा—(किञ्चिद्विहस्य) सखे । सस्कृतेऽपि प्रगल्भसे ।

विदूषक—तुम वि अह्मारिसजणजोग्गे पाउदमग्गे णिपडिदोसि । ता एहि फलिहसिलामदिर महामतिकारिंद केलिकेलास पेक्खिदु गच्छह्म । (इति परिक्रामत) (त्वमपि अस्मादृशजनयोग्ये प्राकृतमार्गे निपतितोऽसि । तस्मादेहि स्फटिकशिलामदिर महामत्रिकारित केलिकैलास प्रेक्षितु गच्छाव ।

कहि उण कोची-केकारसुन्दरो सद्दो (क्व पुन क्रौञ्ची- केङ्कारसुन्दर. शब्द· ।)

राजा—(समाकर्णयॅस्तदनुसारेणोर्ध्वमवलोक्य)

उपप्राकाराग्र प्रहिणु नयने तर्कय मना-
गनाकाशे कोऽय गलितहरिण शीतकिरण ।
समावद्ध-ग्रासैरुपवन-चकोरैरनुसृत
किरञ्ज्योत्स्नामच्छा नवलवलिपाकप्रणयिनीम् ॥ ३१ ॥

विदूषक—कहि सो (क्व स)

राजा—अयमयम् (सविस्मयमवलोक्य) कथ न दृश्यते, कि पुनरिदम् (वितर्क्य)

राजा—(कुछ हॅसकर) सखे । तुम सस्कृत मे भी निपुण हो ।

विदूषक—तुम भी तो हम ऐसे लोगो के योग्य प्राकृत भाषा के मार्ग पर निपतित हो । तो आओ महामन्त्री के बनवाये स्फटिक-शिलामन्दिर—केलिकैलास को देखने चले । यह क्रौञ्ची-केङ्कार सुन्दर शब्द कहाॅ ।

राजा—(सुनता हुआ और उसके अनुसार ऊपर की ओर देखकर)

तनिक चहारदीवारी के ऊपर दृष्टि डालो । तनिक सोचो यह कौन सा (अपूर्व) चन्द्रमा है, जिसके स्थिति आकाश मे नही है और न जिसके अङ्क में मृग ही है, (चन्द्रिका का पान करने लिए) ग्रास रोक कर उपवन के चकोर जिसकी ओर आकृष्ट है, जो स्वच्छ निर्मल ज्योत्स्ना छिटका रहा है ॥ **३१** ॥

विदूषक—वह कहाॅ है ?

राजा—यह देखो । (विस्मयपूर्वक देखकर) अब क्यो नही दिखाई देता है, तो फिर यह क्या है ? (सोचकर)

यन्मञ्जुशिञ्जितमितो रशना-मणीनां
यच्छ्वाससौरभ-बलादलयो वलन्ते ।
यद्गीतयश्चलदलङ्कृतयश्च लीला-
दोलाविलासतरलस्तदय सुखेन्दु ॥ ३२ ॥

विदूषक—किण्णु क्खु एद । सच्चक तुए जाणिद जदो हिदोलिआ जुअलसिहराइ इदो दीसति । (किन्नु खल्वेतत् ? सत्य त्वया ज्ञात यतो हिन्दोलिकायुगलशिखरे इतो दृश्येते ।)

राजा—(पुनर्दृष्ट्वा) सखे ! अयमसावाश्चर्यश्चन्द्रमा ।

विदूषक—णिरणुक्कोसोक्कण्ठलोअणेहि अह्मेहिं चन्दो खे लक्खीअदि । (निरनुक्रोशोत्कण्ठलोचनैरस्भाभिश्चन्द्र खे लक्ष्यते ।)

राजा—(निपुण निरूप्य) सखे ! दिष्ट्या वर्धसे, स्वप्नदृष्टजनमुखपद्मसवादिनी लावण्यलक्ष्मी ।

विदूषक—आ कीदिसी सा (आ कीदृशी सा)

इस करधनी की मणियो की जो मधुर झनकार हो रही है, श्वास की सुगन्ध के बल से भौंरे जो आकृष्ट होते जा रहे है, जो ये गीत (सुनाई पड रहे हैं), अलङ्कार जो हिल-डुल रहे है, तो अवश्यमेव यह (किसी सुन्दरी का) मुख-चन्द्र है जो झूले के आगे-पीछे आने-जाने से तरल (कभी निकट, कभी दूर) दिखाई देता है ॥ ३२ ॥

विदूषक—यह क्यो कर सम्भव है ? तुमने ठीक-ठीक जान लिया क्योकि हिंडोले के दोनो सिरे यहाँ से दिखाई पड रहे है ।

राजा—(पुन देखकर) सखे ! यह चन्द्रमा तो आश्चर्यजनक है ।

विदूषक—भली भाँति खूब अघाकर उत्कण्ठ लोचनो से हम चन्द्रमा को आकाश मे देखे ।

राजा—(सम्यक् निरूपण कर) सखे ! भाग्य से तुम बढ़ रहे हो यह सौन्दर्यलक्ष्मी स्वप्न मे देखी हुई सुन्दरी के मुख कमल की शोभा से बिलकुल मिलती-जुलती दिखाई पडती है ।

विदूषक—अरे वह कैसी है ?

राजा—यादृशी परिपाकपाण्डुराणा शरकाण्डानाम् ।

विदूषक —ननु करिकलभदन्तच्छेदेसु वि सा अत्थि ज्जेव । **[विचिन्त्य]** चिरविरहिअहिन्दोलिआसद्दत्तणेण जाणिज्जदि अवतिण्णा सा हिन्दोलिआए । ता एहि अग्गतो गच्छम्ह । **[इति परिक्रामत]** (ननु करिकलभदन्तच्छेदेष्वपि साऽस्त्येव । चिरविरहितहिन्दोलिकाशब्दत्वेन ज्ञायतेऽवतीर्णा सा हिन्दोलिकात । तस्मादेहि अग्रतो गच्छाव ।)

एद त केलि-केलास । त्ता उवसप्पदु पिअवअस्सो । **[तथा कुरुत]** (एतत् तत् केलिकैलासम्, तस्मादुपसर्पत प्रियवयस्य ।)

राजा—उद्दण्डहिण्डीरपिण्डपरिपाण्डुरेण महसाऽतिकैलासमेवेदम् ।

विदूषक —पिअ वअस्स इदो दाव आलिखिदफलिहगब्भभवणभित्तिचित्तकम्मम्मि णिवेसीअदु दिट्ठी । एस दाव देवो देवीए सम वासगहिणीवेसी आलिहिदो । एसा वि तबुलकरडवाहिणी णाअवल्ली । एसा वि चामरग्गाहिणी पभजणिआ । एसो वि जलकमडलुओ णाम वामणहो । एसो वि मदुरामक्कटो टप्परकण्णो णाम । (प्रियवयस्येतस्तावद् आलिखितस्फटिकगर्भभवनभित्तिचित्रकर्मणि निवेश्येता दृष्टि । एष तावद्देवो देव्या सम वासकाभिनिवेशी आलिखित । एषापि ताम्बूलकरण्डवाहिनी नागवल्ली, एषापि चामरग्राहिणी प्रभञ्जनिका, एषोऽपि जलकमण्डलुको नाम वामन, एषोऽपि मन्दुरामर्कटष्टप्परकर्णो नाम ।)

राजा—पके हुए सरकण्डो के समान गौर वर्ण ।

विदूषक—युवक-हाथी के दॉतो मे भी यह (गोराई) होती है । हिंडोले का शब्द अब बन्द हो गया, जान पडता है कि वह हिंडोले से उतर गई । तो आओ आगे चले । यह केलिकैलास है, तो प्रिय सखा धीरे-धीरे चले । (वैसा करते हैं)

राजा—घनीभूत समुद्र-फेन से अत्यन्त उज्ज्वल आभा से यह वास्तविक कैलास को मात कर रहा है ।

विदूषक—प्रिय वयस्य ! इधर स्फटिक से बनी हुई अन्तर्गृह की दीवारो पर बनाये गये चित्रो को देखो । आपका चित्र है, जिसमे आप देवी के साथ शयन-गृह मे चित्रित दिखाये गये हैं । यह पानदान लिए रहने वाली नागवल्ली है, यह चॅवर डुलाने वाली प्रभजनिका है । यह जलकमण्डलुक वामन है । यह मन्दुरामर्कट टप्परकर्ण है ।

राजा—सखे ! त्वमेषोऽभिलिखित ।

विदूषक—(सक्रोधम्)णाह जाणिदो आलिहिदु । बम्हणी जाणादि जादिसोह, सा मा भणदि तुम पच्चक्खो कामदेवो त्ति । (नाह ज्ञात आलिखितु, ब्राह्मणी जानाति यादृशोऽहम् । सा मा भणति त्व प्रत्यक्ष कामदेव इति ।)

राजा—अए किमुपवने शुको वदति ।

विदूषक—कि विअ ! (किमिव ?)

राजा—अस्ति भवान् देव, किं पुनर्भृङ्गरिटि ।

विदूषक—को दुज्जणवअणाण कण्ण देइ । (अङ्गुल्या निर्दिशन्) एसा उण सोहा-समुदयेण उवहसन्ती देवी अपुव्वा कावि आलिहिदा । (को दुर्जन-वचनाना कर्ण ददाति । एषा पुन शोभासमुदयेनोपहसन्ती देवीमपूर्वा कापि आलिखिता ।)

राजा—इयमपूर्वेव किं पुनरस्माक न पुनरनङ्गस्य । (सम्यग् विलोक्य) सैवेयमस्म-न्मन सारङ्गशशिलेखा । अहो रूपसपदेतस्या —

चक्षुर्मेचकमम्बुजं विजयते वक्त्रस्य मित्रं शशी
भ्रूसूत्रस्य सनाभिमन्मथधनुर्लावण्यपण्यं वपु ।

राजा—सखे ! तुम यह चित्रित हो ।

विदूषक—(सक्रोध) यह मेरा चित्र नही ज्ञात होता । ब्राह्मणी (मेरी स्त्री) जानती है—जैसा मै हूॅ । वह मुझसे कहती है कि तुम साक्षात् कामदेव हो ।

राजा—अरे क्या उपवन में तोता बोलता है ? (अर्थात् तुम असत्य और निरर्थक बकते हो) ।

विदूषक—क्यो ?

राजा—आप हैं तो भृङ्गरिटि क्या है ?

विदूषक—कौन दुष्टो की बातो पर ध्यान दे ? यह कोई अपूर्व सुन्दरी चित्रित है, जो शोभाधिक्य से देवी को भी लज्जित कर रही है ।

राजा—यह अपूर्व ही है, न इससे हमारा, न कामदेव का कुछ लाभ । (भली भॉति देखकर) यह तो वही है (उसी का चित्र है) जो हमारे मन रूपी मृग की चन्द्र-रेखा है । अहो ! कैसा उत्कृष्ट रूप है । इसके श्यामनेत्र नील कमल को पराजित कर रहे है, चन्द्रमा इसके मुख का और कामदेव का धनुष भौंहो का मित्र है । शरीर रूप का

रेखा कापि रदच्छदे च सुतनोर्गात्रे च तत् कामिनी-
मेना वर्णयिता स्मरो यदि भवेद्वैदग्ध्यमभ्यस्यति ॥ ३३ ॥

विदूषक—(स्वगतम्) का उण एसा देवी-परिवारे। (विचिन्त्य) भोदु, कोदूहलेण देवी ओल्लगद णिअमादुलभावुअ मिअकबम्माण वारवारेण विरइदमहिलावेस कारेदि। त च मुणिअ अण्णाअपरमत्थेहि चित्त-करेहि तधा ज्जेव चित्ते आलिहिद त्ति तक्केमि। ता ण विल फोलइस्स। भमदु दाव पिअवअस्सो। (का पुनरषा देवी-परिवारे। भवतु, कौतूहलेन देवी ओल्लागत निजमातुलभावुक मृगाङ्कवर्माण वारवार विरचितमहिलावेश कारयति। ताञ्च ज्ञात्वाऽज्ञातपरमार्थैश्चित्रकरैस्तथैव चित्रे आलिखितेति तर्कयामि। तस्मान्न विल स्फोटयिष्यामि। भ्रमतु तावत् प्रिय-वस्य।)

राजा—यथाह प्रियवयस्य—

कन्येति सूचयति वेष-विशेष एव
यन्नीलचोलकवती लिखिताऽत्र चित्रे।
पाणिग्रहात् प्रभृति तु प्रमदाजनस्य
नीवीनिवेशसुभग परिधानमार्ग ॥ ३४ ॥

बाजार है। सुन्दरी के ओठ पर अपूर्व रेखा है। कामदेव यदि नैपुण्य का कुछ दिन अभ्यास करे तो कदाचित् इन सुन्दरी का वर्णन करने मे समर्थ हो सके ॥ ३३ ॥

विदूषक—(अपने मन में) देवी के परिवार मे यह कौन हो सकती है ? अच्छा, देवी ओल्लागत अपने मामा के लड़के मृगाकवर्मा को बार-बार स्त्री का वेष धारण कराती रहती है। उसी को स्त्री समझ कर, सच बात को बिना जाने चित्रकारों ने उसका उसी रूप से चित्रण कर दिया—मेरी समझ मे ऐसा आता है। तो मैं रहस्योद्घाटन नही करूँगा। प्रिय सखा इसी प्रकार भ्रम मे पडा रहे। (स्पष्ट कहता है) वेष-भूषा से यह कन्या मालूम पडती है।

राजा—जैसा प्रिय सखा कह रहे है। इसका विशेष वेष ही बता रहा है कि यह कन्या है क्योकि चित्र मे नीले वर्ण की चोली पहिने हुए चित्रित की गई है। पाणि-ग्रहण के बाद से तो स्त्रियो के पहिनने का ढग नीवी की सजावट से सुन्दर हो जाता है—वे नीवी के बन्धन पर विशेष ध्यान रखने लगती हैं ॥ ३४ ॥

(विमृश्य)

अहो वपु श्रीर्लिखितुर्जनस्य स्वाकारसवादि यदत्र चित्रम् ।
इद च पौरन्ध्रमवैमि कर्म रेखानिवेशोऽत्र यदेकवार ॥ ३५ ॥

(सम्यग् विभाव्य) तदिय मकरध्वजवैजयन्ती काऽपि स्वयमेव एव लिखितवतीति निर्णीयते ।

विदूषक —सच्च एद, जदो गरिट्ठजणगोट्ठीसु इत्थ करिआ सुणीअदि । जादिसोचित्तअरो तादिसी चित्तअम्मरुअसोहा, जादिसो कई तादिसी कवबन्धछाअ त्ति । (सत्यमेतत्, यतो गरिष्ठजनगोष्ठीष्वित्थ कारिका श्रूयते । यादृशश्चित्रकरस्तादृशी चित्रकर्मरूपशोभा, यादृश कविस्तादृशी काव्य-बन्धच्छायेति ।)

राजा—युज्यते, आकृतिमनुगृह्णन्ति गुणा । अपि च सखे । चारायण ।

क्रमपरिणतरेखामासलैरङ्गभागै-
र्लघुरपि लिखितेय लक्ष्यते पूर्णमूर्ति ।
अयमपि सुकुमार. सात्त्विकाना निवेश-
श्चतुरमसृणमुग्ध भावमाविष्करोति ॥ ३६ ॥

(सोचकर)

अहो । कैसा शरीर-सौन्दर्य है । यह चित्र तो ऐसा है कि मानो चित्रकार ने अपना ही रूप चित्रित कर दिया है । मैं समझता हूँ— यह काम किसी सुगृहिणी का है । उसका इतना अधिक अभ्यास है कि रेखाओ को केवल एक बार ही खीच देने से काम पूरा हो गया—दुबारा उसे ठीक करने के लिए रेखाये नही खीचनी पडी ॥ ३५ ॥

(भलीभाँति सोचकर) यह तो कोई कामदेव की पताका अर्थात् परम सुन्दरी है, जिसने स्वय ही अपने को चित्रित किया है—इसी निर्णय पर पहुँचता हूँ ।

विदूषक—यह बात बिलकुल सच है । विद्वानो की गोष्ठियो मे ऐसा सुना जाता है कि जैसा चित्रकार वैसा ही उसका चित्र, जैसा कवि वैसा ही उसका काव्य ।

राजा—ठीक है, गुण निस्सन्देह आकृति के अनुरूप होते है । और सखे चारायण । सभी अग क्रम से परिणत रेखाओ से मासल हैं, जिससे लघुरूप मे चित्रित भी पूर्ण मूर्ति दिखाई पडती है । सात्त्विक भावो के सुन्दर सनिवेश से मनोज्ञ एव स्निग्ध मुग्धभाव स्पष्ट प्रकट हो रहा है ॥ ३६ ॥

विदूषक—इदो देवी मज्जनवदिअरे घरे सपरिवारा आलिहिदा। (इतो देवी मज्जनव्यतिकरे गृहे सपरिवारालिखिता।)

राजा—इदमेव रूपरत्न सम्भावयावस्तावत्।

विदूषक—इहावि सा अत्थि ज्जेव्व। (इहाऽपि साऽस्त्येव।)

राजा—(आत्मगतम्) एक चक्षुरनेकत्र सा। (विदूषक प्रति) क्वासौ ?

विदूषक—इअमिअ (इयमियम्)

राजा—(विलोक्य सोत्कण्ठम्)

येनोत्पलानि च शशी च मृणालिकाश्च
रम्भादलञ्च कमलानि च निर्मितानि।
नून स एव मृगशावदृशोऽपि वेधा
सवित्क्रमो यदयमेकतया चकास्ति॥ ३७॥

विदूषक—इधर देखिये, स्नानागार मे देवी परिजन—समेत चित्रित की गई हैं।

राजा—हम दोनो पहले इसी रूप-रत्न (जिसका निर्देश पहले किया जा चुका है, जो देवी के सौन्दर्य को भी मात कर रहा है) पर विचार करे।

विदूषक—यहाँ भी वह है।

राजा—(अपने मन में) मेरी अकेली दृष्टि, और वह अनेक जगह है। (विदूषक से) कहाँ है वह ?

विदूषक—यह, यह।

राजा—देखकर उत्कण्ठापूर्वक।

जिस विधाता ने नीलोत्पल, चन्द्रमा, मृणालिका, कदली-पत्र और कमलो की रचना की है, उसी ने इस मृगशावनयनी का भी निर्माण किया है तभी तो उस विधाता का सभी वस्तुओ के रचने का सारा अनुभव एकत्रित रूप से यहाँ इस रमणी मे झलक रहा है॥ ३७॥

विदूषक—(स्तम्भे शालभञ्जिका विलोक्य) इअ पि सा ज्जेव (इयमपि सैव ।)

राजा—इयमपि साऽस्मद्विलोचनचकोरचन्द्रिका । (विलोक्य सोत्कण्ठम्)

सा दुग्धमुग्धमधुरच्छविरङ्गयष्टि-
स्ते लोचने तरुणकैतकपत्रदीर्घे ।
कम्बोर्विडम्बनकरश्च स एव कण्ठ
सैवेयमिन्दुवदना मदनायुध वा ॥ ३८ ॥

(सवितर्कम्)

न स्वप्नानुभवस्य कश्चिदपरः सब्रह्मचारी मम
स्यात्सकल्पकृतश्चकास्ति मनस कस्यैव रेखाक्रम ।
तन्मन्ये क्वचिदस्त्यसौ कुवलयच्छायामुषा चक्षुषा
यत्सादृश्यपरिग्रहादिह दृशौ दीर्घे समावासिते ॥ ३९ ॥

विदूषक—(खम्भे पर मूर्ति देखकर) यह भी ठीक-ठीक वही है

राजा—यह भी नहीं, हमारे नेत्ररूपी चकोरो को चन्द्रिका है । (देखकर उत्कण्ठा-पूर्वक) ।

दूध से भी अधिक स्निग्ध शोभा वाला वही छरहरा अङ्ग है, नवीन केतकीपत्र की भॉति दीर्घ वही नेत्र है, शख को लज्जित करने वाला वही कण्ठ है, यह वही चन्द्रमुखी या मदन का अस्त्र है (जिसे देखने से कामपीडा होती है ।) ॥ ३८ ॥

(सवितर्क)

स्वप्न मे मैंने जो अनुभव किया है, उसके समान और कोई अनुभव नही हो सकता है । किसके मन के सकल्पो से बनाया हुआ यह रेखाओ का क्रम शोभित हो सकता है । कुवलयो की कान्ति को चुराने वाले नेत्रो के द्वारा जिसके सादृश्य का ग्रहण करके ये ऑखे दीर्घ एव उसके सदृश हो गइ है, मै तो मानता हूॅ कि वह है कही पर अवश्य ॥३९ ॥

(विभाव्य) भवतु, पुनर्योग्यस्थानविन्यासमासादयतु स्वप्नहार, सचरतु शालभञ्चिकारूपाया अप्येतस्या कण्ठमूलम्, अलकरोतु बालविचकिलवल्ली कोरकनिकुरम्ब इति । (तथा करोतु)

विदूषक—इदो वि चित्तगदा स ज्जेव । (सोल्लासम्) मिअकप्पतिबिबमालाहि विप्पलब्दह्मि । अध उण पच्चक्खो पुण्णिमा चन्दो । (इतोऽपि चित्रगता सैव । भो मृगाङ्कप्रतिबिम्बमालाभिर्विप्रलब्धोऽस्मि । अय पुन प्रत्यक्ष पूर्णिमाचन्द्र ।)

राजा—क्व पुनरसावस्मन्नयनामृतवर्ति ।

विदूषक—इयमियम् । या हरिणकखण्डपडरेहि तिरिच्छेहि दिट्ठिच्छडाकडक्खेहि विप्फुरेदि दिम्मुहाइ, पाणिसचलणेण विच्छुरेदि ककेलिपल्लवाइ, चरणचालणेण विरएदि पकेरुहसकासमाउलाइ भभरजालाइ । (इयमियम् । या हरिणाङ्कखण्डपाण्डरैस्तिर्यग्भिर्दृष्टिच्छटा-कटाक्षैर्विस्फुरयति दिङ्मुखानि, पाणिसचलनेन विच्छुरयति कङ्केलिपल्लवानि, चरणचालनेन विरचयति पङ्केरुहशङ्कासमाकुलानि भ्रमर-जालानि ।)

राजा—भवदाशसिता सत्यस्वप्नतैव सवृत्ता । (विलोक्य) सैवेय सञ्जीवनौषधिर्मकरध्वजस्य विशल्यकरणौषधिर्मे हृदयोद्भेदस्य ।

(सोच-समझकर) अच्छा तो यह स्वप्नहार उचित स्थान पर रख दिया जाय । मूर्तिरूपा इसके कण्ठभाग को, विचकिल नवलता को कलीवृन्द की भॉति, अलकृत करे ।

विदूषक—इधर भी वही चित्रित है । अरे चन्द्रमण्डल द्वारा मै धोखे मे गया, वास्तव मे यह प्रत्यक्ष पूर्णिमा का चन्द्र है ।

राजा—कहॉ वह हमारे नेत्रो की अमृतवर्तिका ।

विदूषक—यह, यह । जो चन्द्रखण्ड की भॉति श्वेत एव निर्मल तिरछे नेत्र के कटाक्षो से दिशाओको चमत्कृत कर रही है, पाणि-सचलन से अशोक के पल्लवो को विच्छुरित कर रही है तथा जिसके चरण-सचालन से भौरो को कमल की शङ्का हो रही है ।

राजा—आप ने जैसा पहले कहा था, वास्तव मे स्वप्न सत्य हो गया । (देखकर) यह वही कामदेव की सजीवनौषधि है, मेरे हृदय के घाव विशल्य (कष्टरहित) करने वाली ओषधि है ।

(विभाव्य)

मात्रानर्तितमण्डनभ्रु वदन किंचित्प्रगल्भे दृशौ
स्तोकोद्भेदनिवेशितस्तनमुरो मध्य दरिद्राति च ।
अस्या यज्जघन घन च कलया प्रत्यङ्गमेणीदृश
सत्यकार इव स्मरैकसुहृदा तद् यौवनेनार्पित ॥ ४० ॥

विदूषक—उल्लसिदभूलदेण उदगुलिकरकमलेण च अमुणा सट्ठाणेण कि पि कुणतो एसा चिट्ठदि । (उल्लसितभ्रूलतेन उदङ्गुलीकरकमलेन चामुना सस्थानेन किमपि कुर्वत्येषा तिष्ठति ।)

राजा— यद् भ्रूलते तरलिते यदुदङ्गुलीक
पाणि पुरो यदपि चक्षुरलग्नलक्ष्यम् ।
उन्मुद्रिताधरदल च यदास्यमस्या-
स्तत्कार्यकर्मणि निषक्तमवैमि चेत ॥ ४१ ॥

विदूषक—एव एद जदो पुरदो इमाए अद्धलिहिदा अक्खरावली चिट्ठदि । (एवमेतत् यत पुरतोऽस्या अर्धलिखिता अक्षरावली तिष्ठति ।)

(सोचकर)

उसके नेत्र कुछ धृष्ट है एव वक्षस्थल मे स्तनो का थोडा-थोडा उभार हुआ है । उसका कटिभाग क्षीण है, नितम्बस्थल स्थूल है । उस मृग नयनी के सुन्दर शरीर को मानो कामदेव के अनन्यमित्र यौवन ने सत्यङ्कार कार्य पूर्ण होने तक के लिए जमा राशि के रूप मे अर्पित किया ॥ ४० ॥

विदूषक—इसकी भौहे उल्लसित है, गतिशील कर-कमलो की उगुलियाँ ऊपर उठी है । ऐसी स्थिति मे यह कुछ करती हुई मालूम होती है ।

राजा—मै समझता हूँ कि इसका मन किसी काम के करने मे लीन है क्योकि इसकी भौहे चञ्चल हैं, हाथ की उगुलियाँ ऊपर की ओर उठी है, नेत्र किसी लक्ष्य पर लगा नही है (अर्थात् सामने की ओर न देखकर नीचे की ओर देख रही है) अधर-दल खिला हुआ है ॥ ४१ ॥

विदूषक—ऐसा ही है, क्योकि इसके सामने आधा लिखा वाक्य है ।

राजा—वाचयति—

विधत्ते सोल्लेख कतरदिह नाङ्ग तरुणिमा ।

(विमृश्य) अहो ! गाहन्यम् । अहो ! शिखरिणीपाद । अहो ! सूक्तियुक्ता वाच । अहो ! हृद्या वैदर्भी रीति । अहो ! माधुर्य पर्याप्तम् । अहो निष्प्रमाद प्रसाद ।

विदूषक—ता उचिदकाले अभिसरीअदु सुन्दरी पिज्जदु णअणजलिसपुडेहि पुण्णिमाचदो, पूरिज्जतु कण्णकुहराइ सुहासिदरसायणेहि णच्चावीअदु रहसुत्थभिदहत्थो मअणपट्टावओ । (तस्मादुचितकालेऽभिस्त्रियता सुन्दरी । पीयता नयनाञ्जलिसम्पुटै पूर्णिमाचन्द्र । पूर्यन्ता कर्णकुहराणि सुभाषितरसायनै । नर्त्यता रहस्योत्तभितहस्तो मदननर्तापक ।)

राजा—(पदान्तरे स्थित्वा, चतुर्दिशमवलोक्य) अहो ! दयिताद्वैत वर्तते । तथाहि—

सुतनुरियमितस्ततश्च चित्रे गुणगुरुरत्न च शालभञ्जिकेयम् ।
स्थितमिव सुतनोर्वपुश्चतुर्धा स्मरशरतापरुच विभज्य सोढुम् ॥ ४२ ॥

राजा—बॉचता है—

तारुण्य किस अङ्ग को सुन्दर नही बना देता है ।

(सोचकर) अहो ! कैसी गम्भीरता है, कैसा सुन्दर शिखरिणी का चरण है, कैसी सूक्ति सम्पन्न शब्दावली है । अहो ! कितनी मनोहर वैदर्भी रीति है । अहो ! पर्याप्त माधुर्य है । अहो ! कैसा विशुद्ध प्रसाद गुण है ।

विदूषक—तो उचित अवसर पर सुन्दरी के निकट चलिये । नेत्रो से पूर्णिमा चन्द्र का पान कीजिए । कर्णकुहरो को सुभाषित रसायानो से पूर्ण कीजिए । रहस्य से ऊपर उठे हाथो वाले नर्तकशिक्षक मदन को नचाइये ।

राजा—(एक पद की दूरी पर खडा होकर, चारो और देखकर) दो युगल सुन्दरियॉ उपस्थित है । इधर यह सुन्दरी और उधर चित्र मे गुणगरिमा पूर्ण यह मूर्ति, मानो कामदेव के बाण-जन्य सताप को अलग-अलग बाट कर सहने के लिए इस सुन्दरी का शरीर चार प्रकार मे हो गया है ॥ ४२ ॥

तदेहि, समुपसृत्य सुभाषितेन श्रवणे कृतार्थयाव । न खलु व्यापारमन्तरेण करकलितापि शुक्तिर्विमुञ्चति मौक्तिकानि इति ।

(उभौ परिक्रामत)

विदूषक—(पुरत सरन् भीत्या आस्फोट नाटयित्वा) भो ओसर ओसर, भूदतर क्खु किं पि एद, ता इमिणा पडिकुविददेवीभूलदाभगकुडिलेण दडकट्ठेण तडित् ताडयिस्स ता पेक्ख मे पुरिस आरम् । (भो अपसरापसर भूतान्तर खलु किमप्येतत् । तस्मादनेन परिकुपितदेवीभ्रूलताभङ्गकुटिलेन दण्डकाष्ठेन तडिति ताडयिष्यामि तत् पश्य मे पुरुषकारम् ।)

राजा—तर्हि मालतीमुकुलैर्दुकूल कल्पयिष्यसि ।

विदूषक—ता कि णु क्खु एद (तस्मात् किन्नु खल्वेतत्)

राजा—सखे ! तर्कयामि स्फटिकभित्ते परत स्थितया स्वच्छभावादित सुव्यक्तयाऽनया भवितव्यम् । तदेहि, केलिकैलासपश्चिमेनैना सम्भावयाम (तथा कुरुत)

तो आओ, निकट चलकर मधुर सूक्तियो से कर्णो को कृतार्थ करे । बिना उद्योग के हस्तगत सीप भी मोतियो को बाहर नही निकालती ।

(दोनो घूमते है)

विदूषक—आगे बढता हुआ भय से हटो, हटो । यह तो कोई भूत है, तो मै क्रुद्ध हुई देवी की भौहो के समान टेढे इस डण्डे से इसे 'तड' से पीटूँगा । मेरा पौरुष देखो ।

राजा—उस अवसर पर मालती की कलियो से वस्त्र बनाओगे—मालती कुञ्ज मे घुसकर छिप जाओगे ।

विदूषक—तो फिर वह क्या है ?

राजा—सखे ! मै सोचता हूँ कि स्फटिक की दीवाल के दूसरी ओर खडी सुन्दरी दीवार के स्वच्छ होने से इधर सुव्यक्त हो रही है । तो आओ केलिकैलास के पीछे से इसका परिचय प्राप्त करे । (वैसा करते है)

विदूषक.—तुरिदतरमवक्कन्ता सा, जदो असमजसा इदो देवीवासभवणाहिमुही पअपती दीसइ । (त्वरिततरमपक्रान्ता सा, यतोऽसमञ्जता इतो देवीवासभवनाभिमुखी पदपक्तिर्दृश्यते ।)

राजा—हृदय । स्वस्ति भवते । एनामनुवर्तता स्मर्तव्या वयम् ।

(नेपथ्ये) जय जय त्रिलिङ्गाधिपते । सुखाय मध्यन्दिन भवतु भवत । सम्प्रति हि—

धत्ते पद्मलता दलेप्सुरुपरि स्व कर्णताल द्विप
शष्यस्तम्बरसान्नियच्छति शिखी मध्येशिखण्ड शिर ।
मिथ्यालीढमृणालकोटिरभसाद् दष्ट्राङ्कुरं शूकरो
मध्याह्ने महिषश्च वाच्छति निजच्छाय महाकर्दमम् ।। ४३ ।।

अपि च—

विदूषक—वह अभी अभी भाग गई क्योकि देवी के वास-भवन की ओर अस्पष्ट पद-चिह्न दिखाई देते है ।

राजा—मित्र । आपका कल्याण हो । इस सुन्दरी का अनुगमन करते हमे याद रखियेगा ।

(नेपथ्य में) त्रिलिङ्गाधिपति की जय हो । दोपहर की वेला आप के लिए सुखकर हो । इस समय—

पद्मलता के दलने का इच्छुक हाथी दोपहर की गर्मी से व्याकुल हो अपने ऊपर अपने बडे-बडे कानो को चला रहा है, घासो के रसास्वादन को त्यागकर मयूर अपने सिर को अपने पखे के अन्दर छिपा रहा है । सुअर ने कमल की जड को खोद-खोद कर खाना बन्द कर दिया है और भैसा अपने शरीर पर लेप करने के लिए गहरे कीचड की इच्छा कर रहा है ॥ ४३ ॥

और भी—

विशन्तीना स्नातु जघनविनिवेशैर्मृगदृशा
यदम्भ सप्राप्त प्रमदवनवाप्यास्तटभुवम् ।
गभीरे तन्नाभीकुहरपरिणाहाध्वनि सरत्
कुहूङ्कारस्फार रचयति च नाद भ्रमति च ॥ ४४ ॥

विदूषक—भो, देवीए भवण गदुअ मज्झणसज्ञ णिअत्तिअ तिस्सा पउत्ति लक्खीअदु । (भो , देव्या भवन गत्वा मध्याह्नसन्ध्या निर्वर्त्य तस्या प्रवृत्तिर्लक्ष्यताम् ।)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

स्नान के निमित्त प्रवेश करती हुई मृगनयनियो के जघन प्रदेश से प्रमद-वन की बावली का जल पहले तो धक्के से तट-भूमि की ओर चला गया । तदनन्तर उन मृगनयनियो की गम्भीरनाभि मे वेग से घुसता हुआ उच्च स्वरित 'कुहू' ध्वनि करता और चक्कर काटने लगता है ॥४४ ॥

विदूषक—भो , महारानी के भवन मे चलकर मध्याह्नकालीन सन्ध्योपासना कर उस सुन्दरी का वृत्तान्त जाने ।

प्रथम अङ्क समाप्त

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(तत प्रविशत सम्मुखीने चेट्यौ) ।

एका—(प्रविक्रम्य इतरामञ्चले विधार्य) हला तरगिए ! हिअअ-पदिट्ठिदराअक्ख-राविअ लक्खीअसि । जदो समुहागद पि म अणालक्यि थिदासि । (हला तरगिके, हृदयप्रतिष्ठितराजाक्षरेव लक्ष्यसे । यत सम्मुखगतामपि मामनालप्य स्थितासि ।)

द्वितीया—(समालिङ्ग्य) सहि कुरगिए ! मा कुप्प, गौरी मे कुप्पदु, जइ त मए दिट्ठासि अण्णहिअअत्तणेण । (सखि कुरगिके ! मा कुप्य, गौरी मे कुप्यतु यदि त्व मया दृष्टासि अन्यहृदयत्वेन ।)

कुरङ्गिका—सहि ! कीदिस अण्णहिअअत्तण । (सखि ! कीदृशमन्यहृदयत्वम् ?)

(इसके बाद दो दासियाँ एक दूसरे के आमने-सामने प्रवेश करती हैं)

एक—(घूमकर दूसरी का अञ्चल पकडकर)

हे तरगिके ! मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय मे राजा की मूर्ति प्रतिष्ठित है, जिसके ध्यान मे तुम लीन हो । इसीलिए यद्यपि मै सामने आई, तथापि तुमने बातचीत नही की ।

दूसरी—सखि कुरगिके ? नाराज न हो ! मुझ पर देवी जी कोप करे यदि मैंने तुमको अन्यमनस्क भाव से देखा हो ।

कुरङ्गिका—सखि अन्यमनस्कता कैसी होती है ?

तरङ्गिका—ताहिस, जादिसेण तुह वि पुरदो मतअतीए वि उक्कपदि विअ मे हिअअ। (तादृश, यादृशेन तवापि पुरतो मन्त्रयमाणाया अपि उत्कम्पत इव मे हृदयम्)

कुर०—हिअअणिव्विसेसम्मि जणे आसकती कोदूहल म पुच्छावेदि। (हृदयनिर्विशेषेऽपि जने आशङ्कमाना कौतूहल मा प्रच्छयति।)

तर०—जहा तहा भोदु ण पच्छादइस्स, णहि सिणेहो जुत्ताजुत्तमनु रधेदि। (यथा तथा भवतु न प्रच्छादयिष्यामि। न हि स्नेहो युक्तायुक्तमनुरुणद्धि।)

कुर०—अदो ज्जेव्व मे आसघो कध विअ सहकारलट्ठीए कलकण्ठी कुठिदप्पणआ होदि। (अत एव मे आशङ्का कथमिव सहकारयष्ट्या कलकण्ठी कुठितप्रणया भवति।)

तर०—एव्व तथा वि भणीअदि सुदमतसरक्खण क्खु कज्जसिद्धिए कारण। (एव तथापि भण्यसे, श्रुतमत्रसरक्षण खलु कार्यसिद्धे कारणम्)

कुर०—मा एव्व भण, कध विअ जीअतादो किकलासादो सिरसुवण्ण पावीअदि। (मैव भण, कथमिव जीवत कृकलासाच्छिर सुवर्ण प्राप्यते।)

तरङ्गिका—वैसी, जैसे तुम्हारे भी सामने गुप्त बातो को कहते हुए मेरा हृदय कॉपता सा है।

कुरङ्गिका—अभिन्न हृदय पर भी शङ्का करती हुई मुझको कौतूहल पूछने के लिए प्रेरित करता है।

तरङ्गिका—जैसा भी हो, मै नही छिपाऊगी। स्नेह उचित और अनुचित का लिहाज नही करता।

कुरङ्गिका—मेरी यह आशङ्का है—आम्र की डाली से कोयल का प्रणय मन्द कैसे हो सकता है ?

तरङ्गिका—अच्छा, मै तुमसे कहती हूँ—सुनी बातो को गुप्त रखने से ही कार्य की सिद्धि होती हैं।

कुरङ्गिका—ऐसा मत कहो—गिरगिट के जीते जी उसका सुनहरा सिर कैसे कोई पा सकता है।

तर०—सुणादु प्पिअसही । अत्थि एत्थ कुतलेसु चडमहासेणो णाम राआ, तस्स णिअराज्जपरिब्भट्टस्स इह आगदस्स दुहिआ कुवलयमाला णाम णम्मदामज्जणुत्तिण्णा देवदिट्टा हिअअ च से पविट्टा । ता च पडिच्छिदवदी देवी णिअमादुलभावुकस्स मिअकवम्मस्स किदे । तण्णि-मित्त अ विवाहोअरणाइ सज्जीकादु पेसिदह्मि । तग्गदमणए मए ण तुम पेक्खिदासि । (शृणोतु प्रियमाली अस्त्यत्र कुन्तलेषु चण्डमहासेनो नाम राजा तस्य निजराज्यपरिभ्रष्टस्य इहागतस्य दुहिता कुवलयमाला नाम नर्मदामज्जनोत्तीर्णा देवदृष्टा हृदयञ्चास्य प्रविष्टा । ताञ्च प्रतीष्टवती, देवी निजमातुलभावुकस्य मृगाङ्कवर्मण कृते । तन्निमित्तञ्च विवाहोपकरणानि सज्जीकर्तु प्रेषितास्मि । तद्गतमनसा मया त्व न लक्षितासि ।)

कुर०—अहो देवीए विदद्धत्तण एव्व किल किदे सवत्तीलाभो परि हृदो भोदि, चदवम्ममादुलस्स सिणेहो वि दसिदो भोदि । (अहो देव्या विदग्धत्व, एव किल कृते सपत्नीलाभ परिहृतो भवति, चन्द्रवर्मणो मातु स्नेहोऽपि दर्शितो भवति ।)

तर०—तुम उण कहि पत्थिदासि । (त्व पुन क्व प्रस्थितासि ।)

कुर०—अज्जदेवीए अलिअविवाहेण विडविदु आणत्तो अज्जचाराअणो । तद्विवाहसामग्गी सपादेदु उण अह पेसिदाम्हि । ता एहि दुवे वि अहो जधासमीहि—

तरङ्गिका—प्रियसखि ! सुनो—कुन्तल देश मे चण्डमहासेन नामक राजा है । वह राज्य-परिभ्रष्ट यहाँ आया है । उसकी कन्या कुवलयमाला नर्मदा से स्नान करके निकली ही थी कि महाराज ने उसे देखा और वह उनके हृदय मे समायी हुई है । महारानी जी उस (कुवलयमाला) को अपने मामा के पुत्र मृगाङ्कवर्मा के लिए चाहती है । उसी के निमित्त विवाह-सामग्री तैयार करने के लिए मै भेजी गई हूँ । उनके कार्य मे मेरा मन लगा था, इसी से तुम्हारी और ध्यान नही गया ।

कुरङ्गिका—महारानी का भी कैसा चातुर्य है । ऐसा करने से एक सौत के आने की आशका भी दूर हो जायेगी और उधर चन्द्रवर्मा की माता का स्नेह भी दर्शित होगा ।

तरङ्गिका—तुम कहाँ जा रही हो ?

कुरङ्गिका—आज महारानी जी मिथ्या-विवाह से आर्य-चारायण की विडम्बना करना चहाती हैं । उसी विवाह की सामग्री तैयार करने के लिए मैं भेजी गई हूँ । तो आवो अपने-अपने काम को पूरा करने के लिए दोनो चले ।

अकज्जसिद्धीए गच्छह्म । **[इति निष्क्रान्ते]** (अद्य देव्या अलीकविवाहेन विटम्बयितुमाज्ञप्त आर्यचारायण, तद्विवाहसामग्री सपादियितु पुनरह प्रेषितास्मि । तस्मादेहि द्वे अपि आवा यथासमीहितकार्यसिद्धये गच्छाव ।)

इति प्रवेशक

(तत प्रविशति सोत्कण्ठो राजा विशेषविभूषितो विदूषकश्च)

राजा—(मदनाकूतमभिनीय)

तस्मिन् पञ्चशरे स्मरे भगवता भर्गेण भस्मीकृते
जानाम्यक्षयसायक कमलभू कामान्तर निर्ममे ।
यस्यामीभिरिलतस्ततश्च विशिखैरापुङ्खमग्नात्मभि-
र्जात मे विदलत्कदम्बमुकुलस्पष्टोपमान वपु ॥ १ ॥

(सन्तापमभिनीय)

विलीयेन्दु साक्षादमृतरसवापी यदि भवेत्
कलङ्कस्तत्रत्यो यदि च विकचेन्दीवरवनम् ।
तत स्नानक्रीडाजनितजडभावैरवयवै
कदाचिन्मुञ्चेय मदन-शिखिपीडापरिभवम् ॥ २ ॥

इति प्रवेशक

(उत्कण्ठित राजा और विशेष सुसज्जित विदूषक रगमञ्च पर आते है)

राजा—(कामावेश को प्रकट करता हुआ)

मालूम होता है—पाँच बाण वाले कामदेव को जब शकर भगवान् ने भस्म कर दिया तो ब्रह्मा ने एक दूसरे ही अक्षय बाणो वाले कामदेव की रचना की है, जिसके बाण हर तरफ से मेरे शरीर मे पुङ्खभाग तक गहरे घुस गये है और मेरा शरीर कदम्ब की खिलती हुई कलियो के साम्य को प्राप्त हो गया ॥ १ ॥

(सन्ताप का अभिनय कर)

यदि चन्द्रमा गल कर साक्षात् अमृत रस की बावली हो जाय और उसका कलङ्क (चिह्न) कमल-वन के रूप मे विकसित हो जाय और उसमे स्नान करने से मेरे अङ्ग शीतल हो, तब कदाचित् कामदेव के बाणी की पीडा दूर हो सके ॥ २ ॥

अपि च, सखे चारायण ।

मन्द्रादर कुसुमपत्रिषु पेलवेषु
नून बिभर्ति मदन पवनास्त्रमद्य ।
द्वारप्रकाण्डसरला कथमन्यथाऽमी
श्वासा प्रनर्तितदुकूलदशा सरन्ति ॥ ३ ॥

तत् फुल्लातिमुक्कलतालाञ्छनस्य तुषारपुञ्जनाम्न कदलीगृहस्य मार्गमादिश ।

विदूषक —(सञ्ज्ञया निर्दिशति)

राजा—कथमक्षुण्णा मौनमुद्रा ?

विदूषक —(भूमावक्षराणि लिखति)

राजा—अष्टादशलिपिविदो वय न त्वदीयाक्षरग्रहणे विचक्षणा ।

विदूषक —(दन्तैर्जिह्वामवष्टभ्य) भो ! दिक्खिद क्खु अह मउणे चिट्ठामि । (दीक्षित खल्वह मौने तिष्ठामि ।)

और भी, मित्र चारायण ।

मालूम होता है कामदेव अब कोमल कुसुम-शरो का तिरस्कार कर पवन का अस्त्र धारण करने लगा है । इसीलिए मेरी सॉसे नासा से स्कन्धपर्यन्त इतनी सीधी लम्बी निकल रही है, जिनसे शरीर के वस्त्र चञ्चल हो रहे है ॥ ३ ॥

फूली हुई माधवीलता जिसका पहिचान का चिह्न है, तुषारपुञ्ज नामक कदलीगृह का मार्ग बताओ ।

विदूषक—(सङ्केत से बताता है)

राजा—कैसी यह मौनमुद्रा है जो टूट नही रही है ?

विदूषक—(भूमि पर अक्षर लिखता है)

राजा—हम अठारह लिपियॉ जानते हैं परन्तु तुम्हारे अक्षरो को पढने मे असमर्थ है ।

विदूषक—(दॉतो तले जीभ दबाकर) अरे मैं दीक्षा ग्रहण कर चुका हूँ, अत मौन धारण किये हूँ ।

राजा—किमिति ?

विदूषक —देवी म सपद परिणाइस्सदि । (देवी मा साम्प्रत परिणाययिष्यति ।)

राजा—तामेव चिरन्तनब्राह्मणीम् ।

विदूषक —णहि णहि । (नहि नहि)

राजा—अन्या का ?

विदूषक —ओअल्लागदस्स मिअकवम्मस्स पुरोहिदस्स दुहिदा क्खु एसा । (ओयल्लागतस्य मृगाङ्कवर्मण पुरोहितस्य दुहिता खल्वेषा ।)

राजा—किनामधेय पुरोहित ?

विदूषक —सस-सिंगो, घरिणी इमस्स मिअतिह्णिआ, भविस्सघरिणी अ मे तद्दु-हिदा अबरमाला णम । (शश-शृङ्ग, गृहिण्यस्य मृगतृष्णिका भविष्यद्गृहिणी च मे तद्दुहिता अम्बरमाला नाम ।)

राजा—(स्वगतम्) मन्ये देवी उपहसितुमेनमिच्छति । तज्जोषमास्महे । वर्धता परि-हास-लता ।

राजा—यह क्यो ?

विदूषक—आज महारानी जी मेरा विवाह करायेगी ।

राजा—उसी पुरानी ब्राह्मणी से ।

विदूषक—नही, नही ।

राजा—फिर वह कौन है ?

विदूषक—वह ओयल्ला से आये हुए मृगाङ्कवर्मा के पुरोहित की कन्या है ।

राजा—पुरोहित का क्या नाम है ?

विदूषक—शशशृग और उनकी पत्नी मृगतृष्णिका और उसकी कन्या का नाम अम्बर-माला है, जो मेरी गृहिणी होने जा रही है ।

राजा—(अपने मन में) मै समझता हूँ महारानी जी इनका मजाक करना चाहती है, तो मै चुप रहूँ और यह परिहास की लता बढती रहे ।

(तत प्रविशति चेटी)

(परिक्रम्य पुरतोऽवलोक्य) कध एस देवो चाराअणबह्मणेण सम कोदूहलधरस्स तुसारपुञ्जस्स सजवणसण्णिहिदो वट्टदि । ता विण्णवेमि देवीसदिट्ठ । (उपसृत्य) जअदु जअदु भट्टा । देवी विण्णवेदि, चाराअणो मए दुदीआ परिणाइदुमाणत्तो ता तुम्हेहि चाराअणमित्तकेहिं होदव्व । एद च कोदूहलघल कद कदलीघल पविसदु देवो । देवी सपरिअणा इदो ज्जेव वट्टदि । **[इति प्रवेश नाटयति]** (कथमेष देवश्चारायणब्राह्मणेन सम कौतूहलगृहस्य तुषारपुञ्जस्य सञ्जवनसन्निहितो वर्तते ? तस्मात् विज्ञापयामि देवी-सन्दिष्टम् । जयतु जयतु भर्ता । देवी विज्ञापयति, चारायणो मया द्वितीया परिणाययितुम् आज्ञप्त । तद् युष्माभिश्चारायणामित्रकैर्भवितव्यम् । एतच्च कौतूहलगृह प्रविशतु देव । देवी सपरिजना इत एव वर्तते ।)

(तत प्रविशति देवी कृतवधूटी-वेषश्चेटो विभवतश्च परिवार.) ।

देवी—हला मेहले । अत्तणे जामादुअस्स कुणसु मुहावलोअण (हला मेखले । आत्मनो जामातृकस्य कुरु मुखावलोकनम् ।)

(इसके बाद दासी रगमञ्च पर आती है)

(घूमकर सामने की ओर देखकर)

चारायण ब्राह्मण के साथ कौतूहलगृह तुषारपुञ्ज के चतु शालके सन्निकट महाराज जी उपस्थित है, तो महारानी का सन्देश बता दूँ । स्वामी की जय हो । महारानी जी कह रही है कि आज मै चारायण का दूसरा विवाह करने जा रही हूँ, तो आप चारायण के मित्र रूप मे अवसर पर उपस्थित रहे और यह कदलीगृह ही कौतूहलगृह बनाया गया है । इसमे महाराज जी चले, परिजनो समेत महारानी भी उपस्थित है ।

(प्रवेश करती हैं)

(इसके बाद महारानी जी, वधू-वेष मे दास एव सामग्री समेत सेवकवृन्द)

देवी—अरे मेखले । अपने जामाता का मुख देख ले ।

मेखला—(तथा विधाय शिरसि चाघ्राय) अज्ज चाराअण। उवरिधेसु रत्तसुअ कुणसु तारामेलण। (आर्य चारायण। उपरि धेहि रक्ताशुक कुरु तारामेलनम्)

विदूषक —(तथा करोति),

देवी—मेहले। तुरिद देवासेसु भामरीओ, जेण प्पज्जलिदे हुदवहे लाअजलीओ मुचेदि। (मेखले। त्वरित दापय भ्रामर्य येन प्रज्वलिते हुतवहे लाजाञ्जलि मुञ्चति।)

विदूषक —(तथा कृत्वा) अयि दुदीअवह्मणि धुव सत्तरिसिमण्डल च पेक्ख। (अयि द्वितीयब्राह्मणि, ध्रुव सप्तर्षिमण्डल च पश्य।)

चेट—(विलोक्य) दिट्टधुओ दिट्टसत्तरिसिमडलो अ सवुत्तोह्मि। (दृष्टध्रुवो दृष्टसप्तर्षिमण्डलश्च सवृत्तोऽस्मि।)

विदूषक—अयि मुद्धे? दिट्टधुआ दिट्टसत्तरिसिमडला अह त्ति भण। (अयि मुग्धे। दृष्टिध्रुवा दृष्टसप्तर्षिमण्डला च अहमिति भण।)

(चेट-विदूषकौ पुन पुनस्तथाऽभिदधत)

मेखला—(वैसा कर और सिर सूँघकर) आर्य चारायण। ऊपर लाल वस्त्र रक्खो। तारा-मेलन (परस्परावलोकन) करो।

विदूषक—(वैसा करता है)

देवी—मेखले। भॉवरे जल्दी डलवाओ, जिससे वर प्रदीप्त अग्नि मे जालाञ्जलि छोडे।

विदूषक—(वैसा करके) अपि मेरी द्वितीय ब्राह्मणि। ध्रुव और सप्तर्षिमण्डल को देखो।

दास—(देखकर) मै ध्रुव तथा सप्तर्षि-मण्डल को देख चुका।

विदूषक—अरी भोली। मै ध्रुव तथा सप्तर्षिमण्डल देख चुकी—ऐसा कहो।

(दास और विदूषक बार-बार वही अपना-अपना वाक्य दोहराते है।)

चेट—अज्ज चाराअण। देवीदासो डमरुओ क्खु अह कह परिणआणि। ण सुणीअदि दीवतरे वि एसा वत्या ज पुरिसो पुरिस परिणेदिं इत्थिआ वा इत्थिअ। अबरमाला उण अबरमाला ज्जेव। (आर्य चारायण देवीदासो डमरुक खल्वह कथ परिणयानि। न च द्वीपान्तरेऽपि एषा वार्त्ता श्रूयते यत् पुरुष पुरुष परिणयति स्त्री वा स्त्रियम्। अम्बरमाला पुनरम्बरमालैव)

विदूषक—आ दासीए सुदे। पुराणकुट्टिणि। मगरदादे। भमरटेण्टे। टेण्टाक-राले। कोसवड्ढिणि। रच्छालोट्टणि। त्रुडिदसघलिदे। परपुत्तविद्दाविणि। विस-मकत्तरि। वञ्चिदह्मि तुए, ता रक्खिअस्स अत्ताण। (आ दास्या सुते। पुराणकुट्टिनि। मकरदष्ट्रे। भ्रमरटेण्टे। टेण्टाकराले। कोशवर्धिनि। रथ्यालु-ण्ठिनि। त्रुटितसघटिते। परपुत्रविद्रावणि। विषमकर्त्रि। विञ्चितोऽस्मि त्वया, तस्माद्रक्षाऽऽत्मानम्।)

[सर्वे हसन्ति]

विदूषक—(अपक्रामपि)

दास—आर्य चारायण। मै महारानी जी का दास डमरुक हूँ, कैसे विवाह करूँ। किसी द्वीप मे भी ऐसी बात नही सुनी कि पुरुष का पुरुष से अथवा स्त्री का स्त्री से विवाह होता हो। अम्बरमाला तो अम्बरमाला ही।

विदूषक—अरी दासी की पुत्री। पुरानी कुटनी, मगर के-से दॉतो वाली, भ्रमर की तरह इधर-उधर घूमने वाली, झगडालू, दूसरों के धन से कोश बढाने वाली, सुरा-पानादि से सडक पर लोटने वाली, दुश्चरित्रो के साथ रहने वाली, दूसरो के पुत्रो को भ्रष्ट करने वाली, विपरीत कर्म करने वाली। तुमने मुझे छला है, तो तू अपने को बचा।

(सब हॅसते है)

विदूषक—(चला जाता है।)

राजा—देवि ! विलक्ष क्रुद्धश्चारायण कुवलयवीथी प्रतिगत । अस्माभिरपि गन्तव्यम् । तत् केनचित् कर्पूरद्वीपादागतेन नरेन्द्रेण सिद्धौषधैर्माधवीलतामण्डपो माञ्जिष्ठस्तबकालङ्कृत कृतस्तदृष्टचर चरितमवलोकयितु प्रियवयस्यमाव- र्जयितु च गच्छाम । त्व पुनस्तदद्भुत प्रदोषे द्रक्ष्यसि ।

देवी—कुरगिए ! देवतादुदीअस्स अज्जपुत्तस्स पास्सवत्तिणी होहि । (कुरगिके ! देवताद्वितीययस्याऽऽर्यपुत्रस्य पार्श्ववर्तिनी भव ।) इति सपरिवारा निष्क्रान्ता

कुर०—(परिक्रामितकेन) इदो अज्ज चाराअणो मालदीगुम्मन्तरे बन्दी विअ मुहमेत्तणिलुक्को चिट्ठदि । (इत आर्यचारायणो मालतीगुल्मान्तरे बन्दीव मुखमात्रनिर्लोकस्तिष्ठति ।)

राजा—तदानयैनम् ।

कुर०— (किञ्चिदुपसृत्य) भो ! अम्बरमालावल्लह देवो वाहरदि **[इत्यञ्चले कर्षति]** (भोअम्बरमालावल्लभ ! देवो व्याहरति ।)

राजा—देवि ! लज्जित चारायण कुद्ध हो कुवलयवीथी की तरफ चला गया । हमे भी जाना चाहिए। कर्पूर द्वीप से आये हुए एक वैद्य ने सिद्ध औषधियो से माधवीलता-मण्डल को मजीठ रग के लाल फूलो के गुच्छो के अलङ्कृत कर दिया है । हम इस अदृष्टपूर्व कर्म का अवलोकन करने तथा प्रियमित्र को रोकने जा रहे है और तुम उस अद्भुत काम को सायकाल के समय देखना ।

देवी—कुरङ्गिके ! आर्यपुत्र अकेले है, तू इनके समीप रह । (ऐसा आदेश देकर परिजनो सहित चली गई)

कुरङ्गिका—(घूमने का अभिनय कर) मालती कुज के अन्दर बन्दी की भाँति जिनका मुखमात्र दिखाई पड रहा है, आर्य चारायण इधर है ।

राजा—उनको ले आ ।

कुरङ्गिका—(कुछ निकट जाकर)

हे अम्बरमाला के वल्लभ ! महाराज बुला रहे है ।

विदूषक—आ दुट्टदासि । भविस्सकुट्टिणि । तुम पि म उअहससि ता अमुणा तुह्मदेसजणमणकुडिलेण दण्डकट्टेण सीस तत्ति ताडइस्स (आ दुष्टदासि । भविष्यत्कुट्टिनि । त्वमपि मामुपहससि, तस्मादमुना युष्मद्देश जनमन कुटिलेन दण्डकाष्ठेन शीर्षन्तडिति ताडयिष्यामि ।)

राजा—कुरङ्गिके । देवीमनुवर्तस्व, तत्परिवारे क्रुद्धश्चारायण ।

कुर०—(निष्क्रान्ता परिक्रामितकेन)

विदूषक—पिअवअस्सविणोदत्थ महामन्तिकारिदा रअणवदी णाम पुरदो चउक्किआ । कि उण ताए वि एसा अधिदेवद व्व । (प्रियवयस्यविनोदार्थ महामन्त्रिकारिता रत्नवती नाम पुरतश्चतुष्किका । कि पुनस्तस्यामप्येषाऽधिदेवतेव ।)

राजा—(विलोक्य स्वगतम्) हृदय । दिष्ट्या वर्धसे स्वप्नदृष्टजनप्रत्यक्षदर्शनेन । (त प्रति) सखे चारायण । सैवेयम् अस्मन्मन शिखण्डि ताण्डवयित्री वर्षालक्ष्मी । इदमन्यत्ते कथयामि, पुराणप्रजापतिनिर्माणमेषा । यत —

चन्द्रो जड कदलिकाण्डमकाण्डशीत-
मिन्दीवराणि च विसूत्रितविभ्रमाणि ।
येनाक्रियन्त सुतनो स कथं विधाता
किं चन्द्रिकां क्वचिदशीतरुचि प्रसूते ? ॥ ४ ॥

विदूषक—अरे दुष्ट दासि । कुट्टिनि । तू भी मेरा उपहास करती है । तो तुम्हारे देश के लोगो के मन की भॉति टेढे इस डण्डे से तुम्हारे सिर को "तड" से पीटूँगा ।

राजा—कुरङ्गिके । महारानी के पास जा, चारायण उनके परिजनो पर क्रुद्ध है ।

कुरङ्गिका—(घूम कर चली गई)

विदूषक—आप के विनोदार्थ महामत्री के सामने यह रत्नवती नामक चौकी बनवाई गई है, उस पर भी यह अधिदेवता सी है ।

राजा—(देखकर अपने मन में) हृदय । स्वप्न मे देखे हुए जन का प्रत्यक्ष दर्शन कर भाग्य से तुम बढ रहे हो । (चारायण से)

यही वही हमारे मन-मयूर को नचाने वाली वर्षा की शोभा है । तुम से यह और कहता हूँ यह किसी पुराने ब्रह्मा की रचना है । क्योकि जिसने चन्द्रमा को जड, कदली-स्तम्भ को अनुपयुक्त अवसर पर भी शीतल रहने वाला एव इन्दीवर को

अपि चास्या खलु लक्षयामि तामिव वयोऽवस्थामलकुरुते, यस्या दिवानिशमभिनवाकल्पविकल्पगतमानसा तिष्ठति। तथाहि—

उत्तालालकभञ्जनानि कवरीभारेषु शिक्षारसो
दन्ताना परिकर्मनीवि-नहन भ्रूलास्ययोगग्रह.।
तिर्यग्लोचनचेष्टितानि वचसा छेकोक्तिसक्रान्तय
स्त्रीणा म्लायति शैशवे प्रतिकल कोऽप्येष केलिक्रम ॥ ५ ॥

विदूषक—(आकारमाकलय्य सोपहासम्) भो एहि इदो भवीअ देवीए सआस गच्छह्मि। (भो एहि इतो भूत्वा देव्या सकाश गच्छाव।)

राजा—सखे! पश्यामस्तावत्।

विदूषक—कि तुम गण्ठिबधिरो बिअ ठाणे थक्कसि ता गुड्चीदडो व्व भव इधज्जेव दाड्ढधरो भोदु। अह उण देवीए सआस गच्छेह्मि (कि त्व ग्रन्थिबधिर इव स्थाने स्खलसि। तस्माद गुडूचीदण्ड इव भवानिहैव दाढ्र्यधरो भवतु। अह पुनर्देव्या सकाश गच्छामि।)

विसूत्रित और विभ्रम रहित) बनाया, वह इस सुन्दरी का निर्माता कैसे हो सकता है। क्या कही सूर्य चन्द्रिका उत्पन्न कर सकता है? ॥ ४ ॥

और मै देखता हूँ कि इसकी आयु इस अवस्था को अलकृत कर रही है, जिसमे दिन-रात मन मे नये-नये सकल्प-विकल्प उठा करते है। जैसे—चञ्चल अलको को रोकना (चञ्चल अलको को हाथो से ठीक करते रहना), चोटी गूँथने की कला सीखने मे आनन्द पाना, दाँतो को (उचित साधनो से) स्वच्छ और आकर्षक बनाना, नीवी बाँधना, भ्रू-नर्तन की रीतियो का ज्ञान प्राप्त करना, तिरछे नेत्रो से हाव-भाव प्रकट करना और अर्थान्तरगर्भित वचन बोलना—ये सब गुण युवावस्था मे स्त्रियो मे स्वत आ जाते है। शैशवावस्था बीतते-बीतते स्त्रियो का प्रतिक्षण यह एक अपूर्ण केलि-क्रम रहता है ॥ ५ ॥

विदूषक—आकार समझ कर उपहासपूर्वक आओ, इधर से होकर महारानी के पास चले।

राजा—मित्र! पहले इसे देख तो ले।

विदूषक—क्या तुम ग्रन्थि-वधिर सा स्थान पर गिरते हो, तो आप गुरिचतदण्ड की तरह यही जमे रहो। मै तो महारानी के पास जाता हूँ।

राजा—सर्व सम्भाव्यते त्वयि । कि मधु कषायति ?

विदूषक —(विहस्य पुरोऽवलोक्य च) भो उप्फालसमुप्फालनाई करेहि लग्गा । (भो उत्फालसमुत्फालनानि करयोर्लग्नानि ।)

राजा—(विहस्य) कन्दुकेन क्रीडति । तथा हि—

अमन्दमणिनूपुरक्वणनचारुचारिक्रम,
झण्जझणितिमेखलं स्खलिततारहारच्छटम् ।
इद तरलकङ्कणावलिविशेषवाचालित,
मनो हरति सुभ्रुव किमपि कन्दुकक्रीडितम् ॥ ६ ॥

विदूषक —एव एद (एवमेतत्)

चचलचलणचण्डउचारक्कमचलिदचेलअ
अविरलवेणिवेल्लिदभल्लवलनधुदविअसिदमल्लिअ ।
सोहइ घणरणतरसणामणिकिंकिणी चअ
चदमुहीए रअणरगगणे गेदुअकेलिताडवं ॥ ७ ॥

राजा—तुम्हारे लिए सब कुछ सम्भव है । क्या मधु तुम्हे कसैला लगता है ?

विदूषक—(हँसकर और सामने देखकर) अरे ! हाथो का उछल-कूद हो रहा है ।

राजा—(हँसकर) गेद खेल रही है । जैसे—

हे सुभ्रु ! मणिमय नूपुरो की अमन्द ध्वनि से पैरो की गतिसुन्दर लग रही है, करधनी की क्षुद्र घण्टिकाओ से झन-झन ध्वनि निकल रही है, कण्ठ प्रदेश मे मुक्ताहार लटका हुआ हिल रहा है एव चचल ककणो से विशेष ध्वनि निकल रही है, इस प्रकार की तुम्हारी कन्दुकक्रीडा मन को हर लेती है ॥ ६ ॥

विदूषक—(ऐसा ही है)

चञ्चल चरणो को तेजी से आगे रखने से वस्त्र चञ्चल हो रहे हैं, वेणी के बारबार लुढकने एव हिलते रहने से उसमे गुँथे मल्लिका का पुष्प नीचे गिर रहे है एव करधनी की किङ्किणी अत्यन्त शब्द कर रही है । रत्न-जटित रगभूमि के प्रागण से चन्द्रमुखी की इस प्रकार की कन्दुक-क्रीडा अत्यन्त सुन्दर लग रही है ॥ ७ ॥

(चञ्चलचरणचण्डचारक्रमचलितचेलक
अविरलवेणिवेल्लितभल्लवलनधुतविकसितमल्लिकम् ।
शोभते घनरणद्रशनामणिकिङ्किणीचय
चन्द्रमुख्या रत्नरङ्गाङ्गणे कन्दुककेलिताण्डवम् ॥ ७ ॥)

राजा—

अस्या स्वेदाम्बुबिन्दुच्युततिलकतया व्यक्तवक्त्रेन्दुकान्ते-
र्वारवारेण वेगप्रहणननटनाकेलिवाचालितायाः ।
तत्पातोत्पात-तानोन्नतविनतदृशस्ताडनोत्तालतीका-
लालित्याच्छन्दिता स्म प्रतिपदमधुना कन्दुकक्रीडितेन ॥ ८ ॥

(भूयो विभाव्य) अहह ! महता वेगेन वर्तते । यथा हि—

चेलाञ्चलेन चलहारलताप्रकाण्डैर्वेणीगुणेन च बलाद्वलयीकृतेन
हेलाहितभ्रमरकभ्रमिमण्डलीभिश्चक्रत्रय रचयतीव चिर नतभ्रू ॥ ९ ॥

राजा—पसीने की बूँदो से मस्तक का तिलक धुल जाने से स्पष्ट मुखचन्द्रकान्ति वाली, बारबार वेग से गेद मारने की नृत्यकेलि मे स्फूर्ति युक्त एव गेद के नीचे गिरने और ऊपर उठने के तान के अनुसार नीचे ऊपर जाते हुए नेत्रो वाली इस सुन्दरी के गेद मारने और उछालने की ललित लीला के कारण इस कन्दुकक्रीडा से इस समय पग-पग पर हम हर्षित हो रहे है ॥ ८ ॥

(पुन सोचकर) अहह ! बड़े वेग से गेद खेल रही है ।

वस्त्राञ्चल, चञ्चलहार की उत्कृष्ट लडियो एव बलपूर्वक वेष्टित वेणीसूत्र से कुम्हार के चाक को तिरस्कृत करने वाले गोलाकार चक्कर काटने से वह झुकी भौंहवाली सुन्दरी तीन वृत्त सा बनाती है ॥ ९ ॥

(पुनर्निरूप्य)

स्मरशरधिनिकाश कर्णपाश कृशाङ्गी
रयविगलिततालीपत्रताटङ्कमेकम् ।
वहति हृदयचोर कुङ्कुमन्यासगौरं
वलयितमिव नाल लोचनेन्दीवरस्य ॥ १० ॥

विदूषक—भो, विरदा गेदुअखेलणादो (भो, विरता कन्दुर्कक्रीडनात् ।)

राजा— न केवल विरता सखी, किंतु करतलन्यस्तपाणिपद्मा सप्रत्यभिज्ञमिवास्मानवलोकयति च । पश्य—

वक्त्रश्रीजितलज्जितेन्दुवदिदं कृत्वा करे कन्दुक
क्रीडाकौतुकमिश्रभावमनया त्र्यस्रं वहन्त्याननम् ।
भृङ्गग्राग्रहकृष्टकेतकदलस्पर्धावतीना दृशा
दीर्घापाङ्गनिरीक्षणैकसुहृदामेषोऽस्मि पात्रीकृत ॥ ११ ॥

(पुन- सम्यक् अवलोकन कर)

कामदेव के तरकस के सदृश, वेग के कारण ढीले-ढाले, तालपत्र से निर्मित कर्णभूषण वाला, कुङ्कुम लगाने से गौर तथा नेत्र-कमल का लपेटा हुआ नाल सा, इस दुबले-पतले शरीर वाली सुन्दरी का अनुपम कर्णपाश हृदय का चुरा लेता है ॥ १० ॥

विदूषक— अरे ! गेद खेलना बन्द कर दिया ।

राजा—केवल खेलना ही नही बन्द कर दिया, किन्तु हथेली पर हथेली रख प्रत्यभिज्ञा (स्मृति की सहायता से उत्पन्न ज्ञान) पूर्वक हमे देख भी रही है । देखो—

मुख की शोभा से पराजित अतएव लज्जित चन्द्रमा के समान (उसने) कन्दुक को हाथ पर रख, क्रीडा ओर कौतूहल के मिश्रित भाव वाले मुख को तिरछा-टेढा किये इस सुन्दरी ने, भौरो को बलात् आकृष्ट करने वाले केतकपत्र से स्पर्धा करने वाले तथा कनखियो से देखने मे अत्यन्त निपुण अपने नेत्रों का हमे पात्र बनाया ॥ ११ ॥

विदूषक -भो एहि अणुसरह्म सुदरी । भोदु प्पेम्मदुट्टोली । पीज्जदु दिट्टीए पीऊस-गडूसो । दिज्जदु मअणस्स हत्थावलबो, पअट्टदु पचमहुकारा हिचारो । भोदु विकटदुब्भरो परिवारबग्गो । अच्चिज्जदु मअरध्वजसधिविग्गहचिन्तावाउलदाए कठट्ठिदजीविदो चाराअणबह्मणो । (भो एहि अनुसराव सुन्दरीम् । भवतु प्रेमसा-फल्यम् । पीयता दृष्ट्या पीयूषगण्डूषम् । दीयता मदनस्य हस्तावलम्ब, प्रवर्तता पञ्चमहुकङ्कराभिचार. । भवतु विकटदुर्भर. परिवारवर्ग । अर्च्यता मकरध्वजसन्धि-विग्रहचिन्ताव्याकुलतया कण्ठस्थितजीवितश्चारायणब्राह्मण ।)

(परिक्रम्य सोपानावतरण नाटयत)

विदूषक —अदेव देवउल, अणक्खरो लेहो, जदो ण दीसदि सा । (अदेव देवकुल, अनक्षरो लेख, यतो न दृश्यते सा ।)

राजा—दृष्टा हरिश्चन्द्रपुरीव नष्टा च ।

विदूषक —एहि णिउण णिरूपह्म । सा कहिं पि अभ्यतरिदा चिट्ठदि । एहि निपुण निरूपयाम सा कुत्रापि अभ्यन्तरिता तिष्ठति । (चतुर्दिशमवलोकितनाटितकेन)

राजा—(सविषाद भुवमवलोक्य)

विदूषक—आवो । सुन्दरी का अनुसारण करे । प्रेम सफल हो । दृष्टि से अमृत रस पियो । कामदेव को हाथ का सहारा दो । कोयल की पुकार शुरू होने दो । आश्रितजन अत्यन्त दुर्भर हो काम-सम्बन्धी सन्धि-विग्रह की चिन्ता से व्याकुल होने के कारण कण्ठगत प्राण चारायण ब्राह्मण की अर्चना की ।

(दोनो घूमकर सीढियो से उतरने का अभिनय करते हैं)

विदूषक—देवकुल बिना देव का, लेख बिना अक्षर का जो वह दिखाई नही पडती हैं ।

राजा—हरिश्चन्द्र की पुरी की तरह दिखाई दी और गायब हो गई ।

विदूषक—आवो सावधानी से देखते है, वह कही छुपी होगी । (चारो तरफ देखने का अभिनय करता है)

राजा—(विषादसहित भूमि की ओर देखकर)

इय चरणकुक्कुमच्छुरितकुट्टिमा मोदिनी
निवेदयति कन्दुकव्यतिकर कुरङ्गीदृश ।
अहो किमिदमद्भुत न च कृशोदरी दृश्यते
भवत्ववगतं स्मर सृजति मोहमायामि माम्॥ १२ ॥

(सन्तोषमभिनीय समन्तादवलोक्य च)

शिखामणिरितोऽरुणस्तिलकयत्य मेदिनी-
मितो गलितगुम्फनास्तरलवेणिवान्ता स्त्रज ।
इतश्छुरितमन्तरा त्रुटितहारमुक्ताफलै-
रित श्रवणपाशतस्तलजपत्रमास्ते च्युतम्॥ १३ ॥

विदूषक—सुट्ठु क्खु सण्णिवेस-सिलिट्ठ तालवत्त। (सुष्ठु खलु सन्निवेशश्लिष्ट तालपत्रम्।) **[आदाय प्रसार्य च]** कध अक्खराइ? अहो पिअवअस्स जई कालक्खरिओसि ता पट। (कथमक्षराणि? अहो प्रियवयस्य, यत कालाक्षरिकोऽसि तस्मात् पठ।)

राजा—(वाचयति)

मृगनयनी के चरणो के कुङ्कुम से लिप्त फर्शवाली यह भूमि उसके कन्दुकव्यसन को सूचित कर रही है, किन्तु कैसा आश्चर्य है वह कृशोदरी दिखाई नही पड रही है। अच्छा, जान गया, कामदेव यह मोह माया किया करता है ॥ १२ ॥

(सन्तोष का अभिनय कर और चारो ओर देखकर)

उसकी लाल चूडामणि इधर गिरी हुई है, जो पृथ्वी की अलङ्कृत कर रही है। बन्धन के शिथिल हो जाने के कारण चञ्चल वेणी से छूट कर माला इधर गिरी है। निकटस्थ भूभाग टूटे हार के मोतियो से दीप्त है। इधर कर्णपाश से तालीपत्र गिरा हुआ है ॥ १३ ॥

विदूषक—सन्निवेश मे श्लिष्ट तालपत्र है। (लेकर और फैलाकर) अरे इसमे तो अक्षर लिखे है। प्रियमित्र, तुम विद्वान हो, पढो।

राजा—(बॉचता है)

विधत्ते सोल्लेख कतरदिह नाङ्ग तरुणिमा
तथापि प्रागल्भ्यं किमपि चतुरं लोचनयुगे।

(विभाव्य) अये, द्विपदीय न पुनरत्रापि चतुष्पदी।

विदूषक—भो गडआ विअ उद्धजाणुओ केच्चिर चिट्ठिस्सामो। ता एहि मत्तवारणोवरि उववसिह्य। (भो गण्डकाविवोद्ध्र्वजानुकौ कियच्चिर स्थास्याव। तस्मादेहि मत्तवारणोपरि उपविशाव।) तथा कुरुत।

(नेपथ्ये)

यत्तालीदलपाकपाण्डुवदन यद् दुर्दिन नेत्रयो-
र्यत्प्रेङ्खोलितकेलिपङ्कजदल श्वासा प्रसर्पन्ति च।
गौरी क्रुध्यतु वर्तते यदि न ते तत् कोऽपि चित्ते युवा
धिग् धिक् त्वा सह पासुखेलनसखी लोकेऽपि यन्निह्नव ॥ १४॥

यौवन सभी अङ्गो को सुन्दर कर देता है, किन्तु नेत्रो मे तो एक विशेष प्रगल्भता उत्पन्न कर देता है।

(सोचकर) अरे इसमे भी दो ही पद है चार पद नही है।

विदूषक—अरे गैडे की तरह घुटने के बल कब तक बैठे रहेगे। आवो मत्तवारणी के ऊपर बैठे। (दोनो वैसा करते है)

(नेपथ्य में)

तुम्हारा मुख पके तालपत्र की भाँति जो पीला हो गया है, नेत्रो से आँसुओ को जो झडी लगी रहती है, साँसे लम्बी चल रही है, हाथ मे लिए हुए क्रीडा-कमल की पँखुडियाँ वेग से हिल रही है, तो अवश्य तुम्हारे मन मे कोई युवक बसा हुआ है। यदि ऐसा न हो तो पार्वती जी का कोप मुझ पर हो। धूल मे साथ-साथ खेलने वाली बचपन की सखियो से भी तुम जो दुराव छिपाव रखती हो—तुम्हे धिकार है॥ १४॥

विदूषक—(चमत्कृत्य) भो सिहाबध मे करेहि, अमाणुसी वाणी सुणीअदि । (भो शिखाबन्ध मे कुरु, अमानुषी वाणी श्रूयते ।)

राजा—भित्त्यन्तरित कश्चिदभिधत्ते ।

विदूषक—तदो वक्खाणेहि मे । (तस्माद् व्याख्याहि मे ।)

राजा-काचित् क्वचिदनुरक्ता लज्जावती च वयस्यया भिन्नरहस्या क्रियते

नेपथ्ये—(सवाक्स्तम्भम्) सहीओ ! कि एत्थ अलिअ सभावेध ? (सख्य किमत्र अलीक सम्भावयथ ?)

राजा—वयस्य श्रुतम् ।

विदूषक—ही ही भो, एदे क्खु पडिदा अलिअविअप्पेहि फललुद्धा विअ मक्कलामूलमलहता पल्लवग्गाहिणो होन्ति, मुक्खा उण फणसवणपालआ विअ मूलमण्णेसता फल पावइ, ता सुणोदु, अह ज्जेव्व वक्खाणइस्स । ण क्खु एद सामण्णजणवअण, कि तु तुम ज्जेव्व उवालम्मीअसि । ण क्खु मिअलछणमुज्झीय अण्णेण ससिफतपुत्तलिआ बद्ध-णिज्झरा पज्झरइ । (ही ही भो, एते खलु पण्डिता

विदूषक—(चौककर) अरे मेरी चोटी बॉधो । कोई अलौकिक वाणी सुनाई पडती है ।

राजा—दीवाल की आड से कोई बोल रहा है ।

विदूषक—मुझे समझाकर कहो ।

राजा—कोई महिला किसी पुरुष मे अनुरक्त किन्तु लज्जावती है, अत उसकी सखी उससे रहस्य जानने के लिए प्रयत्न कर रही है ।

(नेपथ्य में)—(स्तब्ध बाणी में)

सखियो ! क्यो तुम लोग मिथ्या कल्पना करती हो ?

राजा—मित्र ! तुमने सुना ।

विदूषक—अरे ये पडित लोग मिथ्या विकल्पो से फललुब्ध वानरो की भॉति मूल न प्राप्त कर पल्लव ग्राही होते हैं और मूर्ख कटहल के बगीचे के माली की तरह मूल का अन्वेषण करता फल प्राप्त करता है । तो सुनो । मै ही व्याख्या

अलीकविकल्पै फललुब्धा इव मर्कटमूलमलभमाना पल्लवग्राहिणो भवन्ति, मूर्ख पुन पनसवनपालक इव मूलमन्विष्यन् फल प्राप्नोति। तस्माच्छृणोतु, अहमेव व्याख्यास्यामि। न खल्वेतत् सामान्यजनवचन किन्तु त्वमेवोपालभ्यसे। न खलु मृगलाञ्छनम् उज्झित्वाऽन्येन शशिकान्तपुत्रिका बद्धनिर्झरा प्रहृष्यति ।)

राजा—तदिद तर्के, अनाकरे पद्मरागरत्नम् ।

(पुनर्नेपथ्ये)

कह दे तक्खण प्फुडिदसिप्पिसपुडमुक्कमोतिअच्छाआ ।
थक्क तु सुमुहि अणजणाण णअणाण बाहकणा ॥ १५ ॥

(कथ ते तत्क्षणस्फुटितशुक्तिसपुटमुक्तमौक्तिकच्छाया ।
स्तोकीक्रियन्ता सुमुखि अनञ्जनयोर्नयनयोर्बाष्पकणा ॥ १५ ॥)

सक्किसिहिकह क्खु पसरन्तपारदरसच्छित्तकचणच्छाअ ।
तणु कदलीए परिपडुरत्तण डिभहरिणच्छि ॥ १६ ॥

(शिक्ष्यसे कथ खलु प्रसरत्पारदरससिक्तकाञ्चनच्छायम् ।
तनु कदल्या परिपाण्डुरत्व डिम्भहरिणाक्षि ॥ १६ ॥)

करुँगा। यह सामान्यजन के लिए नही कहा गया है किन्तु तुम्हारा उपालम्भ किया जा रहा है। चन्द्रकान्त की पुतली चन्द्रमा के अतिरिक्त दूसरे से जल-प्रस्राव करती नही प्रसन्न होती ।

राजा—तो मै यह समझता हूँ कि खजाने के बिना ही यह लाल रत्न निकला ।

(पुन नेपथ्य में)

तो क्यो सीपी के खुले सम्पुट के निकले मोतियो के समान तुम्हारे अश्रु बिन्दु झर रहे हैं ? हे सुन्दरि ! इन्हे रोको ॥ १५ ॥

हे मृगशावकनयनि ! पारा के रस से सिक्त सुवर्ण की भी छिटकती कान्ति वाले शरीर को कदली की पीतिमा क्यो सिखा रही ? ॥ १६ ॥

कह णु तुए तरलिज्जति केलिपकेरुहग्गक्खलणेण।
णीसासा ट्ठिअहारट्ठिसठाणपरिमाणा॥ १७॥

(कथन्नु त्वया ज्ञायन्ते केलिपङ्केरुहाग्रस्खलनेन।
निश्वासा स्थितहारयष्टिसस्थानपरिमाणा॥ १७॥)

निबिडकण्टकिदकचुअत्तण फ्फुरइ पुणो देहदोब्बलम्।
वदण पुण हरिणकबिंबदीणं कह णु होइ॥ १८॥

(निबिडकण्टकितकञ्चुकत्व स्फुरति पुनर्देहदौर्बल्यम्।
वदन पुनर्हरिणाङ्कबिम्बदीन कथ नु भवति॥ १८॥)

अइ तुह विज्जाहरमल्लदेअदसणेण फ्फुडमागदा भगीओ।
ण विणा चद सेहालिआए विअसति कुसुमाइ॥ १९॥

(अयि तव विद्याधरमल्लदेवदर्शनेन स्फुटमागता भङ्ग्य।
न विना चन्द्र शेफालिकाया विकसन्ति कुसुमानि॥ १९॥)

विदूषक—सिविणअदिट्ठा हिदोलियाचित्तसचारिदासालभजिअत्तणेण परिणदा गेदुअखेलिणी कव्ववधवअणा सच्चा ज्जेव एसा तुवे अक्खिता तुह चित्त अक्खीवदि। (स्वप्नदृष्टा हिन्दोलिकाचित्रसचारिताशालभञ्जिकात्वेन परिणता कन्दुकखेलिनी काव्यबन्धवचना सत्यैव एषा त्वया आक्षिप्ता तव चित्तमाक्षिपति।)

तुम्हारे नि श्वास क्रीडाकमलके अग्रभाग पर से होते हुए हार की लडियो तक पहुँच रहे है—इनका तुम्हे अनुभव क्यो नही हो रहा है ? ॥ १७॥

तुम्हारे कञ्चुक रोमाञ्चो से कण्टकित है एव तुम्हारे शरीर के दौर्बल्य का आभास हो रहा है। तुम्हारा मुख चन्द्र-बिम्ब सा दीन क्यो हो रहा है॥ १८॥

विद्याधरमल्ल देव के दर्शन से तुम्हारे सभी बहाने—तुम्हारी चाले स्पष्ट व्यक्त हो गई। चन्द्रिका के बिना शेफाली के पुष्प नही खिलते॥ १९॥

विदूषक—स्वप्न मे दिखाई दी, झूले के चित्र मे मिली, शालभञ्जिका के रूप मे परिणत हुई, गेद खेलने लगी, काव्य रचना करने लगी, सचमुच तुमने इसे आकृष्ट किया है और यह तुम्हारे चित्त को आकृष्ट कर रही है। (नेपथ्य में) सखि मृगाङ्कावलि। अब मै तुम्हारी स्वाभावक सच्ची [illegible]ती हूँगी।

(नेपथ्ये) सहि मिअकावलि ! सपद मए णिप्तग्गत्थए दूदीएहोदव्व । (सखि मृगाङ्कावलि ! साम्प्रत मया निसर्गस्थया दूत्या भवितव्यम् ।)

राजा-सैवेयमस्मिन्मनसि मन्मथेनेदानीमुत्कीर्यते मृगाङ्कावलीति पञ्चाक्षरी ।

(नेपथ्ये) रइदा मए तुहावत्थाणिवेदणत्थ महाराअस्स पुरदो पण्जिज्जा दुवे सिलोआ, ते पियसहीए सुणीअदु । (रचितौ मया तवावस्थानिवेदनार्थ महाराजस्य पुरत पटनीयो द्वौ श्लोकौ, तौ प्रियसखी शृणोतु ।)

(सस्कृतमाश्रित्य)

चन्द्र चन्दनकर्दमेन लिखित यन्मार्ष्टि दष्टाधरा
काम पुष्पशर. किलेति सुमनोवर्ग लुनीते च यत् ।
वन्द्य निन्दति यच्च मन्मथमसौ भङ्क्त्वाऽग्रहस्ताङ्गुली
स्तत् काम सुभग ! त्वया वरतनुर्वातूलता लम्भिता ॥ २० ॥

अपि च—

राजा—'मृगाङ्कावली' के वही ये पॉच अक्षर मेरे मन मे खोद-खोद कर अङ्कित कर रहा है ।

(नेपथ्य में) तुम्हारी अवस्था बताने के निमित्त महाराज के सामने पढ जाने योग्य मैने दो श्लोको की रचना की है, उन्हे प्रिय सखी सुनो ।

(सस्कृत के माध्यम से)

चन्दन के अवलेह से चन्द्रमा की आकृति बनाकर दॉतो से काटती है, उसे विनष्ट करती है । पुष्प कामदेव के बाण है, अत सभी प्रकार के पुष्पो को तोडती है । अगुलियॉ फोड़ फोडकर वन्दनीय कामदेव को बुरा-भला (गाली) सुनाती है । हे सुभग ! तुमने अपनी इच्छा से उस सुन्दरी को उन्मादावस्था की इस सीमा तक प्राप्त करा दिया है ॥ २० ॥

और भी—

तापोऽम्भ प्रसृतिम्पच प्रचयवान् बाष्प प्रणालाञ्चित
श्वासा प्रेङ्खितहारयष्टिलतिका पाण्डिम्नि मग्नं वपु ।
किं वाऽन्यत् कथयामि रात्रिमखिला त्वन्मार्गवातायने
हस्तच्छत्रनिवारितेन्दुमहसस्तस्या स्थितिर्वर्तते ॥ २१ ॥

विदूषक—अह उण जाणे अणुप्पविसीअ चलिदुम् । अहो, इह सुण्णचउक्किआसण्णा केवि बह्मरक्खसा जप्पति । भूअपिसाचावासट्ठाना सझा सण्णिहिदा वट्टदि, ता एहि गच्छह्म । (अह पुनर्जनि अनुप्रविश्य चलितुम् । आहो, इह शून्यचतुष्किकासन्ना केऽपि ब्रह्मराक्षसा जल्पन्ति । भूतपिशाचावासस्थाना सन्ध्या सन्निहिता वर्तते । तस्मादेहि गच्छाव ।)

राजा—यथाह भवान् (इति उभाववतरण नाटयत)

(नेपथ्ये)—सुखाय सायन्तनी सन्ध्या भवतु देवस्य । सम्प्रति हि—

निर्यद्वासरजीवपिण्डकरण बिभ्रत् कवोष्णान् करान्
माञ्जिष्ठ रविबिम्बमम्बरतलादस्ताचल चुम्बति ।

उसके शरीर का ताप समुद्र को भी तप्त कर देने वाला है । नेत्रो से ऑसू उमडकर प्रणाली की भॉति प्रवाहित होता है । उसके दीर्घश्वास हार की लडियो को दोलित करते है । शरीर अत्यन्त पीला पड गया है । अथवा और क्या कहूँ, हाथ के छत्र से ही चन्द्रमा की किरणो की बचाती हुई (दर्शनार्थ) तुम्हारे मार्ग के समीप झरोखे से लगी सारी रात बैठी रहती है ॥ २१ ॥

विदूषक—मैं समझता हूँ कि अब दरवाजे से प्रवेश कर चला जाय । यहॉ निर्जन चौकी के पास कुछ ब्रह्मराक्षस बोल रहे है । सन्ध्या, जो भूत-पिशाचो का आवास स्थान है, सन्निकट है । तो आओ चले ।

राजा—जैसा आप कहते है —(ऐसा ही हो) (दोनो उतरने का अभिनय करते हैं)

(नेपथ्य में) सायकालीन सन्ध्या महाराज के लिए सुखकर हो । इस समय जाते हुए दिनरूपी जीव का पिण्डभूत एव कुछ-कुछ गर्म किरणो को धारण करता मजीठ रग का लाल सूर्यमण्डल आकाश से अस्ताचल को प्राप्त हो रहा है । कुछ-कुछ अन्धकार आ जाने से थोडा-थोड़ा श्यामायमान जगत् धूम से काले पडे पुराने चित्र सा प्रतीत हो रहा है ॥ २२ ॥

किञ्च स्तोकतम कलापकलनाश्यामायमान मनाग्
धूमश्यामपुराणचित्ररचनारूप जगज्जायते ॥ २२ ॥

अपि च—

सैरन्ध्रीकरकृष्टकङ्कणसरत्तारध्वनि सञ्चरद्
दूतीसूचितसन्धिविग्रहविधि सोल्लासलीलाचय ।
वारस्त्रीगणसज्जयमानशयन सन्नद्धपुष्पायुध
श्रीखण्डद्रवधौतसौधतल्को रम्य क्षणो वर्तते ॥ २३ ॥

राजा—सन्ध्यामुपासितु देवीभवनमेव गच्छाव ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

इति द्वितीयोऽङ्क

और भी—

किसी स्थान पर दासी द्वारा हाथ पकड कर खीचने से कङ्कण की ऊची ध्वनि हो रही है । (अन्यत्र) दूती (नायका को) सन्धि-विग्रह की विधि बता रही है । (अन्य स्थल पर) उल्लासपूर्वक क्रीडा, केलि एव विकास का क्रम चल रहा है । वेश्याये अपनी-अपनी सेज बिछा रही है, कामदेव तैयार हो रहा है एव महलो की फर्श श्वेत चन्दन द्रव से धो दी गई है । इस प्रकार यह सन्ध्या का समय रमणीय ही हो रहा है ॥ २३ ॥

राजा—सन्ध्योपासन के निमित्त महारानी के भवन मे चले । (ऐसा कहकर रगमञ्च से चले गए ।)

द्वितीय अङ्क समाप्त

अथ तृतीयोऽङ्कः

(तत प्रविशति चेटी)

चेटी—(परिक्रम्य) को विअ कालो वट्टदि पिअसहीए विअक्खणाए दिट्ठाए। उक्कण्ठाभरेण अस्ससीअरकरबिअ विअ करिदतमुसल फुट्टणभूइट्ठ वट्टदि मे हिअअ। ता कहि णु क्खु ता दक्खिस्स ? **(पुरोऽवलोक्य)** कध एषा पियसही किपि चितअन्ती इदो एव्व आअच्छदि। (क इव वालो वर्तते प्रियसख्या विचक्षणाया दृष्टाया। उत्कण्ठाभरेण अस्त्रशीकरकरम्बितमिव करिदन्तमुसल स्फुटनभूयिष्ठ वर्त्तते मे हृदयम्। तस्मात् क्व नु खलु ता द्रक्ष्यामि ? कथमेषा प्रियसखी किमपि चिन्तयन्ती इत एव आगच्छति ?)

(तत प्रविशति यथानिर्दिष्टा द्वितीया चेटी)

द्वि० चेटी—(स्वगतम्) अहो मतिणो पहु-कज्जे णिरदिसआ भत्तो। (अहो मन्त्रिणा प्रभुकाये निरनिशया भक्ति।)

(इसके अनन्तर दासी रगमञ्च पर आती है)

दासी— (घूमकर) प्रियसखी विचक्षणा का दर्शन पाये बहुत समय होगया। अत्यन्त उत्कण्ठा से मेरा हृदय फटा सा जा रहा है। तो देखूँ कहाँ उसका दर्शन होगा ? अरे कैसे यह प्रियसखी कुछ सोचती इधर आ रही है ?

(इसके बाद यथानिर्दिष्ट दूसरी दासी रगमञ्च पर आती है)

दूसरी दासी—(अपने मन में) अहो ! स्वामी के कार्य मे मन्त्री की अत्यधिक भक्ति है।

प्रथमा—कध महाभाअधेअजणकज्जसिद्धी विअ चिन्तिदोवणदा पिअ सही। **(स्वगतम्)** तापच्छा भविअ णअणाइ से पीहिस्स। (कथ महाभागधेयजन कार्य-सिद्धिरिव चिन्तितोपनता प्रियसखी ? तत्पश्चात् भूत्वा नयने अस्या पिधास्ये।)

द्वितीया—पिअसहीए सुलक्खणाए करप्फसो। (प्रियसख्या सुलक्षणाया कर-स्पर्श।) **[प्रकाशम्]** सहि सुलक्खणे! जाणिदासि ता मुच णअणाइ। (सखि सुलक्षणे! ज्ञातासि, तन्मुञ्च नयने।)

सुलक्षणा—(नयने परित्यज्य सप्रणयकोपम्) हला विअक्खणे! एत्तहमेते वि सलिलसित्तक्षगगुणगठिगाटे वि सिणेहे कध उब्भिण्णसिहाखजरीटपकखिणी वि-अ अदसणा वट्टसि? आ एसा दे कुप्पामि। (हला विचक्षणे, एतावन्मात्रेऽपि सलिलसिक्तशणगुणग्रथिगाटेऽपि कथमुद्भिन्नशिखा खञ्जरीटपक्षिणीव अदर्शना वर्तसे। तस्मादेषा ते कुप्यामि।)

विचक्षणा—(सप्रश्रयम्) –सहि सुलक्खणे! मा कुप्प, महामतिभागुराअणणि-ओओ एत्थ अवरज्झदि ण उण अह। (सखि सुलक्षणे मा कुप्य! महामन्त्रिभागुरा-यणनियोगोऽत्र अपराध्यति न पुनरहम्।)

पहली—(मन में) महान् व्यक्ति की कार्यसिद्धि की भाँति स्मरण करते ही कैसे प्रियसखी आ गई? तो इसके पीछे जाकर इसके नेत्रो को (हथेलियो से) बन्द करती हूँ।

दूसरी—प्रिय सखी सुलक्षणा के हाथ का स्पर्श है। (जोर से) सखि सुलक्षणे! मैने तुम्हे जान लिया, तो मेरे नेत्रो को छोड दो।

सुलक्षणा—अरी विचक्षणे! जलसे भीगी सन की रस्सी की गाँठ की भाँति इतनी अधिक घनिष्ठता होने पर भी उद्भिन्न शिखा वाले खजन पक्षी की तरह दिखाई नही पडती हो। (अतएव) मै तुमसे अप्रसन्न हूँ।

विचक्षणा—(नम्रतापूर्वक) सखि सुलक्षणे! क्रोध न करो। इसमे महामन्त्री भागु-रायण के आदेश का अपराध है, मेरा नही।

सुलक्षणा—(सोपहासम्) को तुह्माहिंतो अण्णो छगुण्णअविसयेवट्टइ ? (को युष्मत्तोऽन्य षाड्गुण्यविषये विद्यते ?)

विच०—अह्मारिसजणजोग्ग महिला छगुण्णदसत्तणा क्खु एद । (अस्मादृशजन-योग्य महिलाषाड्गुण्यदर्शनत्व खल्वेतत् ।)

सुल०—महिला छगुण्णएण जइ महिलाअणस्स अदसण ता अह्मा रिसोओ कीति दीसन्ति । (महिलाषाड्गुण्येन यदि महिलाजनस्यादर्शन तद् अस्मादृश्य किमिति दृश्यन्ते ।)

विच०—कह कीदिस दे महिला छगुण्णअ ? (कथय कीदृशन्ते महिला षाड्गुण्यम् ।)

सुल०—तुम भण दाव उण अह भणिस्स, प्पठम सहआरमजरी उब्भिज्जइ पच्छातु कलकण्ठीमुद्द सिठिलेदि । (त्व भण तावत् पुनरह भणिष्यामि प्रथम सहकारमञ्जरी उद्भिद्यते, पश्चात्तु कलकण्ठी मुद्रा शिथिलयति ।)

विच०—ता सुणु, अहमेअदा भअवदा भागुराअणेण सबहुमाण भणिदा, विअ-क्खणे अह्माण राहअरहस्से तुए साहज्ज कादव्वति । (तस्मात् शृणु । अहमेकदा भगवता भागुरायणेन सबहुमान भणिता, विचक्षणे । अस्माक राजरहस्ये त्वया साहाय्य कर्त्तव्यमिति ।)

सुलक्षणा—(हँसी के साथ) राजनीति के छ गुणो मे तुम्हारे सिवा और कौन है ?

विचक्षणा—वस्तुत हम ऐसे लोगो को महिलाओ के छ गुण जानना चाहिए ।

सुलक्षणा—यदि महिला होकर महिलाओ के छ गुण न जाना तो हम किस लिए देखी जॉय ।

विच.—बताओ, तुममे महिलाओ के षड्गुण किस प्रकार के है ?

सुल.—पहले तुम कहो, फिर मै कहूँगी । पहले आमो मे मञ्जरी निकलती है, तदनन्तर कोयल बोलती है ।

विच.—तो सुनो । एक दिन श्रीमान् भागुरायण ने अत्यन्त आरदपूर्वक मुझसे कहा—विचक्षणे । हमारे एक गोपनीय कार्य मे तेरी सहायता चाहिए ।

सुल०—अहो दे मदिविदवो ज दाणि मंतिणा वि एव सभावीअसि । अहवा का वण्णणा वकुलावलीगधभारुग्गोरत्ति । तदो तदो । (अहो ते मतिविभव यदिदानी मन्त्रिणाऽप्येव सभाव्यसे । अथवा का वर्णना वकुलावलीगन्धभारोद्गारेति । तत-स्तत ।)

विच०—विणओवणदाए मए तधेत्ति पडिवण्ण । कधिद अ मे तेण, जधा, एसो जो मिअकवम्मासा मिअकावली त परिणीअ सिरि-उवरायेण चक्कवत्तिण होदव्व, ता तुए ननु कदाचिद् भवणभित्तिसचारे वासघरे एसा वासिदव्वा, जेण देवस्स सिवि-णआवगमो होदि कज्ज तराइ देहरदासो कधइस्सदि, एदस्सि महाराअकज्जरहस्से तुम तीए पिअ-सही राअकज्जसज्जत्ति अब्भत्थीअसि । ण हु सोवाणवतिमतरेण वलहीं समारोहो । तदो मए हरदासकधिदकज्जाणुसारेण सा सुवीसद्ध भणिदा, अइ सहि मिअकावलि ! इह वासघरे मकरद्धओ ओदरदि त अ तहि दट्ठूणकठट्ठिदहा-रकुसुमदामेण सो तुए अच्चिदव्वो, जेण दे ता दिसोभत्ता होदित्ति, तए वि नह अब्भुवअद किदअ । पुणो हिंदोलएदसिदा केलिकेलासवासघरफलिहभित्तिसु अत्तणो चित्त लेहाविदा, फलिहभित्तिए परदो दसिदा, तदणुवादिणीसालभजिआ णिम्माविदा, रअणवदीए चउक्किआए गड्डुएण खेलाविदा, खभगब्भसचारे त त भणाविदा मभाविदा अ ।

सुल—अहो ! तुम्हारा कैसा बुद्धिवैभव है कि अब मन्त्री भी तुम्हारा सम्मान करते है । अथवा वकुलावली अतिशय गन्ध बिखेर रही है—ऐसी प्रशसा करना निरर्थक है । इसके बाद क्या हुआ ?

विच.—विनीत भाव से मैने स्वीकृति दे दी है । उन्होने मुझसे कहा—यह जो मृगाङ्कवर्मा है, वह मृगाङ्कावली नामक स्त्री है । उसके साथ विवाह कर श्री युवराज, चक्रवर्ती हो जॉयगे । तो तुम किसी समय भवन-भित्ति-सञ्चार वासगृह मे उसे रखना जिससे स्वामी स्वप्न मे उसे देखे । अन्य कार्य तुमको हरदास बतायेगा । महाराज के इस गोपनीय कार्य मे तुम मृगाङ्कावली की प्रियसखी बनो और राजा का काम बनाने के लिए तैयार रहो—यही तुमसे प्रार्थना है । विश्वास उत्पन्न कर मेने मृगाङ्कावली से कहा—अरी सखि मृगाङ्कावलि ! इस वासगृह में कामदेव प्रकट

(विनीतोपनतया मया तथेति प्रतिपन्नम् । कथित च मे तेन यथा एष यो मृगाङ्कवर्मा सा मृगाङ्कावली, ता परिणीय श्रीयुवराजेन चक्रवर्तिना भवितव्य, तस्मात् त्वया ननु कदाचिद्‌भवनभित्तिसञ्चारे वासगृहे एषा वासयितव्या, येन देवस्य स्वप्ना-वगमो भवति, कार्यान्तराणि ते हरदास कथयिष्यति । एतस्मिन् महाराजकार्यरहस्ये त्व तस्या प्रियसखी राजकार्यसज्जेति अभ्यर्थ्यसे । न खलु सोपानपक्तिमन्तरेण बलभीसमारोह । ततो मया हरदासकथितकार्यानुसारेण सा सुविस्रब्ध भणिता, अयि सखि मृगाङ्कावलि । इह वासगृहे मकरध्वजोऽवतरति, तञ्च तस्मिन् दृष्ट्वा कण्ठस्थितहारकुसुमदाम्ना स त्वयाऽर्चितव्य , येन ते तादृशो भर्ता भवतीति । तयापि तथाऽभ्युपगत कृतञ्च । पुनर्दोलाया दर्शिता, केलिकैलासवासगृहस्फटिकभित्तिषु आत्मनश्चित्र लेखिता, स्फटिकभित्ते परतो दर्शिता, तदनुवादिनी शालभञ्जिका निर्मापिता, रत्नवत्याञ्चतुष्किकाया कन्दुकेन खेलिता । स्तम्भगर्भसञ्चारे तत्तद्‌भणिता भ्रामिता च)

सुल०—अध त विविहविलासेहि पेक्खतेण महाराएण कि पडिवण्ण । (अथ ता विविधविलासै पश्यता महाराजेन कि प्रतिपन्नम् ।)

विच०—ज केलिअरिणी चाडुक्कमे चलिदो अरण्णकरी पडिवज्जस्सदि । तदो तरुणपोफुल्लगुच्छविच्छुरिददविडसामलङ्गीगडविसदासु सुद्धजामिणीसु असम-जस विप्पलवदि त जधा । (यत् केलिकरिणीचाटु क्रमे चलितोऽरण्यकरी

होते है । उनका दर्शन पाने पर अपना कण्ठस्थित हार चढा कर उनकी अर्चना करना—जिससे उन्ही जैसा तुम्हे पति मिले । उसने भी अङ्गीकार कर लिया और वैसा ही किया । फिर झूले पर महाराज को अपना दर्शन दिया, केलिकैलास नामक वासगृह की स्फटिकमय दीवारो पर अपना चित्र चित्रित कराया । (तदनन्तर) स्फटिक की दीवार की आड मे दर्शन दिया । अपने रूप से सर्वथा मिलती-जुलती शालभञ्जिका निर्मित कराई । रत्नावली की चौकी पर उसने कन्दुक-क्रीडा की । स्तम्भगर्भसचार गृह मे विविध बाते कहलाई गई और घुमाई गई ।

सुल —इसके अनन्तर अनेक प्रकार के विलास (हाव-भाव) करती देखकर महाराज ने क्या किया ?

विच.—क्रीडाहस्तिनी की चाटुकारिता मे वन्यहस्ती जो करता है । इसके बाद पूर्ण विकसित पुष्पो के गुच्छो से दीप्त द्रविड देश की सॉवली सुन्दरी के कपोलो केसमान उज्ज्वल स्वच्छ रातो मे महाराज प्रलाप करने लगे । जैसे—

प्रतिपत्स्यते । ततस्तरुणप्रोत्फुल्लगुच्छविच्छुरितद्रविडश्यामलाङ्गीगण्डविशदासु शुद्धयामिनीषु असमञ्जस विप्रलपति । तद् यथा ।)

(सस्कृतमाश्रित्य)

श्यामां श्यामलिमानमानयत भो सान्द्रैर्मषी-कूर्चकै-
र्मन्त्र तन्त्रमुत प्रयुज्य हरत श्वेतोत्पलाना रुचम् ।
चन्द्र चूर्णयत क्षणाच्च कणश कृत्वा शिलापट्टके
येन द्रष्टुमह क्षमे दश दिशस्तद्वक्त्रमुद्राङ्किता ॥ १ ॥

सुल०—तीए उण का अवत्था वट्टदि । (तस्या पुन काऽवस्था वर्तते ?)

विच०—(सस्कृतमेवाश्रित्य)

सौधादुद्विजते त्यजत्युपवन द्वेष्टि प्रभामैन्दवी-
मारात् त्रस्यति चित्रकेलिसदसो वेश विष मन्यते ।
आस्ते केवलमब्जिनीकिसलयप्रस्तारशय्यातले
सकल्पोपनमत्तदाकृति-रसायत्तेन चित्तेन सा ॥ २ ॥

(सस्कृत में)

अरे प्रगाढ कालिख से भरी तूलिका से कृष्ण पक्ष की रात को और अधिक काली बना दो अथवा तन्त्र-मन्त्र का प्रयोग कर श्वेत कमलो की मनोहरता को दूर कर दो । क्षण भर में चन्द्रमा को शिला पर पटक कर चूर-चूर कर पीस डालो, जिससे मैं दसो दिशाओ को उस सुन्दरी की मुख-मुद्रा से अङ्कित देख सकूँ ॥ १ ॥

सुलक्षणा—उस (मृगाङ्कावली) की क्या दशा है ?

विचक्षणा—(सस्कृत में)

महल से उद्विग्न हो जाती है, उपवन को भी छोडती है, चन्द्रमा की प्रभा से द्वेष करती है, चित्र-केलि नामक वासगृह से भी बहुत दु खी होती है, वस्त्राभूषण को विष सा समझती है । केवल कल्पनाओ से तथा उस महाराज के रूप का ध्यान करती हुई कमलिनी के कोमल पत्तो से बनी शय्या पर पडी रहती है ॥ २ ॥

सपद तुम कहेहि कीदिस ते महिलाछग्गुण्ण (साम्प्रत त्व कथय कीदृशन्ते महिलाषाड्गुण्यम्)

सुल०—सुणु जादिस। एक्कदाह महाराएण सप्पसाद सदिट्ठा, जधा, ण तुए णिभिण्णरहस्सा देवी कादव्वत्ति। (शृणु यादृशम्। एकदा अह महाराजेन सप्रसाद सन्दिष्टा, यथा न त्वया निर्भिन्नरहस्या देवी कर्त्तव्येति।)

विच०—कि विअ त। (किमिव तत्।)

सुल०—जहा, अलिअविवाहविलक्खो चाराअणो देवी धात्तेइअ पदारिदुमिच्छदि। ता दिणावसाणसमए तरुणवणराइनीरधअघआरे केसरतरुसिहर आरुहिअ पमदुज्जाणमज्झगामिणी मेहला तए साणुणासिअ भणिदव्वा, जहा अयि मेहले! इह वेसाहपुण्णिमा पओसे एव तुए मरिदव्वति। भणिदा अ स। (यथा अलीकविवाहविलक्षणश्चारायणो देवी धात्रेयी प्रतारयितुमिच्छति। तव दिनावसानसमये तरुणवनराजिनीरन्ध्रान्धकारे केसरतरुशिखरमारुह्य प्रमदोद्यानमध्यगामिनी मेखला त्वया सानुनासिक भणितव्या। यथा, अयि मेखले! इह वैशाखपूर्णिमा-प्रदोष एव त्वया मर्तव्यमिति। भणिता च सा।)

विच०—तदो तदो। (ततस्तत।)

अब तुम्हारा स्त्रियोचित षाडगुण कैसा है? बताओ।

सुल.—जैसा है सुनो। एक बार महाराज ने मुझसे प्रसन्न होकर कहा कि देवी को रहस्य का पता न चलने पाये।

विच—महराज ने तुम्हे क्या बताया?

सुल—मिथ्या विवाह से अप्रसन्न चारायण देवी की धात्री की लडकी को छलना चाहता है। तो तुम सायकाल के समय तरुण-वन के घने अधकार मे मौलसरी वृक्ष के शिखर पर चढकर प्रमदोद्यान के अन्दर जाती मेखला से सानुनासिक स्वर मे कहना—"मेखले! इसी वैशाख पूर्णिमा की शाम को ही तू मर जायगी"। और ऐसा मैने उससे कहा।

विच.—इसके बाद।

सुल—तदो तीए सज्झसवसवेविदए कह वि तत्त हविअ कदणिविडञ्जलिसपुडाए भणिद, भअवदि असरीरिणि दिव्वे वाणि । म अणुकपतीए जधा मरण तुए जाणिद जीविद वि मे जाण । (ततस्तया साध्वस वशवेपितया कथमिव तत्र भूत्वा कृतनि-विडाञ्जलिसम्पुटया भणित, भगवति अशीरीणि दिव्ये वाणि, मामनुकम्पयन्त्या यथामरण त्वया ज्ञात जीवितमपि मे जानीहि ।)

विच०—तदो तदो । (ततस्तत ।)

सुल०—तत्थ मए एव्व भणित, जइ गधव्ववेअविअक्खण बह्मण गुरुणा अञ्चणा-सक्कारेण अहिणदिअ पाएसु पउती जघन्तरमग्गदुवारेण सञ्जरसि तदो दे जीवि-तावलबोत्ति । (तत्र मयैव भणितम्, यदि गन्धर्ववेदविचक्षण ब्राह्मण गुरुणाऽर्चनासत्कारेणाभिनन्द्य पादयो पतन्ती जङ्घान्तरमार्गद्वारेण सञ्चरसे ततस्ते जीवितावलम्ब इति ।)

विच०—अहो दे विअक्खणत्तण । जदो मुणिणो वि एव सुमरति, पादाहितो बह्मणा पवित्तअति सव्व (विभाव्य) अहो कवडपाउअ कइत्तण बह्मणस्स । तदो ? (अहो ते वैचक्षण्यम् । यतो मुनयोऽप्येव स्मरन्ति पादेभ्यो ब्राह्मणा पवित्रयन्ति सर्वम् । अहो कपटनाटककवित्व ब्राह्मणस्य ।)

सुल.—तब भय से कम्पित उसने किसी तरह वहॉ रुककर दोनो हाथ जोडकर कहा—हे भगवति अशरीरिणि दिव्ये वाणि । मुझ पर अनुकम्पा कर । तुमने जिस प्रकार मेरे मृत्यु को जान लिया उसी प्रकार मेरे जीवन के बारे मे भी बताओ ।

विच—इसके बाद ।

सुल—तब मैंने कहा—पूजा-अर्चना से गन्धर्व वेद के ज्ञाता ब्राह्मण को प्रसन्न कर—चरणो पर गिरती हुई जॉघो के बीच से निकल जाओ तो तुम्हारा जीवन सुरक्षित है ।

विच.—तुम्हारा भी कैसा नैपुण्य है । मुनि लोग भी कहते है कि ब्राह्मण पैरो से पवित्र करते है । (सोचकर) अहो । ब्राह्मण ने भी कैसा कपट नाटक किया ।

सुल०—तदो त सुणिअ मेहलाए अस्सुझलज्झलाइ उव्वमन्तीए महाराअपुरदो एव्व भणिदा देवी । देवेण वि देवी मण्णु अवहरतेण चारायणचरिद अ णिव्वहतेण भणिद, जह सुदरि ! मा सण्णा होहि, गधव्ववेअविअक्खणो बह्मणो साहीणो एव्व । ता किति अस्सुकणकरबिअबिबाहरा बट्टसित्ति सट्ठाविदा देवी । देवीए वि अज्जा सा पुण्णिमेत्ति पुआसक्कार सज्जीकादु पेसिदह्मि । (ततस्तच्छ्रुत्वा मेखलयाऽश्रुझल-ज्झलान्युद्वमन्त्या महाराजपुरत एव भणिता देवी । देवेनापि देवी-मन्युमपहरता चारायणचरित च निर्वहता भणित, यथा, सुन्दरि, मा सन्ना भव, गन्धर्ववेदविचक्षणो ब्राह्मण स्वाधीन एव । तस्मान् किमिति अश्रुकणकरम्बितविम्बाधरा वर्तस इति सस्थापिता देवी । देव्यापि अद्य सा पूर्णिमेति पूजासत्कार सज्जीकर्तु प्रेषितास्मि ।)

विच०—ता एहि जधाणिदिट्ठमणुचिट्ठस्सह्म । [इति निष्क्रान्ते ।] (तस्मादेहि यथा-निर्दिष्टम् अनुष्ठास्याव ।)

इति प्रवेशक

(तत प्रविशति विरहोत्कण्ठितो राजा स्नानशुचिर्विदूषकश्च)

राजा—(अनुध्याननाटितकेन)

सुल—इसके बाद ऑसुओ की झरझरा के साथ मेखला ने महाराज के सामने ही महारानी से सब बाते कही । महाराज ने भी महारानी का क्रोध दूर करते हुए एव चारायण के चरित का निर्वाह करते हुए कहा—सुन्दरि ! दु खी मत हो । गन्धर्व वेद का ज्ञाता ब्राह्मण तो अपने पास ही है । तो क्यो अपने विम्ब-फल के समान लाल अधर को ऑखो से गिरते अश्रु-कण से सयुक्त करती हो । इस प्रकार महाराज ने महारानी को आश्वासन दिया । तो आज वही पूर्णिमा है अतएव महरानी ने पूजा-सामग्री तैयार करने के लिए मुझे भेजा है ।

च—तो आओ निर्देशानुसार हम अपना काम करे । (दोनो निकल गई ।)

(प्रवेशक समाप्त हुआ)

(इसके बाद विरह से उत्कठित राजा और स्नान किए हुए विदूषक)

राजा—(ध्यान का अभिनय कर)

क्रमसरलितकण्ठप्रक्रमोल्लासितोर-
स्तरलितवलिरेखासूत्रसर्वाङ्गमस्या ।
स्थितमतिचिरमुच्चैरग्रपादाङ्गुलीभि
करकलितसखीकं मा दिदृक्षो स्मरामि ॥ ३ ॥

विदूषक—मा समाधानभग मे कुण, देवीपुरदो मेहला जीवइदव्वा । (स्वगतम्) अइ दुट्ठदासि । दोसिणि कुद्धो चाराअणो पीडइस्सदि । (मा समाधानभङ्ग मे कुरु । देवीपुरतो मेखला जीवयितव्या । अयि दुष्टदासि, दोषिणि, क्रुद्धश्चारायण पीडयिष्यति ।)

राजा—(तद्वचनमाकर्ण्य तदवे पुन पठति)

विदूषक—मा पुणो पुणो सुमर, सदावदाइणी क्खु एसा । (मा पुन पुन स्मर, सन्तापदायिनी खल्वेषा ।)

राजा—किमात्थ सन्तापकारिणीति ? तथा हि पञ्चमकाकलीकलगीतय कर्ण कलुषयन्ति, सुधास्यन्दिनी चन्द्रमूर्तिश्चक्षुषी तापयति, चन्दनरसनिष्यन्दस्तनु दहति ?

मुझे देखने की इच्छुक उस सुन्दरी को मै सोत्कण्ठ स्मरण करता हूँ । मुझे देखते समय उसने क्रम से पहले गर्दन सीधी की, जिससे उर प्रदेश ऊँचा हो गया एव वलिरेखा-सूत्र भी तरलित हो गया । हाथ से सखी को पकडे एव पैरो के पजो के ऊपर खडी होकर वह बडी स्थिरता से मुझे देखने लगी ॥ ३ ॥

विदूषक—मेरा ध्यान भङ्ग मत करो । मुझे महारानी के सामने 'मेखला' को जीवन प्रदान करना है । अयि दुष्टदासी ! अपराधिनी ! क्रुद्ध चारायण तुम्हे कष्ट देगा ।

राजा—(उसके वचन को सुनकर पुन उसी श्लोक को पढता है)

विदूषक—बार-बार उसी का स्मरण मत करो । वह तो अत्यधिक सन्ताप प्रदान करने वाली है ।

राजा—क्यो सन्तापकारिणी कहते हो ? क्या कोयल का पञ्चमस्वर-पूर्ण गान कानो का कलुषित करता है—कानो को अच्छा नही लगता ?, क्या अमृत

विदूषक—भो वककर मए कहिद, तुम जेव्व सव्वदो सार उच्चिणसि । हसो जेव्व जलेहि दुद्धमुद्धरेदि । कि उण भणामि, मए अज्झअणविज्जा विअ तुए विसुमरिदा देवी । (भो, वक्र मया कथितम्, त्वमेव सर्वस्मात् सारम् उच्चिनोषि । हस एव जलेभ्यो दुग्धमुद्धरति । किं पुनर्भणामि, मया अध्ययनविद्येव त्वया विस्मृता देवी ।)

राजा—आ शैशवात् प्ररूढप्रणया देवी कथ विस्मर्यते ? किन्तु—

देव्या निधायोरसि वामपाद यत् सुन्दरीभि प्रसभेन भक्तम् ।
कृत मनोरिक्थमहो द्विधा तत्तथा विभज्य स्मरशासनेन ॥ ४ ॥

विदू०—अकह्मा हिदोलदोलिद विअ दे चित्त गमागमाहिं ण विरमदि । (अकस्माद्दोलान्दोलितमिव त्वच्चित गमागमाभ्या न विरमति ।)

राजा—एवमेतत् । यत —

बरसाने वाले चन्द्रमा का रूप नेत्रो को जलाता है ? क्या चन्दन रस का लेप शरीर मे दाह पैदा करता है ?

विदूषक—अरे मै तो मजाक कर रहा था । तुम्ही तत्त्व-चयन करना जानते हो । हस ही जल से दूध अलग करता है । अच्छा मै कहता हूॅ मेरी पढी विद्या की भॉति महारानी को तुमने क्यो भुला दिया ?

राजा—शैशव काल से ही बढे हुए प्रेमवाली देवी कैसे भुलाई जा सकती है ? किन्तु

देवी के हृदय पर बायॉ पैर रख उस सुन्दरी ने कामदेव के आदेश से मेरे मनरूपी सपत्ति का बॅटवारा कर दो भाग कर दिया ॥ ४ ॥

विदूषक—अकस्मात् झूले पर चढा हुआ सा तुम्हारा चित्त इधर-उधर जाने से विराम नही लेता ।

राजा—ऐसा ही है । क्योकि—

नो मालतीदामविमर्दयोग्य
न प्रेम नव्य सहतेऽन्तरायम् ।
म्लानापि मोच्या न हि केसरस्रग्
देवी न खण्डा प्रणया कथञ्चित् ॥ ५ ॥

विदू०—भो, किं एदेण दक्खिण्णवण्णोवण्णासेण ? पुराणपत्तमणिप्फालिअ णो पल्लओ समुल्लसदि । ण अ तरुणगठिवण्णअकदलीक वलणलुद्धो गधहरिणो मदणकेदारिआए अहिरमदि । (भो किम् एतेन दाक्षिण्यवर्णोपन्यासेन, पुराणपत्रम-विदार्य न पल्लव समुल्लसति, न च तरुणग्रन्थिपर्णकन्दलीकवलनलुब्धो गन्धहरिणो मदनकेदारिकायाम् अभिरमते ।)

राजा—सखे । निरर्गलवागसि । यदनाशङ्कनीय तदाशङ्कसे ।

विदू०—कि मम परकेरआए चिन्ताए । ता भणीअसि, मा समाधानभग मे कुण, देवीए पुरदो मेहला जीवइदव्वत्ति । (कि मम परकीयया चिन्तया । तस्मात् भण्यसे, मा समाधानभङ्ग मे कुरु । देव्या पुरतो मेखला जीवयितव्येति ।)

(तत प्रविशति देवी, प्रयता च मेखला, विभवतश्च परिवार)

मालती की माला मसलने योग्य नही । अभिनव प्रेम व्यवधान नही सहता । म्लान होते हुए भी मौलसिरी की माला नही छोडी जाती । महरानी जी से किसी प्रकार भी प्रेम तोडा नही जा सकता ॥ ५ ॥

विदूषक—इन चातुर्यपूर्ण वचनो से क्या ? बिना पुरा पत्ता नष्ट किए पल्लव नही निकलता है, नवीन ग्रन्थिपर्ण के अङ्कुरो को खाने का लोभी कस्तूरीमृग धतूरे की क्यारी मे नही भ्रमण करता ।

राजा—तुम निरर्गल बाते करते हो । जिसकी शका नही करनी चाहिए—उसी की शङ्का करते हो ।

विदूषक—मुझे परायी चिन्ता से क्या ? इसीलिए तुम से कहता हूँ कि मेरा ध्यान भङ्ग मत करो । महारानी के सामने 'मेखला' को मुझे जीवन प्रदान करना है ।

(तदनन्तर देवी, मेखला तथा अनेक परिजन)

देवी—हला सुलक्खणे । अपि सणिहिदो अतेउरदुवारवट्टी अज्जउत्तो चाराअणो अ । (हला सुलक्षणे । अपि सन्निहितोऽन्त पुरद्वारवर्ती भर्ता चारायणश्च ।)

सुलक्षणा—ण अण्णहा देवीए विण्णवीअदि ? (नान्यथा देव्यै विज्ञाप्यते ?)

देवी—ता देहि मे मग्ग । (तस्माद्देहि मे मार्गम् ।)

सुल०—एदु एदु देवी । (इति परिक्रामति) अन्तेउरदुवार एव्व भट्टा वट्टदि, ता उवसप्पदु देवी । (एतु एतु देवी, अन्त पुरद्वार एव भर्ता वर्तते, तमादुपसर्पतु देवी ।)

देवी०—(अपसृत्य) जेदु अज्जउत्तो । (जयतु आर्यपुत्र ।)

राजा—इत आस्यताम् ।

देवी—(उपविश्य विदूषक प्रति) अज्जचाराअण । देसु मे धत्तेइआभिक्खा जीवावेसु मेहलअ । (आर्य चारायण । देहि मे धात्रेयिकाभिक्षा, जीवय मेखलाम् ।)

विदू०—एस सज्जोह्मि । (एष सज्जोऽस्मि ।)

देवी—सुलक्षणे । क्या स्वामी और चारायण अन्त पुर के द्वार के पास आ गये ?

सुलक्षणा—देवी से असत्य नही कहा जाता ।

देवी—तो मार्ग बताओ ।

सुलक्षणा—आइये । आइये । स्वामी अन्त पुर के द्वार पर ही है, तो देवी जी चले ।

देवी—(निकट जाकर) आर्यपुत्र की जय हो ।

राजा—इधर बैठिये ।

देवी—आर्य चारायण । धात्री-पुत्री की मुझे भीख दो । इसे जिलाओ ।

विदूषक—यह मै तैयार हूँ ।

मेखला—(बद्धाञ्जलि) अज्ज चाराअण ! अअ जणो तुम महाबह्मण सरण पडिवज्जदि । (आर्य चारायण ! अय जनस्त्वा महाब्राह्मण शरण प्रतिपद्यते ।) **[इति पादौ शिरस्यारोपयति ।]**

(नेपथ्ये) कहि सा दुट्ठदासी, एदे अह्मे कालपुरिसा सिखलाहि पाविआ । (क्व सा दुष्टदासी, एते वय कालपुरुषा शृङ्खलाभि प्राप्ता ।)

विदू०—(भीत्वा बहुविध दण्डकाष्ठमुद्यम्य) जहि अह पिङ्गलिआवल्लहो गन्धव्ववेअविअक्खणो रक्खको चिट्ठामि । तहि को कालो के कालपुरिसा का वा कालसिखला । (यत्राह पिङ्गलिकावल्लभो गन्धर्ववेदविचक्षणो रक्षकस्तिष्ठामि तत्र क काल, के वा कालपुरुषा, का वा कालशृङ्खला ?) **[इति बहुविध वल्गति ।]**

मेखला—(पादयोरन्तरे प्रविशन्ती) भो ! परित्ताअसु म । (भो, परित्रायस्व माम् ।)

विदू०—(उच्चैर्गायन्नपवार्य) भो पेक्ख विलासिणीबह्मरहाहिरुढ अत्तणो प्पिअवअस्स । **(किञ्चिदुच्चै)** भो भो पेक्खधमे बह्मणत्तण जेण खलाखलायिदसिखला पणट्ठा काल-पुरिसा । (भो पश्य विलसिनीब्रह्मरथाधिरूढम् आत्मन प्रियवयस्यम् । भो भो, पश्यत मे ब्राह्मण्य यत् खलाखलायितशृङ्खला प्रनष्टा कालपुरुषा ।)

मेखला—(हाथ जोडकर) आर्य चारायण ! यह जन आप महाब्राह्मण की शरण मे है । (ऐसा कह उसके चरणो को शिर पर रख लेती है ।) (नेपथ्य मे) वह दुष्टदासी कहॉ है । ये हम काल-पुरुष शृङ्खला लिये आ गए है ।

विदूषक—(उठकर लाठी तानकर) जहॉ मै पिङ्गलिका का स्वामी और गन्धर्ववेद का विद्वान रक्षक हूँ, वहॉ काल क्या है ? कालपुरुष क्या है ? काल शृङ्खला क्या है ? (इस तरह बहुविध [illegible] ।)

मेखला—(उसे पैरो के बीच प्रवेश करती हुई) अरे मुझे बचाओ ।

विदूषक—(जोर से गाता हुआ, टोककर)

अरे वेश्यारूपी ब्रह्मरथ पर चढे अपेन मित्र को देखो । (कुछ जोर से) मेरा ब्राह्मणत्व देखो ! खनखनाती शृङ्खला वाले कालपुरुष गायब हो गए ।

मेखला—भो जीविदह्मि । (भो जीवितास्मि)

विदू०—(सास्फोट विहस्य) आ दासीए सुदे ! अलीअविवाहविडम्बिदो क्कुद्धो चाराअणो दे पडिकिदिववसिदो । ता सपद एत्तिअमेत आससे दीहमभग्गककणा भेदु मे वह्मणी । (आ दास्या सुते ! अलीकविवाहेन विडम्बित क्रुद्धश्चारायण ते प्रतिकृतिव्यवसित । तस्मात् साम्प्रतमेतावन्मात्रमाशसे दीर्घमभग्नकङ्कणा भवतु मे ब्राह्मणी ।)

देवी—अज्जउत्त ! जुत्त ण असरिस णम्म, ज दाणी दे पिआसिणिहभूमी मेहला एव विडवीअदि । (आर्यपुत्र ! युक्त न, असदृश नर्म, यदिदानीन्ते प्रियास्नेहभूमिर्मेख-लैव विडम्ब्यते ।)

विदू०—भोदि जुत्त ण असरिस णम्म, ज दाणी महाराअपिअवअस्सो तह विड-बिदो । (भवति, युक्त न असदृश नर्म, यदिदानी महाराजप्रियवयस्य तथा विड-म्बित ।)

देवी०—अज्जउत्त-सवधिओ त्ति तुए सह वक्कर किद । (आर्यपुत्रसम्बन्धिक इति त्वया सह वक्र कृतम् ।)

विदू०—भोदि सबधिणी त्ति तए सह मए पडिवक्कर किद । (भवति, सम्बन्धिनीति तया सह मया प्रतिवक्र कृतम् ।)

मेखला—अरे ! मै जीवन पा गई ।

विदूषक—(अट्टहास के साथ हँसकर) अरे दासी-पुत्रि ! मिथ्या-विवाह से तिरस्कृत क्रुद्ध चारायण ने बदला ले लिया । तो इस समय इतनी ही अभिलाषा करता हूँ कि मेरी ब्राह्मणी चिर सौभाग्यवती हो ।

देवी—आर्यपुत्र ! यह तो उचित नही है, यह दिल्लगी अच्छी नही है, जो इस प्रकार अभी तुम्हारी प्रिया की स्नेह-पात्र मेखला अपमानित की गई ।

विदूषक—श्रीमति ! यह उचित नही, यह दिल्लगी अच्छी नही, जो अभी अभी महाराज का प्रियमित्र उस तरह अपमानित किया गया ।

देवी—तुम आर्यपुत्र से सम्बन्ध रखते हो, अत मैने उसके साथ बदले मे मजाक किया ।

विदूषक—श्रीमती जी ! वह आपकी सम्बन्धिनी है अत मैंने उसके साथ बदले मे मजाक किया ।

मेखला—देवि, ण सक्कीअदि एस उत्तरेहि पराजेदु महाराओ एदस्स गुरु । केअइकुसुमवासिदस्स खदिरस्स अण्णो गधुग्गारो । (देवि । न शक्यते एष उत्तरै पराजेतु, महाराज एतस्य गुरु । केतकीकुसुमवासितस्य खदिरस्यान्यो गन्धोद्गार ।)

(देवी कोपनाटितकेन सपरिवारा निष्क्रान्ता)

विदू०—(पार्श्वमवलोक्य) भो सपद णिम्मक्खिअ महु पिबस्सामो । (भो साम्प्रत निर्मक्षिक मधु पास्याम ।)

राजा—अतिविलक्षा देवी, यतो रुदती गता ।

विदू०—रुददु रुददु, कि से मोतिआओ गलिस्सति । ता इदो उज्जाणाहिमुह एदु पिअवअस्सो । **[इति परिक्रामत ।]** (रोदितु, रोदितु, किम् अस्या मौक्तिकानि गलिष्यन्ति । तस्मादित उद्यानाभिमुखम् एतु प्रियवयस्य ।)

विदू०—भो मह कण्ठट्ठाविदपाणी मसिणणिवेसिदपादमुद सचर । जदो वहलालिउलणिम्मिद व, तैलमज्जिदकज्जलपुजसजणिद व, इदणीलचुण्णसभूद व, सिदिकण्ठकण्ठसमुत्थिद व, णाराअणतणुबिणिग्गड व, मिअककलकणिग्गलिद व, कुवलअवणपरिकप्पिड व, करिकरटतडदाणप्पवट्टिद व, तिमिरचक्कवाल अणभि-ण्णादसमविसम अणिच्चिदसामधवल, अपरिच्छिण्णलहुदीह अणधिगददिअहर-

---

मेखला—देवी । यह उत्तरो से पराजित नही हो सकता । महाराज इनके गुरु है । केतकी के पुष्पो से सुवासित खदिर की एक विचित्र ही गन्ध होती है ।

(देवी क्रोध का अभिनय करती परिजन समेत चली गई)

विदूषक—(बगल की ओर देखकर) भो अब इस एकान्त मे मधु पियेगे ।

राजा—देवी अत्यन्त क्रुद्ध है—क्योकि रोती हुई गई है ।

विदूषक—रोये और रोये । क्या रोने से मोती गिर जॉयगे ? तो प्रियमित्र उद्यान की ओर आये ।

अरे । मेरे गले मे हाथ डालकर धीमे-धीमे सँभालकर पैर रखते हुए चलो क्योकि अन्धकार इतना बढ गया है कि मानो असख्य भौरो के समुदाय से इसका निर्माण हुआ है अथवा तेल से भुने काजल-पुञ्ज से उत्पन्न हुआ है, अथवा चमकीले

त्तिमाअ अ भुवण गब्भग्गण करेइ । (भो, मम कण्ठस्थापितपाणिर्मसृणनिवेशित-पादमुद्र सञ्चर । यतो बहलालिकुलनिर्मितमिव तैलभर्जितकज्जलपुञ्जसञ्जनितमिव इन्द्रनीलचूर्णसभूतमिव शितिकण्ठकण्ठसमुत्थितमिव नारायणतनुविनिर्गतमिव, मृगाङ्ककलङ्कनिर्गलितमिव, कुवलयवनपरिकल्पितमिव, करिकरटतटदानप्रवर्तित-मिव तिमिरचक्रवालम् अनभिज्ञातसमविषमम् अनिश्चितश्यामधवलम् अपरिच्छि-न्नलघुदीर्घम् अनधिगत- दिवसरात्रिभागञ्च भुवनगर्भाङ्गण करोति ।)

राजा—एवमेतत् ।

तनुलग्ना इव ककुभ क्ष्मावलय चरणचारमात्रमिव ।
वियदपि चालिकदघ्न मुष्टिग्राह्य तम कुरुते ॥ ६ ॥

मरकत मणियो के चूर्ण से प्रकट हुआ है अथवा शिवजी के कण्ठ से उत्पन्न हुआ है, अथवा विष्णु भगवान के शरीर से निकला हुआ है अथवा चन्द्रमा के कलङ्क से पिघल कर प्रवाहित हुआ है, अथवा नीले कमलवन से रचा गया है अथवा हाथियो के गण्डस्थल के मदजल से बनाया गया है । इस अन्धकार से ससार का आन्तरिक भाग इतनी बुरी तरह आच्छादित है कि सम-विषम भूमि का ज्ञान नही हो रहा है, काले और श्वेत का निश्चय नही हो पा रहा है, छोटे और बडे मे भेद नही मालूम पड रहा है और दिन है या रात, इसका पता नही चल पा रहा है ।

राजा—सही है, ऐसा ही है ।

अन्धकार ने दिशाओ को शरीर के पास ला दिया है, पृथ्वीमण्डल को एक पग भर का सा कर दिया है । आकाश को भी मुट्ठी मात्र से ग्रहण करने योग्य बना दिया है ॥ ६ ॥

निर्भयतापूर्वक अभिसार की इस सन्ध्या मे मयूर की पूँछी का कर्णफूल, मरकतमणि के ककणो से श्यामल भुज-दण्ड, गहरे रग के इन्द्रनील मणियो का हार, कस्तूरी के रस का लिप्त मुख-मण्डल, सिरपर नीलकमलो की धारण की गई माला, नीले वस्त्र का धारण करना आदि—मृगनयनियो की यह वेष-रचना मानो प्रगाढ तिमिर की सखी है—उसके अत्यन्त अनुकूल है ॥ ७ ॥

(किञ्चित्तर्कयामि)

उत्तंस केकिपिच्छैर्मरकतवलयश्यामले दो प्रकाण्डे
हार. सान्द्रेन्द्रनीलैर्मृगमदरचितो वक्त्रपत्रप्रपञ्च ।
नीलाब्जै शेखरश्रीरसितवसनता चेत्यभीकाभिसारे
सप्रत्येणेक्षणाना तिमिरभरमसखी वर्तते वेष-रेखा ॥ ७ ॥

(नेपथ्ये)

कढ्ढिदुद्धमुद्धकरतरलिअजलणिहिसलिलसचओ
तिहुवणभवणविच्छुरणच्छसुहारसधवलकुच्चओ ।
चदो मअणवल्लिपल्लवणमहो सहि सरिसलोहणओ
पूर्व्वदिसामुहम्मि उम्मिलइ चन्दणपङ्कलिलोव्व ललिओ ॥ ८ ॥

(क्वथितदुग्धमुग्धकरतरलितजलनिधिसलिलसञ्चय-
स्त्रिभुवनभवनविच्छुरणाच्छसुधारसधवलकूर्चक ।
चन्द्रो मदनवल्लीपल्लवनमहो सखि सदृशज्योत्स्न
पूर्वदिशामुखे उन्मीलति चन्दनपङ्कलिलइव ललित ॥ ८ ॥)

अपि च—

जाणाणदो चदो लसइ मलिणीहोइ पालिणी
विसप्पन्ते तारा रअणिसिरिहारा दिसि दिसि ।

(नेपथ्य मे)

कुछ-कुछ बिलोये हुए दूध की भॉति स्वच्छ किरणो से समुद्र की जल-राशि की चचल कर देने वाला, त्रिभुवन भवन को पोतने के लिए स्वच्छ सुधारस का श्वेत कॅूची वाला, काम-लता को पल्लवित करने वाला, ज्योत्स्ना को साथी सा बनाए हुए, पूर्वदिशा के मुख पर चन्दन-रस की राशि का ललित चन्द्रमा उदित हो रहा है ॥ ८ ॥

और भी—

लोगो को आनन्द देने वाला चन्द्रमा शोभायमान है, कमलिनी मलिन हो रही है, रजनी के शृङ्गारार्थ मुक्तामाला रूप तारा-गण प्रत्येक दिशा मे बहुत धीरे-धीरे

रहंगा तत्तगा विरह-सिहिणा दद्धविहिना
इमे दुक्खक्कता ससिकरकिलता विहडिदा ॥ ९ ॥

(जनानन्दश्चन्द्रो लसति मलिनीभवति नलिनी
विसर्पन्ति तारा रजनीश्रीहारा दिशि दिशि ।
रथाङ्गस्तप्ताङ्गा विरहशिखिना दग्धविधिना
इमे दु खाक्रान्ता शशिकरक्लान्ता विघटिता ॥ ९ ॥)

(पुनर्नेपथ्ये)

ये पूर्व यवसूचिसूत्रसुहृदो ये कैतकाग्रच्छद-
च्छायासाम्यभृतो मृणाललतिकालावण्यभाजोऽत्र ये ।
ये धाराम्बुबिडम्बिन क्षणमथो ये तारहारश्रिय-
स्तेऽमी स्फाटिकदण्डडम्बरजितो जाता सुधांशो करा ॥ १० ॥

अपि च—

सद्यश्चन्दनपङ्कपिच्छिलमिव व्योमाङ्गण कल्पयन्
पश्यैरावतकान्तदन्तमुसलच्छेदोपमेयाकृति ।
उद्गच्छत्ययमच्छमौक्तिकलताप्रालम्बलम्बै करै.
कान्ताना स्मरलेखवाचनकलाकेलिप्रदीप शशी ॥ ११ ॥

चल (हिल) रहे है । दुर्दैववश वियुक्त, विरहाग्नि से तप्त शरीर, दु खाक्रान्त ये चक्रवाक पक्षी चन्द्रमा के करो (किरणो, हाथों) द्वारा क्लान्त हो रहे है ॥ ९ ॥

(पुन नेपथ्य में)

चन्द्रमा की किरणे जो पहले केतकी के पल्लव के समान कुछ ही देर बाद पद्मलता के समान । पुन जलप्रवाह की शोभा को धारण करने लगी । क्षण भर मे वह शोभा मुक्ताहार की सी हो गई, और अब वे बढते-बढते स्फटिक मणि से निर्मित दण्ड की शोभा को मात करने लगी ॥ १० ॥

और भी—तुरन्त आकाश-मण्डल को चन्दन-पङ्क से चिकना करता हुआ, वशीभूत ऐरावत के स्थूल दाँतो के खण्ड के समान, प्रेमियो के काम-पत्र को पढ़ने के लिए केलि दीपक-सा चन्द्रमा मोती की लडी के समान लम्बी किरणो सहत उदित हो रहा है ॥ ११ ॥

विदू०—एसा कलअठी णाम देवीए णट्टाअरिणी, ताए वअणादो सुणिअ चदोदयहोआवली कप्पूरचडणामधेयो देवस्य मागधो अहिणदेदि मिअकुज्जोवलच्छि वण्णिदु, ता मम विच्छुरदि तुडकडू अह पि वण्णिस्स ससिगोलआहिगलिदो जोण्हाघडिआरसो समीकुणइ णक्खत्तक्खरवलअ णह-फलए तिमिर-कज्जलए। (एषा कलकण्ठी नाम देव्या नाट्यकारिणी, तस्या वदनाच्छ्रुत्वा चन्द्रोदयभोगावलि कर्पूरचण्डनामधेयो देवस्य मागधोऽभिनन्दति मृगाङ्कोद्योतक्ष्मी वर्णयितुम्। तस्मान्मम विच्छुरति तुण्डकण्डू अहमपि वर्णयिष्यामि। शशिगोलकाभिगलितो ज्योत्स्नाघटिका रस समीकुरुते नक्षत्राक्षरवलय नभ फलके तिमिरकज्जलके।)

राजा—सखे। नाद्यापि शैशवोक्तरेतिरिच्यसे।

विदू०—कि विअ मक्कडो वरिट्ठाण करणिज्ज पुच्छइ। तरुणुत्तीहि वण्णइस्स। (किमिव मर्कटो वरिष्ठाना करणीय पृच्छति। तरुणोक्तिभिर्वर्णयिष्यामि।)

अककणमकुडल धरिमडलीभूषण
अकुकुममचन्दन दसदिमावहूमण्डनम्।
असोसणममोडण मअरलछणस्याउह
मिअककिरणावली णहत्थलम्मि लक्खीअदि॥ १२॥

विदूषक—यह। कलकण्ठी नामक, महारानी की नाट्यकारिणी के मुख से चन्द्रोदय वर्णन सुनकर कर्पूरचण्ड नामक महाराज का मागध चन्द्र ज्योत्स्ना के वर्णन का अभिनन्दन कर रहा है। इसलिए मेरे मुख मे खुजली हो रही है, मै भी वर्णन करूँगा। चन्द्र-मण्डल से निकली हुई ज्योत्स्ना रूपी गगरी का रस अन्धकार से काले आकाश पट्ट पर नक्षत्रो की वर्णमाला को समान बना रहा है।

राजा—मित्र। बचपन मे जैसी रचना किया करते थे, उससे आगे अब भी नही बढ पाए हो।

विदूषक—क्या वानर बडो से, क्या करना है? यह पूँछता है। अच्छा युवावस्था की उक्तियो से वर्णन करूँगा।

बिना कङ्कण और कुण्डल के ही पृथ्वी-मण्डल को अलङ्कृत करने वाली, बिना कुङ्कुम और चन्दन के ही दशदिशारूपी वधू को सजाने वाली, बिना शोषण और मोहन के भी कामदेव की अस्त्र-भूत ये चन्द्र-किरणे आकाश-मण्डल मे दिखाई पडने लगी॥ १२॥

(अकङ्कणकुण्डल धरणिमण्डलीभूषण
अकुङ्कुममचन्दन दशदिशावधूमण्डनम् ।
अशोषणममोहन मकरलाञ्छनस्यायुध
मृगाङ्ककिरणावली नभस्तले लक्ष्यते ॥ १२ ॥)

राजा—(समन्तादवलोक्य मदनाकूतमभिनीय) भगवन् यामिनीनाथ ! कस्तवाय विरुद्धो विधि ?

सूतिर्दुग्धसमुद्रतो भगवत श्रीकौस्तुभौ सोदरौ
सौहार्द कुमुदाकरेषु किरणा पीयूषधाराकिर. ।
स्पर्धा ते वदनाम्बुजैर्मृगदृशा तत् स्थाणुचूडामणे !
हहो चन्द्र ! कथं निषिञ्चसि मयि ज्वालामुचो वेदना ॥ १३ ॥

(चतुर्दिशमवलोक्य)

यन्त्रद्रावितकैतकोदरदलस्रोत श्रिय बिभ्रती
येय मौक्तिकदामगुम्फनविधेर्योग्याच्छविर्द्रागभूत् ।
उत्सेक्या कलसीभिरञ्जलिपुटैर्ग्राह्या मृणालाङ्कुरै
पातव्या च शशिन्यमुग्धविभवा सा चन्द्रिका वर्तते ॥ १४ ॥

राजा—(चारो और देखकर, कामावेश प्रकट कर) भगवन् यामिनी-नाथ ! यह तुम्हारा कैसा विरुद्ध कार्य है ?

भगवन् क्षीर सागर से आपका जन्म हुआ है, लक्ष्मी और कौस्तुभ तुम्हारे सगे बहिन और भाई है, कुमुद-वृन्द से आपकी मैत्री है, किरणे अमृत बरसाने वाली है एव मृगनयनियो के मुख-कमलो से तुम्हारी स्पर्धा है, हे शिव जी के चूडामणि चन्द्र ! तो फिर क्यो मुझे सतापकारी वेदना देते हो ॥ १३ ॥

(चारो ओर देखकर)

यन्त्र से पिघलाये हुए केतक के भीतरी पत्ते के जलप्रवाह की सुन्दरता को धारण करती हुई जो चॉदनी शीघ्र ही मोतियो की माला मे गूँथने योग्य सुन्दर छवि वाली हो गई थी, वह चॉदनी चन्द्रमा के और अधिक बढ जाने पर गगरी से छिडकने योग्य, अञ्जलिपुटो से ग्रहण करने योग्य और कमल के पत्तो से पीने योग्य हो गई ॥ १४ ॥

(विभाव्य) वैमल्यमेव वा शशलक्ष्मणो मादृशजने प्राणसन्देहहेतु । वैषम्यमेव वा विष विषयस्य ।

(चतुर्दिशमवलोक्य साभ्यर्थनम्)

अयि पिबत चकोरा कृत्स्नमुन्नाम्य कण्ठान्
क्रमकवलन चञ्चच्चञ्चवश्चन्द्रिकाम्भ ।
विरहविधुरिताना जीवितत्राणहेतो-
र्भवति हरिणलक्ष्मा येन तेजोदरिद्र ॥ १५ ॥

(पुरोऽवलोक्य) सैवेय मृगाङ्कावली

विदू०—भो मिलकावली ज्जेव एसा । ण हु एक्कचन्दस्स एत्तिअमेत्तो कतिवित्थारो । (भो मृगाङ्कावल्येवैषा । न खल्वेकस्य चन्द्रस्य एतावन्मात्र कान्ति-विस्तार ।)

राजा—तत कदलीलतान्तरितावेव शृणुवस्तावदस्या विश्रम्भजल्पितानि । आतृप्ति पिबेता श्रवसी रसायनम् ।

(तथा कुरुत ।)

(सोचकर) चन्द्रमा की विमलता ही मेरे प्राण-सन्देह का कारण है । विषय की विषमता ही विष है ।

(चारो ओर देखकर अभ्यर्थना के साथ)

विरहिजनो के जीवन-रक्षा के हेतु, अरे चकोरो ! तुम कण्ठ को ऊँचा कर, क्रम से निगलने के लिए चोचो को फैलाकर चन्द्र-किरणो को सम्पूर्णत पी लो जिससे यह चन्द्रमा तेजहीन हो जाय ॥ १५ ॥

(सामने देखकर) अरे यह तो मृगाङ्कावली आ गई ।

विदूषक—हाँ, यह मृगाङ्कचन्द्रमा की अवली (पक्ति) अर्थात् चन्द्रमा का समूह ही है । अकेले एक चन्द्रमा मे इतनी चमक नही हो सकती ।

राजा—तो कदलीकुञ्ज मे छिपकर हम तुम इनकी प्रेमविषयक वार्ता सुने, कर्णरसायन पिये ।

(वैसा करते है)

(तत प्रविशति यथानिर्दिष्टा मृगाङ्कावली विचक्षणा च)

मृगाङ्कावली—(अनुध्याननाटितकेन तदेव "चन्द्र चन्दनकर्दमेन लिखितमि" त्यादि पठति ।)

राजा—(सखेदम्) अहो मदनमन्त्राक्षराणि सुभाषितवचनान्यस्या ।

विदू०—अह उण जाणे णिसिदाओ मअणहत्थभल्लीओ । (अह पुनर्जाने निशिता मदनहस्तभल्लय ।)

राजा—

कण्ठे मौक्तिकमालिका स्तनतटे कार्पूरमच्छ रज
सान्द्र चन्दनमङ्गके वलयिता पाणौ मृगालीलता ।
तन्वी नक्तमिय चकास्ति शुचिनी चीनाशुके बिभ्रती
शीतांशोरधिदेवतेव गलिता व्योमाग्रमारोहत ॥ १६ ॥

विदू०—भो सञ्च चदाधिदेवतेव्व सा गलिदा । जदो लछणछलेण मअलछणस्य इमाए अइरपरिच्चतमिणालदलमलिण व मडलमज्झ निज्झाअदि । (भो सत्य चन्द्राधिदेवतेव सा गलिता । यतो लाञ्छनच्छलेन मृगलाञ्छनस्य अनया अचिरपरित्यक्त मृणालदलमलिनमिव मण्डलमध्य निध्यायते ।)

(इसके बाद यथानिर्दिष्ट मृगाङ्कावली और विचक्षणा रगमञ्च पर आती है)

मृगाङ्कावली—(स्मरण का अभिनय कर) वही 'चन्द्र चन्दनकर्दमेन लिखितम्' इत्यादि श्लोक पढती है ।

राजा—(खेदपूर्वक) इसके सुभाषित वचन काममन्त्र हैं ।

विदूषक—मै तो समझता हूँ कि कामदेव के हाथ के चोखे किए गए भाले है ।

राजा—कण्ठ मे मोतियो की मालाये, स्तनो के चारो ओर किनारे-किनारे कपूर का उज्ज्वल लेप, शरीर पर चन्दन का गाढा लेप, दोनो हाथो मे लिपटी हुई कमल लता, उत्तम रेशमी वस्त्रो को धारण किए हुए यह सुन्दरी, रात मे, नभो-मण्डल मे ऊपर चढ़ते हुए चन्द्रमा से निकली अधिष्ठात्री देवी से चमक रही है ॥ १६ ॥

विदूषक—हॉ, सचमुच चन्द्रमण्डल से पृथक् हुई यह अधिदेवता ही है क्योकि इसके द्वारा परित्यक्त चन्द्रमण्डल का मध्य भाग कमलदल सा मलिन, कलङ्क के रूप मे दिखाइ दे रहा है ।

राजा—सखे । मासलेऽपि चन्द्रिकाद्योते व्यतिरिच्यत एवास्या स्मरजन्मा पाण्डमा । विभाव्यत एव वा शङ्खशुक्तियुक्ताऽपि मुक्तावली ।

तथाहि—

नखदलितहरिद्राग्रन्थिगौरे शरीरे
स्फुरितविरहजन्मा कोऽप्यय पाण्डुभाव ।
बलवति सति यस्मिन् सार्धमावर्त्य हेम्ना
रजतमिव कृशाङ्ग्या कल्पितान्यङ्गकानि ।। १७ ।।

विदू०—पारअरसचुविअ विअ सुवण्ण से लावण्ण । क्कमकतगोरत्तणेण आकिट्ट विअ अग आपाडुभावेण । (पारदरसचुम्बितमिव सुवर्णमस्या लावण्यम् । क्रमकान्तगौरत्वेन आकृष्टमिवाङ्गमापाण्डुभावेन ।)

मृगाङ्कावली—हहो हिअअ, णअणेहिं दिट्टो सो, तुम उत्तम्मसि त्ति अच्चरिअ । मूले वउलयट्टीए सुरागडूससेओ कुसुमेसु मदरागधुग्गारोत्ति । (हहो हृदय, नयनाभ्या दृष्ट स, त्वम् उत्ताम्यसीत्याश्चर्यम् । मूले वकुलयष्ट्या सुरागण्डूषसेक, कुसुमेषु मदिरागन्धोद्गार इति ।)

विदू०—कि वा कारणम् ?

राजा—मित्र । चन्द्रिका के इस समृद्ध प्रकाश मे भी काम-जन्य इसका पीलापन स्पष्ट दिखाई दे रहा है । शख की सीपियो से युक्त मुक्तावली पहचान ली जाती है(क्योकि) उसकी कान्ति सर्वथा भिन्न होती है ।

जैसे—नखो से काटी हुई हल्दी की गॉठ के समान गोरे शरीर पर विरह की पीतिमा का रग दिखाई दे रहा है । मानो इस सुन्दरी के अङ्ग, सोने के साथ चॉदी को मथकर—एक मे मिलाकर—(उसके) मिश्रण से रचे गए है ।। १७ ।।

विदूषक—इसका सौन्दर्य पारद-रस-युक्त सुवर्ण सा है । सुन्दर औरगौर वर्ण के कारण पीलापन से युक्त है ।

मृगाङ्कावली—अरे हृदय । देखा तो उसको नेत्रो ने और विकल हो रहे हो तुम—यह आश्चर्य है । सुरा से सिचन हो मोलसिरी के मूल का और मदिरा की गन्ध आये उसके फूलो मे ।

विदूषक—क्या बात है ?

राजा—(सकरुणम्) इद हि कारण, वलवाननङ्गोऽस्याम्। इय हि स्वेन हृदयेन कलहायते।

मृगाङ्कावली—अइ कप्पूरसलाआसिसिरविज्जाहरमल्ल ! तुम पि तपसि ? कहिं मे णिव्वुदि। जइ चन्दमणी हुअवह णीसदअदि को एत्थ पडीआरो। (अयि, कर्पूरशलाकाशीतलविद्याधरमल्ल ! त्वमपि तपसि ? क्व मे निर्वृति ? यदि चन्द्रमणिर्हुतवह निष्यन्दयते, कोऽत्र प्रतीकार ।)

राजा—नमो मह्य मृगाङ्कावलीचतुरोपालम्भपात्रीकृताय।

मृगाङ्कावली—सहि ! सामण्णकुसुमवाणो भविअ मअणो एआरिस करेदि ? ता बहूसे विसेसकुसुममआ बाणा। (सखि ! सामान्यकुसुबाणो भूत्वा मदन कथमेतादृश करोति ? तस्माद्बहबोऽस्य विशेषकुसुममया बाणा ।)

राजा—सलिलमय्यपि दहति हिमानी। कुसुममय्यपि स्वभाववामा मदनहस्तपञ्चशरी।

राजा—(करुणापूर्वक) कारण यह है कि इसमे काम प्रबल हो रहा है। यह अपने हृदय से ही कलह कर रही है।

मृगाङ्कावली—हे कर्पूर् की शलाका की भॉति शीतल विद्याधरमल्ल ! तुम भी ताप दे रहे हो तो मुझे कहॉ आराम मिलेगा ? यदि चन्द्रमा ही अग्नि बरसाने लगा तो फिर इसका क्या उपचार।

राजा—मृगाङ्कावली के चातुर्यपूर्ण उपालम्भ के पात्र रूप मुझको नमस्कार है।

(मै धन्य हो गया।)

मृगाङ्कावली—सखि ! यदि कामदेव के बाण साधारण फूलो के हैं, तो फिर वह इतना दु सह दु ख क्यो देता है ? अवश्य इसके बाण विशेष प्रकार के फूलो के हैं।

राजा—जल से निर्मित बर्फ भी जलाता है। कामदेव के हाथ मे फूलो के बने पञ्च बाण स्वभाव के विपरीत होते है अर्थात् कठोर होते हैं।

विदू०—भो पिअवअस्स, वरिसारत्ति सक्करपुत्तलिआ विअ खणेखणे ओज्झरन्ती क ण दुण्णेदि, कि उण मिलाणमरुवककदलीव सुअआ-विरह परिक्खामा वि इय रमणिज्जा । कि अ कोरण्डकुसुममालामिलाअमाण सुटठु क्खु रक्तत्तण दसेदि । (भो प्रियवयस्य, वर्षारात्रिशर्करापुत्तलिकेव क्षणे क्षणे अपचीयमाना क न दुनोति । किं पुनर्म्लानमरुवककन्दलीव सुगन्धि विरहपरिक्षामाऽपीय रमणीया । कि च कोरण्डकुसुममाला म्लायन्ती सुष्ठु खलु रक्तत्व दर्शयति ।)

मृगाङ्कावली—कि करेदि सहि । दुब्भेज्जा प्पेमदुद्दोली । (सखेदम्) सहि । णिरणुक्कोसो क्खु सो, विरलो वा परदुक्खदुक्खिदो जणो, त्थोआ आ पचमहुकारोम्मुक्ककुसुमुप्पीडविडविणो । **(सप्रश्रयम्)** अयि तुहिअणेक्काधाणुक्क मम्मह । मिअकचूडामणिपरिक्खिदतिक्खत्तणेहि सरेहिं महिलाअण पहरन्तो ण लज्जसि ? जाणामि जदि तस्सि पि अणे एव्व एव्व आरभडीपचडो होसि । (कि करोमि सखि, दुर्भेद्या प्रेमदुर्दोली । सखि । निरनुक्रोश खलु स विरलो वा परदु खदु खितो जन, स्तोका वा पञ्चमहुङ्कारोन्मुक्तकुसुमोत्पीडविटपिन । अयि त्रिभुवनैकधानुष्क, मन्मथ, मृगाङ्कचूडामणिपरीक्षिततीक्ष्णत्वै शरैर्महिलाजन प्रहरन्न लज्जसे । जानामि यदि तस्मिन्नपि जन एवमेवारभटीप्रचण्डो भवसि ।)

राजा—सुतनु, सुतरामारभटीप्रपञ्च ।

विदूषक—प्रिय मित्र । शर्करा पुत्तलिका के समान प्रतिक्षण घटती हुई वर्षा की रात किसको पीडित नही करती ? मरुवक (दौना) की नई कोपल मुरझायी हुई भी सुगन्धित रहती है और कोरण्ड की कुसुममाला मुरझायी हुई भी अपनी लाली प्रकट करती है ।

मृगाङ्कावली—क्या करूँ सखि । प्रेम की दुर्दोली दुर्भेद्य होती है । (सखेद) सखि । वे बहुत ही निष्करुण है । दूसरे के दु ख से दु खी होने वाला कोई विरला ही होता है । ऐसे वृक्ष कम ही होते है जिनके पुष्प कोयल द्वारा दलित न हो । त्रिभुवन के सबसे बडे धनुर्धारी, कामदेव । अपने बाणो की तीक्ष्णता की परीक्षा शकर जी पर करने वाले अब ऐसे तीखे बाणो का प्रहार एक अबला पर करते हुए तुम्हे लज्जा नही आती । तुझे समझूँ तब, जब इसी प्रकार साहस और वीरता से उस (विद्याधरमल्ल) पर भी प्रचण्ड होवो ।

रासजा—सुन्दरि । अत्यधिक साहसी (कामदेव) है ।

विदू०—(उच्चैर्हसित्वा) अणगस्स आरभडित्ति महाहासकर मे । (अनङ्गस्यारभ-टीतिमहाहासकर मे ।)

राजा—किमिद यदुच्चैर्हससि, नैव त्रासय ।

मृगाङ्कावली—विअक्खणे । जणसञ्चारो विअ । ता कदलीथभन्तरिदे भविअ जाणीमो कि एद त्ति । **[तथा कुरुत]** (विचक्षणे । जनसञ्चार इव, तस्मात् कदली-स्तम्भान्तरिते भूत्वा ज्ञास्याव किमेतदिति ।)

विदू०—एहि पविसह्य [इति परिक्रामितकेन] (एहि प्रविशाव ।)

राजा—(शिशिरोपचारसामग्रीमालोक्य नाट्येनादाय च)

मृणालमेतद्वलयीकृत तया तदीय एकोऽप्यवतसपल्लव ।
इद च तस्या कदलीदलाशुक यदत्र संक्रान्त इव स्मरज्वर ॥ १८ ॥

तदनया तदुपभुक्तमुक्तया शीतवर्गसामग्रयात्मान निर्वापयामि ।
(तथा करोत्युपविशति च । विदूषकोऽपि यथोचितमुपविशति ।)

विदूषक—(जोर से हँसकर) अनङ्ग अङ्गो सी हीन का साहस । इस पर मुझे बडी हँसी आती है ।

राजा—यह क्या, इतने जोर से हँसते हो, उसे डराओ मत ।

मृगाङ्कावली—विचक्षणे । यहाँ मनुष्य की आहट मालूम होती है । तो केले के खम्भे की आड मे छिपकर ज्ञात करे—क्या बात है । (दोनो वैसा करती है)

विदूषक—आओ अन्दर घुसे । (दोनो घूमते है ।)

राजा—(शीतलता प्रदान करने वाली सामग्रियो को देखकर अभिनयपूर्वक लेकर)

यह कमल-नाल है जो उसके द्वारा लपेटा गया यह पल्लव है जिसको उसने कर्णभूषण बनाया था । यह कदली-पत्र का उसका वस्त्र है मालूम होता है उस सुन्दरी का कामज्वर इसमे सड्क्रान्त हो गया है ॥ १८ ॥

तो उसके द्वारा उपभोग करके छोडी हुई शीतलता प्रदान करने वाली सामग्री से अपने को पुरस्कृत करुँ—मै इसे उपयोग मे लाऊँ । (वैसा करता है और बैठता है, विदूषक भी उचित स्थान पर बैठ जाता है)

राजा—(सतापमभिनीय) अहह अपर्यालोचितमाचरितम् । यत —

शीताशुर्विषसोदर. फणभृता लालास्पद चन्दन
हार. क्षारपयोभव प्रियसुहृत् पङ्केरुह भास्वत ।
इत्येषा किमिवास्तु वस्तु मदनज्योतिर्विघाताय यद्
बाह्याकारपरिग्रहेण तु वय तत्त्वत्यजो वञ्चिता ॥ १९ ॥

विचक्षणा—सहि मिअकावलि ! फलिद मे दूइत्तणेण । ज महाराओ वि एआरिस अवत्थन्तर उव्वहदि । (सखि मृगाङ्कावलि ! फलित मे दूतीत्वेन यन्महाराजोऽपि एतादृशमवस्थान्तरमुद्वहति ।)

राजा—(सन्तापमभिनीय)

व्यजनमरुत. श्वासश्रेणीमिमामुपचिन्वते
मलयजरजो धाराबाष्प प्रपञ्चयितु प्रभु ।
कुसुमशयन कामास्त्राणा करोति सहायता
द्विगुणगरिमा मारोन्माथ कथ नु विरस्यति ॥ २० ॥

विदू०—अए,मुद्दासणाहो लेहो विअ । (अए, मुद्रासनाथो लेख इव ।)

राजा—(सताप का अभिनय कर) अहह ! मैने बिना सोचे-समझे यह आचरण किया । क्योकि—

चन्द्रमा तो विष का सहोदर है, चन्दन सर्पो के लार अर्थात् थूक का आवास स्थान है, हार (जा मोती से बनता है) खारे जल से उत्पन्न हुआ है, कमल सूर्य का मित्र है, तो फिर ये सब सताप-नाश कैसे करे । इस मदन-सताप को नष्ट करने के लिए इन्हे धारण कर वास्तव मे तत्त्व का त्याग करने वाले हम धोखा खा गये ॥ १९ ॥

विचक्षणा—सखि ! मृगाङ्कावलि ! मेरा दूती-कार्य सफल हो गया, महाराज भी ऐसी अवस्था को प्राप्त हो रहे है ।

राजा—(सन्ताप का अभिनय कर) पखे की वायु श्वासो को और तीव्र करती है, चन्दन का लेप ऑसुओ की और वृद्धि करता है । फूलो को शय्या कामदेव के अस्त्रो की सहायता करती है । इस प्रकार तो काम-पीडा दूनी होती जा रही है, वह शान्त क्यो कर होगी ॥ २० ॥

विदूषक—अरे ! यहॉ मुहरबन्द लेख मालुम पडता है ।

राजा—न केवल लेख, स्मरसन्धिविग्रहसम्बन्धश्च । तथाहि पश्य—

तालीदल यदकठोरतर यदत्र
मुद्रास्तनाङ्कघनचन्दनपङ्कपूर्त्ति ।
यद् बन्धन बिसलतातनुतन्तुभिश्च
कस्याश्चिदेष गलितस्तदनङ्गलेख ॥ २१ ॥

विदू०—ता एव्व एसो, सण्णिहिदपरिच्चाए कारण भणिदव्व ।

(तस्मादेवमेष, सन्निहितपरित्यागे कारण भणितव्यम्)

राजा—(विदूषक कण्ठेऽवधार्य) विदूरवसुधैव रत्नशलाकाभू भवद्वचोवृत्तिरेव रसनिष्यन्दभूमि, तदुपरि नाम दर्शय ।

(विदूषक तथा करोति ।)

राजा —(वाचयति) निष्कृपस्य, वराक्या ।

राजा—केवल लेख ही नही, कामदेव के सन्धि-विग्रह का सयोजक है । देखो—

यह अत्यन्त कोमल ताली-पत्र है, स्तनो मे लगे चन्दन की इस पर मुद्रा लगी है । यह महीन कमल-तन्तुओ से बॅधा है । यह किसी विरहिणी का काम-पत्र गिर गया है ॥ २१ ॥

विदूषक—हॉ है तो ऐसा ही, यहॉ समीप मे ही इसके गिराने का कोई कारण होगा ।

राजा—(विदूषक के गले मे बॉह डालकर) विदूर की भूमि मे ही रत्न होता है, आपकी बातो से ही रस-धारा प्रवाहित होती है । तो ऊपर नाम तो दिखाओ ।

(विदूषक वैसा करता है)

राजा—बॉचता है—अभागिनी के उस निष्ठुर को—

विदू०—उम्मुदिअ दसइस्स। **(तथा कृत्वा)** भो, अरअण रअणकरडअ, अण-क्खरो लेहो। (उन्मुद्रय दर्शयिष्यामि। भो, अरत्न रत्नकरण्डकम्, अनक्षरो लेख ।)

राजा—काम करुणगम्भीर प्रयोग कल्लोलयति मानसम्। **(विचिन्त्य)** अये, तालीदलसपुटम् अन्विष्य, किञ्चिन्मन्त्रगुप्तये, तत्र शङ्कमानया सूचित स्यात्।

विदू०—**(तथा कृत्वाऽवलोक्य सहर्षम्)** अहो दे बुद्धिविहवो। कि वण्णण मिअङ्कलछणस्स रोहिणीवल्लहोत्ति। (अहो ते बुद्धिविभव । किवर्णन मृगलाच्छ-नस्य रोहिणीवल्लभ इति ।)

राजा—विसष्ठुल वाचयति—

विधत्ते सोल्लेख कतरदिह नाङ्ग तरुणिमा
तथापि प्रागल्भ्य किमपि चतुर लोचनयुगे।
यदादत्ते दृश्यादखिलमपि भावव्यतिकरम्

(विचिन्त्य)

विदूषक—खोलकर दिखाता हूँ (वैसा करके) अरे। रत्नो की सन्दूकची रत्नशून्य है। पत्र, बिना अक्षरो का है।

राजा—यह करुण और गम्भीर प्रयोग हृदय को अत्यन्त तरगित कर रहा है। (सोचकर) अये। ताली-पत्र का सपुट तो खोजो। अभिमत को गुप्त रखने के लिए सम्भव है उसमे शकालु हृदय वाली के द्वारा कोई रहस्य सूचित किया गया हो।

विदूषक—(वैसा करके, देखकर सहर्ष) अहो। तुम्हारी बुद्धि कैसी विलक्षण है। मृगलाञ्छन (चन्द्रमा) का क्या वर्णन—वह तो रोहिणीवल्लभ है।

राजा—(चचलतापूर्वक पढता है)

यौवन किस अङ्ग को विशेष सुन्दर नही कर देता अर्थात् सभी अगो को सुन्दर कर देता है, किन्तु नेत्रो मे एक विशेष प्रकार का नैपुण्य युक्त प्रगल्भता उत्पन्न कर देता है। इसी से वे किसी को देखने मात्र से ही उसके हृद्गत भावो को जान जाते है।

(सोचकर)

पाणिप्रेङ्खणतो विशीर्णशिरस स्वेदाम्बुरुग्णश्रिय-
स्ता इत्याकृतिलेशतो मनसि न किञ्चित्प्रतीतिं गता ।
वैचित्त्यात् पुनरुक्तलाञ्छनभृत कण्ठ्येन वाच्येन वा
व्याक्षेप कथयन्ति पक्ष्मलदृशो लेखाक्षरश्रेणय ॥ २२ ॥

विदू०-कि उव्वेक्खदि केलिकदलीए करिशुण्डादडाबेडो ? ता एहि अणुसरह्म । (किमुपेक्ष्यते केलिकदल्या करिशुण्डादण्डावेष्ट । तस्मादेहि अनुसराव ।)

राजा—इदमुभयमनन्यगामि, यन्मृगाङ्कानुवर्तन रत्नाकरस्य, मम हृदयानुवर्तन च भवत ।

विदू०—**(अङ्गुल्या निर्दिशन्)** इदो माधवीलदामण्डव गदा । जदो मअरद्धअपसिद्धि व्व पअरिछोली दीसदि । ता णिवुण अग्गतो भविअ णिरूवह्म । (इतो माधवीलतामण्डप गता । यतो मकरध्वजप्रसिद्धिरिव पदपक्तिर्दृश्यते । तस्मान्निपुणमग्रतो भूत्वा निरूपयाव ।)

(तथा कुरत)

लेख की अक्षर-पक्तियो को देखने लगता है कि उनका शिरो-भाग हाथ कॉपने के कारण विशीर्ण हो गया है, पसीने की बूँदो से उनका सौन्दर्य नष्ट हो गया है—इस कारण वे हमे कुछ ही प्रतीत होते है । चित्रविक्षेप के कारण उनमे पुनरुक्त दोष भी है । लेख की ये अक्षर पक्तियो इस प्रकार उस पक्ष्मल नेत्रो वाली सुन्दरी के व्याक्षेप को स्पष्टरूपेण कह रही है ॥ २२ ॥

विदूषक—क्या केलि-कदली मे हाथी के शुण्ड-दण्ड की भॉति लक्षित हो रहा है ? तो आओ । पीछा करे ।

राजा—ये दो अन्यगामी नही—समुद्र चन्द्रमा का और आप मेरे हृदय का अनुवर्तन कर रहे है ।

विदूषक—(अगुली से निर्देश करता हुआ) इधर से माधवीलता के मण्डप मे गई है क्योकि कामदेव की प्रसिद्धि के समान पद-पक्ति दिखाई पड रही है । तो आगे होकर भली भॉति निरूपण करे ।

(दोनो वैसा करते हैं)

मृगाङ्कावली—(लतान्तरे चन्द्रिकास्पर्शमभिनीय सस्कृतमाश्रित्य)

प्रियविरहमहोष्मामर्मरामङ्गरेखा-
मयि हतल हिमाशो ! मा स्पृश क्रीडयाऽपि ।
इह हि तव लुठन्त प्लोषपीडा भजन्ते
दरजरठमृणालीकाण्डमुग्धा मयूखा· ॥ २३ ॥

(इति द्विस्त्रिरभिधाय रोदिति ।)

राजा—(विदूषक प्रति) सखे कारय चक्षुषीपारणाम् । यत —

अन्तस्तारातरलितजला स्तोकमुत्पीडभाज
पक्ष्माग्रेषु प्रसृतपृषत कीर्णधारा क्रमेण ।
चित्तातङ्क निजगरिमत सम्यगासूत्रयन्तो
निर्यान्त्यस्या कुवलयदृशो बाष्पवारा प्रवाहा ॥ २४ ॥

अपि च—

मृगाङ्कावली—(लता की आड मे चॉदनी के स्पर्श का अभिनय कर) सस्कृत मे—

रे अधम चन्द्र ! प्रिय की विरहाग्नि से सन्तप्त मेरे अत्यन्त क्षीण शरीर का स्पर्श विनोदार्थ भी मत कर । किञ्चित् पके हुए कमलिनी दण्ड के समान वर्ण वाली तेरी किरणे मेरे शरीर पर पडकर उष्णता को प्राप्त हो रही है ॥ २३ ॥

(ऐसे दो-तीन बार कहकर रोती है)

राजा—(विदूषक से मित्र ! नेत्रो की पारणा कराओ क्योकि—

नील-कमल के समान नेत्रो वाली इस सुन्दरी के ऑसू पहले पुतलियो से तरल-भाव को प्राप्त हुए, क्रमश थोडा सा दबाव पडने से बरौनियो के अग्रभाग पर बूॅदो के रूप मे फैल गए । फिर परस्पर गुॅथ कर एक धारा मे परिवर्तित हो गए और अब अपनी गुरुता से आन्तरिक पीडा को प्रकट करते हुए प्रवाह के रूप मे बाहर निकल रहे हैं ॥ २४ ॥

और भी—

मुक्त्वाऽनङ्ग कुसुमविशिखान् पञ्च कूणीकृताग्रान्
मन्ये मुग्धां प्रहरति हठात्पत्रिणा वारुणेन।
वारा पुरा कथमितरथा स्फारनेत्रप्रणाली
वक्त्रोद्भ्रान्तस्त्रिवलिविपिने सारिणीसाम्यमेति ॥ २५ ॥

(विदूषक हस्ते गृहीत्वोपसृत्य सानुरागप्रश्रयम्)

यस्य कृते वहसि रुजा मृदितमृणालानि गात्राणि।
यस्य कृते सोऽपि तथा तदखण्डितशासनो मदन ॥ २६ ॥

मृगाङ्कावली—(सप्रणय ससाध्वसञ्च तमवलोक्य)

कि एसो अणगो ? परपुरिसो, असिप्पिसपुडा वा मोत्तिअ उप्पत्ति । कि च चूदलट्ठिअ व्व अहआरिभूता, राशि व्व कण्णआत्तण उपगदा एदस्स दसणेण महग्घीकिदा मे तणु पडिभादि । **(त प्रति)** सहि, एसो सो राआ विज्जाहरमल्लो जो सिरिसरस्सइण वल्लहो मअणसुन्दरीए अ । जस्स वल्लहाओ सिरीसरस्सइम-अणुसुन्दरिओ । (किमेषोऽनङ्ग, परपुरुष, अशुक्तिसम्पुटा वा मौक्तिकोत्पत्ति ।

ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव अपने तरकस मे रक्खे हुए पॉचो कुसुम-शरो को त्याग कर इस भोली-भाली अबला पर वरुणास्त्र से प्रहार कर दिया है, नही तो कैसे दीर्घ नेत्रो से प्रवाहित नाली क्रमश मुख पर से बहता हुआ अन्त मे त्रिवली के विपिन से पहुँचकर लघु नदी की समता प्राप्त कर रहा है ॥ २५ ॥

(विदूषक का हाथ पकडकर, निकट जाकर सानुराग एव नम्रतापूर्वक)

जिसके लिए तुम मनस्ताप कर रही हो तथा जिसके लिए अपने शरीर को मसले हुए कमल सा कर रही हो, वह भी उसी अवस्था को प्राप्त हो रहा है, क्योकि कामदेव का शासन खण्डित नही होता—उसका प्रभाव दोनो तरफ बराबर ही पडता है ॥ २६ ॥

मृगाङ्कावली—(प्रीति तथा भय के साथ उसे देख कर)

क्या ये परपुरुष कामदेव तो नही है ? या बिना सीपी के मोतियो की उत्पत्ति है । जिसके दर्शन मजरियो से युक्त आम की टहनी सी, कन्या भाव को प्राप्त (कन्या) राशि सी मेरी शरीर-यष्टि को बहुमूल्य बना दिया—ऐसा प्रतीत होता है । सखि ।

किञ्च, चूतयष्टिरिव सहकारीभूता, राशिरिव कन्यकात्वमुपगता, एतस्य दर्शनेन महार्घीकृता मे तनु प्रतिभाति । सखि, एष स राजा विद्याधरमल्ल, य श्रीसरस्वत्योर्वल्लभो मदनसुन्दर्याश्च ? यस्य वल्लभा श्रीसरस्वतीमदनसुन्दर्य ।)

विचक्षणा—आम् ।

राजा—विचक्षणे, नन्वेव वक्तव्य भवति, यो मृगाङ्कावली-वल्लभो यस्य मृगाङ्कावलीवल्लभेति । **(ता प्रत्यञ्जलिं बद्ध्वा)**

तरङ्गय दृशोऽङ्गने पततु चित्रमिन्दीवर
स्फुटीकुरु रदच्छद भजतु विद्रुम श्वेतताम् ।
क्षण वपुरपावृणु स्पृशतु काञ्चन कालिका-
मुदञ्चय मुख मनाग्भवतु च द्विचन्द्र नभ ॥ २७ ॥

मृगाङ्कावली—(स्वगतम्) भअवदि मअकमडणे जामिणि । सजामा होहि ।(भगवति मृगाङ्कमण्डने यामिनि । सयामा भव ।)

क्या ये राजा विद्याधरमल्ल है, जो लक्ष्मी, सरस्वती और रति के वल्लभ है और लक्ष्मी, सरस्वती तथा रति जिनकी वल्लभाएँ है ।

विचक्षणा—हॉ ।

राजा—विचक्षणे । ऐसा कहना चाहिए—जो मृगाकावली का वल्लभ है और मृगाकावली जिसकी वल्लभा है । (उससे हाथ जोडकर)

हे सुन्दरी । तुम अपनी दृष्टि को फैलाओ जिससे नीलकमल फीका पडे । ओठ तो खोलो, ताकि मूँगा सफेद सा लगे । जरा शरीर पर से वस्त्र हटा दो, ताकि सुवर्ण भी कली लगे । जरा मुख ऊपर तो करो ताकि आकाश दो चन्द्रमा वाला हो जाय ॥ २७ ॥

मृगाङ्कावली—(स्वगत) हे भगवती चन्द्रशोभने रात्रि देवि । तुम और लम्बी हो जाओ ।

राजा—सखे ! न हारविरहमर्हत्येषा । न चित्रशिखण्डिदाम्ना विना चकास्त्युदीची ।

(इति कण्ठादवतार्य नायिकाकण्ठे हार विधत्ते ।)

विदू०—उचिदसमागमो क्खु एसो एण्ठ रञ्जेदि । ज दाणी णित्तलमुत्ताहलमालालङ्करणो सुन्दरीअणो वक्कोत्तिविभूसणो विअ सुकइवाणीबन्धो । (उचितसमागम खल्वेष कण्ठ रञ्जयति । यदिदानी निस्तलमुक्ताफलमालालकरण सुन्दरीजनो वक्रोक्तिविभूषण इव सुकविवाणीबन्ध ।)

(नेपथ्ये)

चालिज्जतु लदामडवपहुदीणी बिलासट्ठाणाइ, ताणिज्जन्तु कडक्किआ दुआराइ, णिविद्धज्जन्तु अग्गलाओ, चिट्ठन्तु जहाणिअट्ठाण वाहिरदो जामइल्ला सोविदल्ला । एसा वारविलासिणीजणगहिदहत्थवि-त्थारिजणविणोदिअदिवसा सिद्धणरेददिण्णोसधविजिभिअ मजिट्ठत्थबहसदसहस्सालकिद माहवीमडव दट्ठुम् इच्छइ देवी । (शोध्यन्ताम् लतामण्डपप्रभृतीनि विलासस्थानानि, सङ्घट्यन्ता गवाक्षद्वाराणि, निबध्यन्ताम् अर्गलानि, तिष्ठन्तु यथानिजस्थान बहिर्यामवन्त सौविदल्ला । एषा वारविलासिनीजनगृहीतहस्तविस्तारिजनविनोदितदिवसा सिद्धनरेन्द्रदत्तौषधिविजृम्भितमाञ्जिष्ठस्तबकशतसहस्रालड्कृत माधवीमण्डप द्रष्टुमिच्छति देवी ।)

राजा—सखे ! यह सुन्दरी हार से विरहित होने योग्य नही है । उत्तर दिशा सप्तर्षिमण्डल के बिना शोभित नही लगती ।

(ऐसा कहकर अपना हार उतार कर नायिका को पहना देता है ।)

विदूषक—यह उचित समागम कण्ठ को सुशोभित कर रहा है । चञ्चल मुक्ताहार ही स्त्रियो का अलङ्कार है । जैसे सुकविजन के काव्य का विभूषण वक्रोक्ति है ।

(नेपथ्य मे)

लता-मण्डल आदि विशाल-स्थानो को शुद्ध, स्वच्छ एव ठीक कर लो । झरोखो के द्वार बन्द कर दो, सिटकनी लगा दो । अन्त पुर के सेवक, जो पहरे पर हो, बाहर अपने-अपने उचित स्थान पर खडे रहे । सखियो के साथ दिन व्यतीत

विचक्षणा—(सत्रासम्) भट्टा विसज्जीअदु प्पिअसही । (भर्त, विसृज्यता प्रिय-सखी ।)

राजा—अभ्यर्थये हृदय यदि प्रार्थनाभङ्ग न करोति ।

विदू०—तुरिद विसज्जीअदु, अण्णधा सउन्ता विअ पञ्जरणिबद्धा भविस्सामो । (त्वरित विसृज्यता, अन्यथा शकुन्ता इव पञ्जरनिबद्धा भविष्याम ।)

(इति यथायथ परिक्रम्य निष्क्रान्ता सर्वे)

इति तृतीयोऽङ्कः

कर वानवनिताओ द्वारा पकडे गए हाथो वाली महारानी जी— सिद्ध वैद्यो की दी गई औषधि से उत्पन मजीठ रग के लाल सैकडो सहस्रो पुष्पो के गुच्छो से अलकृत माधवीमण्डप को देखना चाहती है ।

विचक्षणा—(भय के साथ) स्वामिन् ! प्रिय सखी को जाने दीजिए ।

राजा—हृदय से प्रर्थना कर रहा हूँ, यदि वह प्रार्थना मान ले ।

विदूषक—शीघ्र जाने दीजिए, नही तो हम लोग पक्षी की भॉति पिजडे मे बॅध जॉयगे ।

(सब क्रमश घूमकर निकल गए)

तृतीय अङ्क समाप्त ।

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

सुप्रभात देवस्य केयूरवर्षस्य । सम्प्रति हि—

व्रजत्यपरवारिधिं रजतपिण्डपाण्डु. शशी
नमन्ति जलबुद्बुदद्युतिसपङ्क्तयस्तारका ।
कुरण्टकविपाण्डुर दधति धामदीपाङ्कुरा-
श्चकोरनयनारुणा भवति दिक् च सौत्रामणी ॥ १ ॥

(तत प्रविशति विदूषक सुप्ता ब्राह्मणी च)

विदूषक—भो पुक्खरमाले उट्ठेहि सज्झा विन्दिदु । अदिक्कन्ता रअणी । सुण णरेन्द्रवन्दिणो कप्पूरचडस्स पभादभोआवलिं । **(विमृश्य)** कह देवी गरिट्ठगोट्ठी-जणिदजागरणकिलन्ता सुत्ता वह्मणी ? अज्जवि ण णिद्द मुचेदि । ता पडिवालेमि । जदो सुत्तो ण पडिबोधिदव्व त्ति बह्मणा भणति । (भो पुष्करमाले, उत्तिष्ठ सध्या वदितुम् । अतिक्रान्ता रजनी, शृणु नरेन्द्रबन्दिन कर्पूरचण्डस्य भोगावलीम् ।

(नेपथ्य मे)

देव केयूरवर्ष के लिए प्रभात सुखकर हो । इस समय—चॉदी के गोले के समान गौरवपूर्ण चन्द्रमा पश्चिम समुद्र को जा रहा है, पक्तिबद्ध तारा-गण पानी के बुलबुले की भॉति गिर रहे है । घरो के दीपक की लौ कुटजपुष्प की भॉति उज्ज्वल हो रही है एव पूर्वदिशा चकोरो के नेत्रो की भॉति लाल हो रही है ॥ १ ॥

(इसके बाद विदूषक प्रवेश करता है और ब्राह्मणी सोई हुई है)

विदूषक—अरे पुष्करमाले ! सन्ध्या-वन्दन के लिए उठो । रात बीत गई । राजा के बन्दी कर्पूरचण्ड का प्रभात-वर्णन सुनो । अरे क्यो ! महारानी की गोष्ठी में जागने से थककर सोई हुई ब्राह्मणी अभी नही निद्रा त्याग रही है । तो ठहर

कथ देवीगरिष्ठगोष्ठीजनितजागरणक्लान्ता सुप्ता ब्राह्मणी अद्यापि न निद्रा मुञ्चति । तस्मात् प्रतिपालयामि । यत सुप्तो न प्रतिबोधितव्य इति ब्राह्मणा भणन्ति ।)

ब्राह्मणी—(उत्स्वप्नायमाना) विण्णत्तो विअक्खणामुहेण देवीए भट्टा । जह ओअल्लागदस्स मिअङ्कवम्मस्स बहिणी मिअङ्कावली णामसिणिहेण भादुअ दट्ठु आअदा । सन्दिट्टञ्चमे मादुलचदवम्मणा मादुलाणीए हारलदाए अ । जधा, एसा दे वहिणी मिअकावली देवण्ण गणएहि कहिदचक्कवत्तिघरिणीभावा, सा तुए उचिद वर लभइदव्वात्ति । तदो देवी देव विण्णवेदि, ण तुम्हाहितो अण्णो वरो एदाए जोग्गो । जदो पोम्मराअमणी एव्व एआवलि अलकरेदि । ता परिणेदु अज्जउत्तो । ण अत्तणे सिरी अण्णहत्थे सकमयिदव्वा होदि । णअ एद आसकिदव्व कि त्ति देवी अत्तणो सापत्तणेण पअट्टदि त्ति । जदो महाउलप्पसूदाण भत्तुणो प्पिअ एव्व अप्पणो पिअति । कि च, पुणो परिणाविदो एव्व मए अज्जउत्तो । त जधा, मअधाहिव सुद अणगलेह, मालवणरेददुहिअर रअणावदि प्पिअदसण अ, पाचालराजतणअ विलासवदि, अवतीसरसुद केलिवदि, कलावदिं अ, जालधरेसकुमारिलीलावदिं, करेलराअपुत्ति पन्नलेह च ता अज्ज चिअपदोसे विआह- लग्गो त्ति उणो उणो मणिदेण महाराएण तहत्ति पडिवण्ण । तमेहल---वुत्तत पडिकादु अलीअविवाहेण विडवीअदु भट्ट । कुविदस्स मे भत्तुणो उत्तर ईसिअर हुविस्सदि, (विज्ञप्तो विचक्षणामुखेन देव्या भर्ता । यथा ओल्लागतस्य मृगाङ्कवर्मणो भगिनी मृगाङ्कावली नाम स्नेहेन भ्रातृक द्रष्टुमागता । सन्दिष्टञ्च मे मातुलेन चन्द्रवर्मणा मातुलान्या हारलतया च ।

जाऊँ । प्रतीक्षा करूँ क्योकि सुप्त व्यक्ति को नही जगाना चाहिए—ऐसा ब्राह्मण लोग कहते है ।

ब्राह्मणी—(सोते मे बडबडाती हुई) महारानी ने विचक्षणा के द्वारा स्वामी को सूचित किया है कि ओल्लागत मृगाङ्कवर्मा की बहिन मृगाङ्कावली स्नेहवश भाई को देखने आई है और मेरे मामा चन्द्रवर्मा तथा मामी हारलता ने सन्देश दिया है कि इस तुम्हारी बहिन मृगाङ्कावली के विषय मे ज्योतिषियो ने कहा है कि यह चक्रवर्ती की पत्नी होगी, अत तुम किसी योग्य वर से इसका विवाह करा दो । अत महारानी ने महाराज से कहा है कि तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा वर इसके योग्य नही है । क्योकि पद्मरागमणि ही एकावली हार को अलकृत करता है । अत आर्यपुत्र इससे विवाह कर ले । अपनी लक्ष्मी दूसरी के हाथ मे नही डालना चाहिए

यथैषा ते भगिनी मृगाङ्कावली दैवज्ञगणकै कथित-चक्रवर्ति-गृहिणीभावा, सा त्वयोचित वर लम्भयितव्येति । तस्माद्देवी देव विज्ञापयति न युष्मत्तोऽन्यो वर एतस्या योग्य । यत पद्मरागमणिरेवैकावलीमलङ्करोति । तस्मात् परिणयत्वार्यपुत्र । नाऽऽत्मान श्रीरन्यहस्ते सक्रामयितव्या भवति । न चैतदाशङ्कितव्य किमिति देव्यात्मन सापत्न्येन प्रवर्तत इति । यतो महाकुलप्रसूताना भर्तु प्रियम् एवाऽऽत्मन प्रियमिति । किञ्च पुन परिणायित एव ममार्यपुत्र । तद् यथा, मगधाधिपसुतामनङ्गलेखाम्, मालवनरेन्द्रदुहितर रत्नावती प्रियदर्शनाञ्च, पाञ्चालराजतनया विलासवतीम्, अवन्तीश्वरसुता केलीमती कलावतीञ्च, जालन्धरेश्वरकुमारी लीलावती, केरलराजपुत्री पत्रलेखाञ्च तस्मादद्यैव प्रदोषे विवाह-लग्नमिति पुन पुनर्भणितेन महाराजेन तथेति प्रतिपन्नम् । तस्मान्मेखलावृत्तान्त प्रतिकर्तुमलीकविवाहेन विडम्ब्यता भर्ता, कुपितस्य मे भर्तुरुत्तरम् ईषत्कर भविष्यति ।)

विदू०—(विहस्य) जइ धम्म अधम्मो जइस्सदि । जाणिस्स जो एत्थ विडबिदव्वो । **(विचिन्त्य)** ता चिर पाअइदव्वा जुण्णमञ्जरी दुद्धति कजिअ । कुवलअमालाए उण महाविलबण ज महिला महिलाए परिणेदव्वा । **(ऊर्ध्वमवलोक्य)** महदी बेला वट्टदि, ता उट्ठावेमि बह्मणि, उट्ठेहि देवी तुम वाहरदि ।(यदि धर्ममधर्मो जेष्यति । ज्ञास्यामि योऽत्र विडम्बयितव्य । तस्माच्चिराय पाययितव्या जीर्णमार्जारी

और इसके सौत होने से देवी के मन मे क्या प्रतिक्रिया होगी—ऐसी शङ्का आप न करे । क्योकि उच्चकुल मे उत्पन्न स्त्री का अपने पति का प्रिय ही अपना प्रिय होता है । और मै आर्यपुत्र का विवाह अन्य स्त्रियो से करा ही चुकी हूँ—जिनमे मगधनरेश की कन्या अनङ्गलेखा, मालवाधिप की कन्या रत्नावली और प्रियदर्शिका, पाञ्चालराज कीपुत्री विलासवती, अवन्तीश्वर को सुता केलिमती ओर कहालवती, जालन्धरेश्वर की कुमारी लीलावती एव केरल-राज की पुत्री पत्रलेखा है । तो आज ही सायकाल विवाह का लग्न है । इस प्रकार बार-बार कहने से महाराज ने स्वीकृति दे दी । तो मेखला वाली घटना का बदला लेने के लिए मिथ्या-विवाह कर स्वामी को धोखा दिया जाय—वे कुपित होकर कुछ नही कर सकेगे ।

विदूषक—(हॅसकर) यदि धर्म को अधर्म जीत सकेगा । देखूगा किसकी विडम्बना होती है । बुड्ढी बिल्ली को दूध के बहाने छाछ पिलाना है । कुवलयमाला की तो और विडम्बना होगी, जब स्त्री का स्त्री से विवाह होगा । बहुत देर हो रही है, तो ब्राह्मणी को उठाऊँ । (उठो, तुम्हे महारानी जी बुला रही हैं) ।

दुध्यमिति कञ्जिकम् । कुवलयमालाया पुनर्महाविडम्बन यन्महिला महिलया परिणेतव्या । महती वेला वर्तते, तस्मादुत्थापयामि ब्राह्मणीम् । उत्तिष्ठ, देवी त्वा व्याहरति ।)

ब्राह्मणी—(विबोधनाटितकेनोत्थाय) अए उच्छूर वट्टदि । **(त विलोक्य)** हहो मिअतिण्हिआ–जामादुअ ! तुम परमेसरपस्सवद्दी होहि । अह उण देवी अणुसरिस्स । **[इति परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)** (अए, उत्सूर वर्तते । भो मृगतृष्णिकाजामातस्त्व परमेश्वरपार्श्ववर्ती भवाह देवीमनुसरिष्यामि ।)]

(प्रवेशक)

(तत प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—(मदनसतापयो पीडामभिनीय) सखे ! सप्रति शैशवादपक्रामति ग्रीष्मसमय ।

रजनिचरमयामेष्वादिशन्ती रतेच्छा
किमपि कठिनयन्ती नारिकेलीफलाम्भ ।
अपि परिणमयित्री राजरम्भाफलाना
दिनपरिणतिभोग्या वर्त्तते ग्रीष्म-लक्ष्मी ॥ २ ॥

ब्राह्मणी—(जागने का अभिनय कर, उठकर) अरे ! सन्ध्या हो गई । हे मृगतृष्णिका के दामाद ! तुम महाराज के पास चलो और मै महारानी के पास चल रही हूँ ।

(प्रवेशक)

(इसके बाद राजा और विदूषक आते है)

राजा—(काम और सताप की पीडा का अभिनय कर) सखे ! इस समय ग्रीष्मकाल अपने शैशव को त्याग रहा है ।

यह ग्रीष्म काल रात्रि के पिछले पहर मे सुरत-क्रीडा की प्रेरणा देता है, नारिकेल फल के जल को (सुखाकर) कठोर बना देता है एव कदली-फली को पकाता है । ग्रीष्म लक्ष्मी सायकाल उपभोग योग्य होती है—सायकाल ग्रीष्म का आनन्द उठाना चाहिए ॥ २ ॥

अपि च—

जलार्द्रै सव्यान विसकिसलयै केलिवलया
शिरीषैरुत्तंसा विचकिलमयी हाररचना ।
शुचावेणाक्षीणा मलयजरसाद्राश्च तनवो
विना तन्त्र मन्त्र रतिरमणमृत्युञ्जयविधि ॥ ३ ॥

विदूषक —एव एद । अह्मारिसजणस्स खलासअस्स उडुप्पाओ वट्टइ धम्मो ।

(एवमेतत् । अस्मादृशजनस्य खलाशयस्य उडुप्रायो वर्तते धर्म ।)

राजा—(नि सह विहस्य) ललाटतपस्तपनो नखपचाश्च पथिपासव । तदसूर्यपश्या राजदारा । अपि च—

हरन्ति हृदयानि यच्छ्रवणशीतला वेणवो
यदङ्कितकरम्बिता शिशिरवारिणा वारुणी ।
भवन्ति च हिमावहा स्तनभुवो यदेणीदृशा
शुचेरुपरि सस्थितो रतिपते प्रसादो गुरु ॥ ४ ॥

ओर भी—

ये सब ग्रीष्म मे बिना तन्त्र-मन्त्र के कामदेव को अमर बनाने के लिए सुन्दरियो के साधन है—जल से आर्द्र एव शीतल वस्त्रो से शरीर को आच्छादित करना, कमल-नाल के क्रीडा-ककण, शिरीष-पुष्पो के कर्णभूषण, विचकिल पुष्पो के हार एव चन्दन रस से आर्द शरीर ॥ ३ ॥

विदूषक—हॉ ऐसा ही है । हम ऐसे पापी को धर्म उडुप्राय है ।

राजा—(सहन न करता हुआ हॅसकर) सूर्य माथे को तपा रहा है—बहुत तीव्र हो रहा है, मार्ग की धूल पावो को जला रही है, तो रनिवास की रानियॉ, जो सूर्य का दर्शन नही करती, अच्छी है । और भी—

कानो को मधुर लगने वाला वशीरव हृदय को हर लेता है, पास मे शीतल-जल-मिश्रित वारुणी (शीतलता प्रदान करती है) एव मृगनयनियो का स्तन-प्रदेश शीतलता प्रदान करता है । यह सब ग्रीष्म ऋतु पर कामदेव ने महती कृपा कर रखी है ॥ ४ ॥

एव च सखे । सशृणुम —

मूल वालधि-वीरुधा सुरभयो जातीतरुणा त्वच
साराश्चन्दनशाखिना किसलयान्यार्द्राण्यशोकस्य च
शैरीषी कुसुमोद्गति परिणमन्मोचश्च सोऽयं गणो
ग्रीष्मेणोष्महर. पुरा किल ददे दग्धाय पञ्चेषवे ॥ ५ ॥

(नि सहतामभिनीय)

मयि शिशिरतरोपचारयोग्यं द्वितयमिद युगपन्न सह्यमेव ।
जरठितरविदीधितिश्च कालो दयित-जनेन सम च विप्रयोग ॥ ६ ॥

(नेपथ्ये) दोलालआहिकुचनसरलगुलिदीहराहि चरणाहिं अपहारिज्जइ वलइअकरजुअलचिअणेउराहरणम्, करजुअलनिविडपीडिदपेरतविणिग्ग अचल-चडुलप्पा छोडिज्जइ सरभससहीपडिक्खिआ चिअ कणअकचुलिआ खचिदोअर-सिठिलथणफचुअत्थइथणभराहिंतो अवणिज्जइ उद्ध करग्गकट्ठणुव्विल उवरिल्लम् । उभअकरवलइअगुलीपरिग्गहणमुक्ककट्ठसट्ठाणो उद्धारिज्जइ थण-

---

और हे मित्र । हम ऐसा सुनते है—

वालधि लताओ का मूल, जातीवृक्ष की सुगन्धमय छाल, चन्दन वृक्ष का सार, अशोक वृक्ष की शीतल कोपल, शिरीष वृक्ष के कुसुम, पकता हुआ केला—इन सब गर्मी दूर करने वाली वस्तुओ के समूह को दग्ध कामदेव को प्राचीन काल मे ग्रीष्म ने प्रदान किया था ॥ ५ ॥

(असह्यता का अभिनय कर)

मुझे प्रचण्ड सूर्य की किरणे और प्रियजन का वियोग—जिनको शीतल उपचार सामग्री की अपेक्षा होती है, एक ही समय मे ये दोनो सर्वथा असह्य है । । ६ ॥

(नेपथ्य में) हिंडोले के समान वक्रगतिसे हिलते हुए एव सीधी अगुलियो के कारण दीर्घ प्रतीत होने वाले चरणो से, दोनो हाथो को बलयाकार बनाकर नूपुर उतारे जा रहे हैं । दोनो हाथो के लगातार पीडन से एक ओर सरके हुए अञ्चलरूपी स्वर्ण कञ्चुकी खोली जा रही है । मणियो से खचित अन्तरभाग वाले शिथिल स्तनकञ्चुक से ढँके हुए स्तनो से हाथ ऊपर करके खीचकर अव्यवस्थित उत्तरीय

मण्डलाहि दरादोलिओ हारो। परिपाडिसमुण्णमिअभुजलअ परप्फर करग्गेहिं कड्ढिज्जइ कमसिठिलसकाउभाओ कञ्चणकडओ। कमसो सरत सजमणकुडिल आमूलचुम्बिअणिअम्बो उरज्जइ णहपरिपाडितरलिओ एसो चिउरपासो। सरलित-तरलगुलिविवरचिअणिम्मुक्ककुडिलविणिवेसो काणिज्जइ उज्जहलाव्भुअ-वअ-णम्मि अलआण णिउरवो। करकमलकणिट्ठगुलिणहसिहरुल्लिहिअतवलि-सत्थिगअ पट्टोरिज्जइ पुणरुत्तमगलस्स बलाहि णिअबसुअ। पुढमोवतिष्णपिअ-पाणिसपुडसपिड्डिआसु धारासु दरदन्तसमूहपहारासु हत्थ मच्छिज्जइ एत्थ तह मणो हरइ वारविलासिणीण दइअसहिदाण गिह्मावरह्णसोभग्गससणो मज्जणा-रभो। (दोलालताभिकुञ्चनसरलाङ्गुलिदीर्घाच्चरणादपहार्यते वलयितकर युगलाञ्चि-तनूपुराभरणम्। करयुगलनिबिडपीडितपर्यन्तविनिर्गताञ्चलचुटुलात्मा मुच्यते सरभससखीप्रतीक्षितैव कनककञ्चुलिका। (मणि) खचितोदरशिथिलस्तनकचुक-स्थगितस्तनभरादपनीयते ऊर्ध्वकराग्रकर्षणाव्यत्यस्तमुत्तरीयम्। उभयकरवलयि-तागुलिपरिग्रहणमुक्तकण्ठसस्थान उद्धार्यते स्तनमण्डलाद् दरान्दोलितो हार.। परिपाटिसमुन्नमितभुजलत परस्पर कराग्रै कृष्यते क्रमशिथिलसकटभाव काञ्चन-कटक। क्रमश सरत्सयमनकुटिलमामूलचुबितनितम्बो विकीर्यते। (नख)

हटाया जा रहा है। दोनो हाथो की वलयाकार अगुलियो द्वारा कण्ठस्थान को छोड देने वाले एव किञ्चित् आन्दोलित हार, स्तन-मण्डल से ऊपर उठाया जा रहा है। परिपाटी से भुजाओ को ऊपर करते हुए परस्पर दोनो हाथो से क्रमश पीडा-भाव को कम करने वाला काञ्चन-कटक उतारा जा रहा है। क्रमश बन्धन ढीला होने से मूल-पर्यन्त नितम्बदेश को छूने वाला लहराने वाला कुटिल केश अब विकीर्ण किया जा रहा है। सीधी और चञ्चल अगुलियो के बिवरो मे आए हुए निर्मुक्त एव कुटिल विन्यास वाला अलको का समूह कान्तिमान् और सुन्दर मुख पर सुलझाया जा रहा है। करकमलो की कनिष्ठागुलि के नखो के शिखरो से चिह्नित त्रिवली और जॉघ मे स्थित नितम्बाशुक बलपूर्वक पुनर्मगल के लिए हठात् खोला जा रहा है। पहले उतरे हुए प्रिय के पाणिसपुट से पीडित एव सामूहिक रूप से जिसमे किञ्चित् प्रहार किया गया था, ऐसी धाराओ मे थोडी देर के लिए हाथ अर्पित किया जा रहा है। यहॉ पर प्रियतमो के साथ रहने वाली वारविलासिनियो के सौभाग्य की सूचना देने वाला ग्रीष्मापराह्णमज्जन अत्यन्त मनोहर है।

परिपाटितरलित एष चिकुरपाश ।सरलिततरलागुलि-विवराञ्चितनिर्मुक्त-कुटिलविनिवेश समीक्रियते ऊर्जस्वलाद्‌भुतवदने अलकाना निकुरब । करक-मलकनिष्ठागुलिनखशिखरोल्लिखितत्रिवलिसक्थिगतम् उन्मुच्यते पुनरुक्त-मगलाय बलान्नितम्बाशुकम् । प्रथमावतीर्णप्रियपाणिसपुटसपीडितासु धारासु दरदत्तसमूहप्रहारासु हस्तोऽर्प्यते क्षणार्धम् । इह तथा मनो हरति वारविलासिनीना दयितसहिताना ग्रीष्मापराह्णसौभाग्यशसनो मज्जनारम्भ ।)

राजा—(समाकर्ण्य) एवमेवैतत् ।

इह विचकिलचापे सन्दधत् पाटलास्त्र,
त्रिभुवनजयलीलालालस कौतुकेन ।
दिवसगमनकेलिस्नायिनीना वधूना-
मधिवसति मनोभूर्मानसादङ्गभङ्गम् ॥ ७ ॥

विदूषक—भो सुणाहि दाव, अन्तरिदो पिअकहासु अदिक्कन्तपओसवुत्तन्तो । जादो सिविणअदसणदिअहादो पहुदि देवी पुणो पुणो पसज्जदि । तदणुबधेण पिङ्गलिआ वि बह्मणी दिणे दिणे मतेइ । (भो शृणु तावत्, अन्तरित प्रियकथासु अतिक्रान्तप्रदोषवृत्तान्त यत स्वप्नदर्शनदिवसात् प्रभृति देवी पुन पुन प्रसज्जति । तदनुबन्धेन पिङ्गलिकापि ब्राह्मणी दिने दिने मन्त्रयते ।)

राजा—युज्यते । यदरिष्टमधिरूढा कारवल्ली-वल्लरी किमुच्यते कटुकत्व प्रति न कापि महती वार्ता । किन्तु—

राजा— (सुनकर) ऐसा ही है ।

विनोदार्थ विचकिल पुष्प के धनुष पर पाटलपुष्प का बाण चढाकर त्रिभुवन को जीतने की लीला की लालसा करने वाला कामदेव, सन्ध्यावेला मे जलक्रीडा करने वाली युवतियो के मानस से निकल कर, उनके अङ्ग-अङ्ग मे निवास करता है ॥ ७ ॥

विदूषक—अरे सुनो तो—प्रियजनो की ही चर्चा मे गत सायकाल का वृत्तान्त सुनाना ही भूल गया । स्वप्नदर्शन के दिन से ही महारानी बार-बार बहुत सजती हैं । उसके अनुबन्ध से पिंगलिका ब्राह्मणी भी प्रतिदिन मन्त्रणा देती है ।

राजा—उचित ही है । एक तो करेला दूसरे अरिष्ट (नीम) पर चढा, तो फिर उसकी कडवाहट का क्या कहना । कोई महत्त्वपूर्ण बात नही है किन्तु—

तारान्त पुरवान् वियत्यपि शशी नो नेत्रपात्रीकृत
श्रोत्रस्वस्त्ययन कृतो न च मया वैपञ्चिक पञ्चम ।
तन्वङ्ग्या स्मरता दृशौ तत इतस्ते साचि सञ्चारिते
नो पीतञ्च सविभ्रम-प्रणयिनीगण्डूषधार मधु ॥ ८ ॥

विदू०—एदो वि कामिणो उम्मत्ता विअ मे पडिभासन्ति । जदो सच्च दाव सुन्दरीअ थन-णिरीक्खणगमणादिहिं किं वि विअरिज्जन्ति । ता कहेदु, कि एद ? (एतेऽपि कामिन उन्मत्ता इव मे प्रतिभासन्ते । यत सत्य तावत् सुन्दर्या स्तननिरीक्षणगमनादिभि किमपि विक्रियन्ते । तस्मात् कथयतु, किमेतत् ?)

राजा—किमत्र मा पृच्छसि, तत्र भवन्त रतिपति पृच्छ—

यत् पश्यन्ति झटित्यपाङ्गसरणिद्रोणीजुषा चक्षुषा
वल्गन्ति क्रमकम्पितोभयभुज यन्नाम वामभ्रुव ।
भाषन्ते च यदुक्तिभि स्तबकित वैदग्ध्यमुद्रात्मभि-
स्तद्देवस्य रसायन रस-विधि मन्ये मनोजन्मन ॥ ९ ॥

विदूषक—भो ताए उण अज्जतणीणा अत्थि कविवत्ता ?

(भोस्तस्या पुनरद्यतनी नाऽस्ति कापि वार्ता ?)

उस तन्वङ्गी के इधर-उधर तिरछे चलाये गऐ नेत्रो को स्मरण करते हुए मैंने आकाश मे तारा युक्त चन्द्रमा को नेत्रो से नही देखा, वीणा का मधुर पञ्चम स्वर कानो से नही सुना तथा हाव-भावयुक्त ललना के हाथो से मदिरा नही पी ॥ ८ ॥

विदूषक—ये कामीजन भी मुझे उन्मत्त से प्रतीत होते हैं, जो सचमुच सुन्दरियो के स्तन, दृष्टि-पात तथा चाल आदि देखकर कुछ विकृत हो जाते हैं। तो बताओ यह क्या है ?

राजा—इस विषय मे मुझसे क्या पूछते हो, आदरणीय कामदेव जी से पूछो। चञ्चल भौ वाली सुन्दरियॉ तिरछे नेत्रो से जो देखती हैं, दोनो भुजाओं को हिलाती हुई जो बोलती है, चातुर्य-पूर्ण उक्तियो से जो मधुर वचन कहती हैं—मै समझता हूॅ, यह सब कामदेव के लिए आनन्ददायक रसायन हैं ॥ ९ ॥

विदूषक—अरे, उस सुन्दरी के सम्बन्ध मे आज की कोई नई खबर है ?

राजा—सखे ! अस्ति कथ्यते । यतो गतस्याह्न साय समये विचक्षणा सत्यमेतदवस्था निवेदितवती ।

विदूषक—कदरेहि अक्खरेहिं ? (कतरैरक्षरै ?)

राजा—

डोलालोला श्वसितमरुतश्चक्षुषी निर्झराभे
तस्या शुष्यत्तगरसुमन पाण्डरा गण्डभित्ति ।
तद्गात्राणा मुहुरिह कियद् ब्रूमहे दुर्बलत्वं
येषामग्रे प्रतिपदुदिता चन्द्ररेखाऽप्यतन्वी ॥ १० ॥

विदूषक—तदो तदो ? (ततस्तत ?)

राजा—ततश्च

नागवल्लिरधिरोहतु पूग रात्रिरेणतिलकेन समेतु ।
त्वामसौ व्रजतु किन्नरकण्ठी कार्मुक बहतु जैत्रमनङ्ग ॥ ११ ॥

राजा—सखे, है, कहता हूँ । गत दिवस की सन्ध्या को विचक्षणा ने उसकी यह सही अवस्था बताई ।

विदूषक—किन अक्षरो मे ?

राजा—

उसकी साँसे हिंडोले की तरह लम्बी आती-जाती है, नेत्र निर्झर की भाँति है एव उसके कपोल सूखते हुए तगर के पुष्प की भाँति पीले हो गये हैं । उसका शरीर इतना दुर्बल हो गया है कि क्या कहूँ, उसके सामने तो प्रतिपद् की चन्द्र-रेखा भी अधिक ही लगती है ॥ १० ॥

विदूषक—उसके बाद ?

राजा—उसके बाद

वह किन्नर के समान मधुर कण्ठ वाली तुम्हे प्राप्त हो जाय तो समझिये जैसे पान की वेल सुपारी के वृक्ष पर चढ़ जाय, रात्रि चन्द्रमा से युक्त हो जाय अथवा कामदेव अपना विजयी धनुष धारण कर ले ॥ ११ ॥

विदूषक—विअक्खणावअणादो जाणीअदि पाणिपीडणा पुरदो पाविओ अप्पा।
(विचक्षणावचनात् ज्ञायते पाणिपीडनात् पुरत प्रापित आत्मा।)

राजा—स च चतुष्पदीपर्यवसित श्लोक प्राभृतीकृत।

विदूषक—ता पसाद कदुअ पढदु पिअवअस्सो।

(तस्मात् प्रसाद कृत्वा पठतु प्रियवयस्य।)

राजा—(पठति)

विधत्ते सोल्लेख कतरदिह नाग तरुणिमा
तथापि प्रागल्भ्य किमपि चतुरं लोचनयुगे।
यदादत्ते दृश्यादखिलमपि भावव्यतिकर
मनोवृत्ति द्रष्टु प्रथयति च दृश्य प्रतिजनम्॥ १२॥

किञ्च—

विदूषक—विचक्षणा के कहने से तो मालूम होता है कि पाणिग्रहण के पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया।

राजा—उसके एक चार-पदो का श्लोक उपहार-स्वरूप भेजा है।

विदूषक—तो कृपा कर प्रिय मित्र पढे।

राजा—(पढता है)

यो तो युवावस्था किस अङ्ग को विशेष सौन्दर्य ने नही भर देती, तथापि नेत्रो मे एक अपूर्व चातुर्यपूर्ण प्रगल्भता ला देती है। नेत्रो से जिसे देखा गया—तत्काल उसके मनोगत समस्त भावो को ये समझ लेते है और जिसने देखा—उसकी भी मनोवृत्ति को देखे गये मनुष्य से ये बता देते हैं। इस प्रकार दोनो द्रष्टा और दृश्य की परस्पर एक दूसरे को अपने-अपने हृदगत भावो को बतलाने मे ये नेत्र बडे कुशल होते है॥ १२॥

और —

स्वकण्ठकाण्डात् सुदृशोऽवतार्य,
स्वप्नेऽर्पितो यो मम कन्धरायाम् ।
पुनर्मया तत् कुचसीम्नि मुक्तो,
हार स तु प्राभृतमद्य जात ॥ १३ ॥

विदूषक—भो कि चि रहस्स पुच्छीअसि । (भो किंचिद्रहस्य पृच्छ्यसे ।)

राजा—कथ्यते ।

विदूषक—मिअकावली कुवलअमालाण कि अतर ? (मृगाङ्कावलीकुवलयमालयो किमन्तरम् ?)

राजा—आस्ताम्, परकलत्र हि सा वर्तते ।

विदूषक—भो पत्थिव, अणभिण्णोऽहम् । जेण उण सालभज्जा अद्धभज्जेति भणिदा । ता कहेसु केत्तिअ अतर मिअकावली-कुवलअमालण ? (भो पार्थिव ! अनभिज्ञोऽहम् । येन पुन श्यालभार्या अर्धभार्येति भणिता तस्मात् कथय, कियदन्तर मृगाकावलीकुवलयमालयो ।)

राजा—यावदन्तर मृगाकावली-कुवलयमालयो ।

उस सुनयना ने अपने कण्ठ देश से उतार कर जो हार मेरे गले मे स्वप्न मे अर्पित किया था, उसे पुन मैने उसके कुचप्रदेश पर डाल दिया—उस समय जो मेरी तरफ से एक प्रकार भेट हो गया ॥ १३ ॥

विदूषक—कुछ रहस्य की बात पूँछता हूँ ।

राजा—कहूँगा ।

विदूषक—मृगाङ्कावली और कुवलयमाला मे क्या अन्तर है ?

राजा—रहने दो, वह (कुवलयमाला) परायी स्त्री है ।

विदूषक—राजन् ! क्या मै इतना नही जानता कि साले की स्त्री अपनी आधी स्त्री कही गई है । तो बताओ मृगाङ्कावली और कुवलयमाला मे कितना अन्तर है ?

राजा—जितना अन्तर मृगाङ्कावली (चन्द्रमा) और कुवलयमाला (नीले कमल) मे ।

विदूषक—भो पुणो भणिदेण किं भणिद होदि ? (भो पुनर्भणितेन किं भणित भवति ।)

राजा—तर्हि दृष्टान्तान्तरेण कथ्यते, यावदन्तर घनसारागुरुसारयो

विदूषक—सुट्ठुदर जाणीअदि । (सुष्ठुतर ज्ञायते ।)

राजा—ज्ञास्यते—

लाटीचम्पकपिञ्जरैरवयवैर्दूर्वानिभै कुन्तली
पूर्वा रत्नमयी बिभर्ति रचनामन्त्या तु मुक्तामयीम् ।
इत्थ द्वे अपि ते विलास-सदने देवस्य चेतोभुव
प्राच्या किन्तु नितान्तनिर्जितजगल्लावण्यलाभोदय ॥ १४ ॥

सखे, पुनर्निरूपय, तदनुपपन्नमिव, तामेवेमा यदुतास्मान् देवी परिणाययिष्यति ।

विदूषक—ण क्खु दिट्ठे अणुववण्ण णाम । **(पुरो दर्शयन्)** सबधिणीचेटीओ दीसदि आअच्छतीओ । (न खलु दृष्टे अनुपपन्न नाम । सम्बन्धिनीचेट्यो दृश्यन्ते आगच्छन्त्य ।)

विदूषक—उसी को दोहरा कर कहना क्या कहना हुआ ?

राजा—तो दूसरा उदाहरण देकर कहता हूँ, जितना अन्तर कर्पूर और अगर मे होता है ।

विदूषक—अच्छी नरह जानता हू ।

राजा—जानेगे—

लाटी (स्त्री) चम्पा के समान गोरे अङ्गो वाली है एव कुन्तली स्त्री दूब की भॉति सॉवले अङ्गो वाली है । पहिली अर्थात् लाटी रत्नो से शृङ्गार करती है और दूसरी अर्थात् कुन्तली मोतियो से । इस प्रकार वे दोनों ही कामदेव की क्रीडाभूमि है, किन्तु लाटी को समस्त ससार को जीत लेनेवाला प्रकृष्ट लावण्य प्राप्त है ॥ १४ ॥

सखे । देवी उसी सुन्दरी के साथ मेरा जो विवाह करेगी—अभी तक वह हुआ नही, पता लगाओ—क्या बात है ।

विदूषक—नही हुआ कि अब बात नही । (सामने की ओर दिखाता हुआ) सम्बन्धिनी और दासियॉ आती हुई दिखाई दे रही हैं ।

राजा—का पुनस्ते सम्बन्धिनी ?

विदूषकः—देवी ।

राजा—(विहस्य) तदेहि चित्रशालिकामधितिष्ठाव (तथा तिष्ठत)

(तत प्रविशन्ति नेपथ्यपटलकहस्तश्चेट्य । सर्वा परिक्रामितकेन)

एका—हला कुरगिके । कहि उण महाराओ पेक्खिदव्वो । (हला कुरगिके । क्व पुनर्महाराज प्रेक्षितव्य ।)

द्वितीया—सहि, तरगिए जहि आसण्ण-विवाहकोऊहलहलहलप्फुरिदो जणो दीसइ । (सखि तरगिके, यत्राऽऽसन्नविवाहकौतूहलहल-हलस्फुरितो जनो दृश्यते ।)

अन्या—अइ सुलक्खणे कि विअ लक्खण मन्तीअदि । जदो सहस्साण पाणिग्गाहिदस्स को विअ कोऊहलहलहलओ । (अइ सुलक्षणे । किमिव लक्षण मन्त्र्यते । यत सहस्राणा पाणि ग्राहितस्य क इव कौतूहल-हलहलक ?)

राजा—तुम्हारी सम्बन्धिनी कौन ?

विदूषक—महारानी जी ।

राजा—तो आओ चित्रशाला मे बैठे । (दोनो वहाँ बैठते है)

(इसके बाद हाथ मे शृगार-सामग्री की टोकरी लिए दासियाँ रगमञ्च पर आती है) ।

(सभी घूमने का अभिनय कर)

एक—कुरगिके । महाराज कहाँ मिलेगे ?

दूसरी—जहाँ हृदय मे विवाह निकट होने से कौतुहलवश हडकम्प वाला आदमी दिखाई दे ।

अन्या—अरी सुलक्षणे । यह कौन सा लक्षण बता रही है । जिसने हजारो के साथ विवाह किया, उसे कौतूहलवश क्या हडकम्प होगी ।

अपरा—पिअवअस्से, विअक्खणासि किं णु क्खु अणभिण्णासि कदप्पचरिआण ज दाणी णव णव कोऊहल कामि-जणे। (प्रियवयस्ये। विचक्षणासि, किन्तु खल्वनभिज्ञासि कन्दर्पचरितानाम्? यदिदानी नव नव कौतूहल कामिजने।)

विचक्षणा—(पुरतोऽवलोक्य) एस भट्टा पडरपरिक्खामो पआहपूण्णिमाचन्दो वि-अ सणिच्चराणुगओ अज्जचाराअणदुदिओ चित्तसालादुवारुद्देसे दीसइ। (एष भर्ता पाण्डुरपरिक्षाम प्रभातपूर्णिमाचन्द्र इव शनैश्चरानुगत आर्यचारायणद्वितीयश्चित्र-शालाद्वारोद्देशे दृश्यते।)

कुर०—(उपसृत्य) जेदु भट्टा। देवी विण्णवेदि, आसण्ण विवाहलग्ग। ता इम विवाहणेवच्छमगल करिअ अधिट्ठीअदु विवाहचउक्किया। (जयतु भर्ता। देवी विज्ञापयति, आसन्न विवाहलग्न तस्मादिद विवाहनेपथ्यमगल कृत्वाऽधिष्ठीयता विवाह-चतुष्किका।)

राजा—यथाह देवी, शान्तम्, यदादिशति देवी।

विदू०—(आत्मान निर्दिश्य) सबधिजणाणुरूप भुज्ज किं पि किद? (सम्बन्धिज-नानुरूप भोज्य किमपि कृतम्?)

अपरा—प्रिय सखि। नाम से तो तुम विचक्षणा हो किन्तु कामदेव के चरित्र को बिलकुल नही जानती हो। अरे, ऐसे अवसर पर कामी पुरुष मे नया-नया कौतूहल होता है।

विचक्षणा—(सामने देखकर) यह पीले और दुर्बल स्वामी, प्रभात कालीन पूर्णिमा के चन्द्र के समान, शनैश्चर सहित आर्य चारायण के साथ चित्रशाला के द्वार पर दिखाई पड रहे है।

कुरङ्गिका—(निकट जाकर) स्वामी की जय हो। महारानी जी कह रही हैं—विवाह-लग्न निकट है, तो आप विवाह के समय का शुभ वस्त्राभूषण धारण कर विवाह की चौकी पर बैठे।

राजा—जैसा देवी जी कह रही हैं—नही जैसा देवी का आदेश है।

विदूषक—(अपने को निर्दिष्टकर) सम्बन्धीजनो के अनुरूप कुछ भोजन भी तैयार किया है?

सर्वा—अर दइस्सामो । (अर दयिष्यामहे ।)

विदू०—कि विअ त । (किमिव तत् ।)

कुर०—ज ककेलितरू दोहले लहेइ । ज वा भअवन् तिणअणो । सीसे समुव्वहइ । (यत् कङ्केलितरुर्दोहदे लभते, यद्वा भगवास्त्रिनयन शीर्षे समुद्वहति ।)

विदू०—(दण्डकाष्ठमुद्य) दासीओ महराअपिअवअस्स पिगलिआ बह्मणी सिसुत्तणवल्लहपडिअ सिसुअदिण्णविज्ज चाराअणबह्मण अहिक्खिवध । ता इमिणा तुह्मारिसचेडीअणचित्तकुडिलेण दडकट्ठेण भुअगजणजुगुच्छिआइ वअणाइ करिस्म । (दास्य, महाराजप्रियवयस्य पिङ्गलिकाब्राह्मणीशिशुत्ववल्लभपण्डित शिशुकदत्तविद्य चारायणब्राह्मणमधिक्षिपथ । तस्मादमुना युष्मादृशचेटीजनचित्त-कुटिलेन दण्डकाष्ठेन भुजगजनजुगुप्सितानि वदनानि करिष्यामि ।)

तर—मरिसेदु मरिसेदु अज्जो । सबधिओत्ति देवीविलासिणीओ बक्कर करेन्ति । (मर्षयतु मर्षयत्वार्य । सम्बन्धिक इति देवीविलासिन्यश्चोद्यकुर्वन्ति ।)

अन्या—अल वक्करेण, दुव्वासो अज्जचाराअणो । (अल चोद्येन, दुर्वासा आर्यचारायण ।)

सभी दासियाँ—अर (पहिये के की तीली) देगी ।

विदूषक—यह क्या ?

कुरङ्गिका—अशोक वृक्ष जो दोहद के समय पाता है (अर्थात् पदप्रहार) और भगवान शकर जिसको शिर पर धारण करते है (अर्धचन्द्र—अर्थात् गले पर हाथ रखकर धक्का देना)

विदूषक—दासियो ! जो महाराज का प्रिय मित्र, पिगलिका ब्राह्मणी का बचपन से ही प्रेमी पण्डित और जिसने बच्चो को विद्या दी, उस चारायण ब्राह्मण का तुम तिरस्कार कर रही हो । तो तुम्हारी ऐसी दासियो के चित्त की भॉति कुटिल इस डण्डे से तुम लोगो का मुँह सॉप की भॉति कुचल दूँगा ।

तरङ्गिका—आर्य क्षमा करे, क्षमा करे । आप सम्बन्धी है, इसलिए महारानी की दासियॉ हॅसी कर रही है ।

अन्या—हॅसी बन्द करो, आर्य चारायण दुर्वासा है (१—दुर्वासा की तरह क्रोधी, २—बुरे वस्त्रो वाला)

विदू०—(विहस्य) सपद एव्व सुवासो हुविस्सदि। ता विवाहमहूसव करेह्य। सुलक्खणे हारलट्ठिए कलअठिट वसन्तलए लवगिए कामकेलि हारकेलि मिअ-कप्पहे रहगि सामलगि बउलावलि पहुणो अवसर विअक्खण कर ककेण-बधेण विरएध विआहदिक्ख। (साप्रतमेव सुवासा भविष्यति। तस्माद् विवाहमहोत्सव कुर्म। सुलक्षणे, हारयष्टिके, कलकण्ठि, वसन्तलते, लवङ्गिके, कामकेलि, हारकेलि, मृगाकप्रभे, रथाङ्गि, श्यामलाङ्गि, वकुलावलि, प्रभोरवसरविचक्षण कर ककणबन्धेन विरचयत विवाह-दीक्षाम्।)

(सर्वा उपसृत्य रत्नवास कंकणकुसुमादिकमुपनयन्ति)

राजा—(नाट्येन परिधत्ते।)

विदूषक—(तदवशिष्टेन समालम्भनादिनात्मान मण्डयति।)

विच०—भोदिओ कि विलम्बेण, आरम्भरमणिज्जाइ कल्लाणाइ होन्ति। ता एत्थ गाएध णच्चध। (भवत्य कि विलबेन, आरम्भरमणीयानि कल्याणानि भवन्ति, तस्मादत्र गायत नृत्यत।)

विदू०—भो एदाण मज्झे अह वि गाइस्स णच्चिसअ अ।(भो एतासा मध्ये अहमपि गास्यामि नर्तिष्यामि च।)

विदूषक—(हॅसकर) अभी ही सुवासा (सुन्दर वस्त्रो वाला) हो जायेगा। तो आओ हम लोग विवाहोत्सव करे। सुलक्षणे। हारयष्टिके। कलण्ठि। वसन्तलते। लवङ्गिके। काककेलि। हारकेलि। मृगाकप्रभे। रथाङ्गि। श्यामलाङ्गि। वकुला-वलि। स्वामी के अवसर विचक्षण हाथ को कङ्कण-बन्धन से सुशोभित पर विवाहार्थ दीक्षित करो।

(सब दासियॉ पास जाकर रत्न, वस्त्र, कङ्कण एव कुसुम आदि रखती है)

राजा—(अभिनय के साथ धारण करता है।)

विदूषक—(राजा के उपयोग से बची लेपनादि सामग्री से अपना मण्डन करता है।)

विचक्षणा—तुम लोग देर क्यो कर रही हो, कल्याण के कार्य रमणीयता से प्रारम्भ किए जाते है। तो तुम लोग गाओ, नाचो।

विदूषक—मित्र। इनके बीच मै भी गाऊगा, नाचूगा।

राजा—यदभिरुचित भवते ।

(विदूषकेण सह सर्वा नृत्यन्ति गायन्ति च)

(नेपथ्ये)

हहो सुलक्खणामिस्साओ, कि विलबेण, आणेध महाराअ सपरिवारा देवी सपत्ता ज्जेव । (अहो सुलक्षणामिश्रा, कि विलबेन, आनयत महाराजम्, सपरिवारा देवी सप्राप्तैव ।)

तर—इदो इदो एदु महाराओ । **[सर्वे परिक्रामन्ति]** (इत इत एतु महाराज ।)

(तत प्रविशति यथानिर्दिष्टा देवी, कृतवधूवेशा मृगाङ्कावली कुवलयमाला च ।)

देवी- (अपवार्य) वच्छे कुवलअमाले, पेच्छ अत्तणो भट्टिणो सिलिट्ट महिलावेस । (वत्से कुवलयमाले । पश्याऽऽत्मनो भर्तु श्लिष्ट महिलावेषम् ।) **[कुवलयमाला तन्मुखी हसति]**

राजा—(स्वगतम्)

राजा—जो आपको अच्छा लगे ।

(विदूषक के साथ सब नाचती-गाती है)

(नेपथ्य में)

अरे सुलक्षणा आदि चेटियो । क्यो देर कर रही हो । महाराज को ले आओ । अनुचर-अनुचरियो समेत महारानी उपस्थित है ।

तरङ्गिका—महाराज इधर, इधर आये । (सब घूमते है ।)

(इसके बाद यथानिर्दिष्टा देवी । वधू-वेश मे मृगाङ्कावली और कुवलयमाला)

देवी—(पास जाकर) वत्से कुवलयमाले । अपने पति द्वारा स्वीकृत महिलावेष देखो । (कुवलयमाला उसकी ओर मुख करके हॅसती है)

राजा—(स्वगत)

दिवस इवास्मि सताप सेन्दुर्वदनेन रात्रिवच्चैषा ।
इदमपि चान्तररचित रक्ताशुकमावयो सन्ध्या ॥ १५ ॥

देवी—अज्जउत्त, उग्घालीअदु मुह स्स, उदेदु भवणगब्भे चदो । (आर्यपुत्र ! उद्घाटय मुखमस्या उदेतु भवनगर्भे चन्द्र ।)

राजा—(उपविश्य तथा कृत्वा स्वगतम्)

नयनच्छलेन सुतनोर्वदनजितशशिनि कुले विभोर्बाधात् ।
नासानालनिवद्ध स्फुटितमिवेन्दीवर द्वेधा ॥ १६ ॥

देवी—वत्से मिअकावलि, कुण तारामेलअ, वित्थारअ कुवलअसथर । (वत्से मृगाङ्कावलि ! कुरु तारामेलनम्, विस्तारय कुवलयसस्तरम्) ।

मृगा०—(लज्जावशादितस्ततश्चक्षुषी निधाय चिरमूर्ध्वमवलोकयति) ।

राजा—(विलोक्य स्वगतम्)—

मै तापयुक्त दिन-सा हूँ और यह मुख के कारण चन्द्रयुक्त रात्रि की भाँति है । हम दोनो के बीच यह लाल वस्त्र सन्ध्या की भाँति है ॥ १५ ॥

देवी—आर्यपुत्र ! इसका मुख खोलो, भवन के भीतर चन्द्रमा उदित हो जाय ।

राजा—(बैठकर वैसा करके स्वगत)

इसके मुख से पराजित चन्द्रमा मे, कुलप्रभु के पराजय के कारण, नेत्रो के बहाने मानो नासारूपी नाल से जुडे हुए दो नीले कमल विकसित हो गये हैं ॥ १६ ॥

देवी—वत्से मृगाङ्कावलि ! तारामेलन करो, कमल (नेत्रों) को फैलाओ ।

मृगाङ्कावली—(लज्जावश इधर-उधर आँखे घुमाकर देकर तक ऊपर की ओर देखती है ।)

राजा—(देखकर स्वगत)

भवनभुवि सृजन्तस्तारहारावतार
दिशि दिशि विकिरन्त केतकाना कुरम्बम् ।
वियति विरचयन्तश्चन्द्रिका मुग्धमुग्धा
बत नयननिपाता सुभ्रुवो विभ्रमन्ति ॥ १७ ॥

विदूषक—(जनान्तिकेन) एसा सा कुबलअमाला तुम तिरिच्छेहि अच्छीहि पिबदिब्व । (एषा सा कुवलयमाला त्वा तिर्यग्भिरक्षिभि पिबतीव ।)

राजा—एवमेतत्—

प्रणालीदीर्घस्य प्रतिकलमपाङ्गस्य सुहृद
कटाक्षव्याक्षेपा शिशुशफरफालप्रतिभुव ।
दधाना सर्वस्व कुसुमधनुषोऽस्मान् प्रति सखे !
नव नेत्राद्वैत कुवलयदृश सदधति च ॥ १८ ॥

कि पुन परकलत्रमेषा ।

विदूषक—लेहासत्तिए तुह एव्व एसा । (रेखा-शक्त्या तवैवैषा ।)

पृथ्वी पर मुक्ताहार की सृष्टि करते, प्रत्येक दिशा मे केतकी पुष्पराशि बिखेरते एव आकाश मे गौर मनोहारिणी चन्द्रिका विरचित करते हुए इस सुन्दरी के नेत्र दिखाई दे रहे है ॥ १७ ॥

विदूषक—(जनान्तिक से) कुवलयमाला तुमको तिरछे नेत्रो से पी-सी रही है ।

राजा—हॉ ऐसा ही है—

नीले कमल के समान नेत्रवाली इस सुन्दरी के नाली की भॉति लम्बे अपाङ्ग के सुहृद् कटाक्षो के व्याक्षेप शफरी मछली के बच्चो के समान चञ्चल है । इसके नवीन नेत्र अनुपम है । ये कटाक्ष, कामदेव के सर्वस्व नवीन अनुपम नेत्र को (बाण की भॉति) धारण कर, हमे लक्ष्य बनाकर सन्धान कर रहे है ॥ १८ ॥

किन्तु यह तो पराई स्त्री है ।

विदूषक—रेखा की शक्ति सें अर्थात् भाग्यबल से यह तुम्हारी ही है ।

देवी—(जनान्तिक कुवलयमाला प्रति) पेच्छ अत्तणे भत्तार अज्जउत्तेण परिणिज्जमाण । (प्रकाश) सपद भामरीओ कुणउ महाराओ, दिज्जदु अज्जपज्जलिदे हुदवहम्मि लाजाओ ।(पश्याऽऽत्मनो भर्तारम् आर्यपुत्रेण परिणीयमानम् । साप्रत भ्रामरी करोतु महाराज, दीयन्तामाज्यप्रज्वलिते हुतवहे लाजा ।)

राजा—(परिणीयोपविशति) ।

प्रतिहारी—(प्रविश्य) देव, देवीमादुलस्स चन्दवम्मस्स पहाणदूदेण सह अज्जभाउराअणो दुवारे चिट्ठदि । (देव । देवीमातुलस्य चन्द्रवर्मण प्रधानदूतेन सहाऽऽर्यभागुरायणो द्वारे तिष्ठति ।)

राजा—(देव्या मुखमवलोकयति),

देवी—अबिलबिद पविसदु । (अविलम्बित प्रविशतु ।)

प्रतिहारी—(निष्क्रान्त)

(तत प्रविशति भागुरायणो दूतश्च)

उभो—जयतु जयतु त्रिलिङ्गाधिपो देव ।

भागु—इतो लाटाधिपतेर्दूत ।

देवी—(कुवलयमाला से फुसफुसा कर) विवाह करते हुए अपने पति आर्यपुत्र को देखो । (उच्चस्वर से) अब महाराज भॉवरे, डाले, घृत से प्रज्वलित अग्नि मे लावा (खीलें) डाले ।

राजा—(विवाह करके बैठता है)

प्रतिहारी—(प्रवेश करके) देव । महारानी के मामा चन्द्रवर्मा के प्रधान दूत के साथ आर्य भागुरायण द्वार पर खडे है ।

राजा—(महारानी का मुख देखता है ।)

देवी—अविलम्ब अन्दर आये ।

प्रतिहारी—(चला गया)

(इसके बाद भागुरायण और दूत प्रविष्ट होते है)

दोनों—त्रिलिङ्गाधिप देव की जय हो ।

भागु.—इधर से लाटाधिपति के दूत ।

राजा—उपविश । निवेद्यतामपि कुशल चन्द्रवर्मण ?

दूत—देवानुग्रहेण

देवी-कुशल मातुलाणीए हारलदाए ? (कुशल मातुलान्या हारलताया ?)

दूत—अथ किम् ?

देवी—अवि सुमेरदि मे गुरुजणो । (अपि स्मरति मे गुरुजन ।)

दूत—आत्मापि विस्मर्यते ? **(देवी प्रति)** मातुलपुत्रजन्मता दिष्ट्या वर्धसे । (सर्वे हर्ष नाटयन्ति) सदिष्ट चास्मत्स्वामिना—

नि सूनुना प्राक् परिकल्पिताऽभून्मया मृगाङ्कावलिरेकपुत्र ।
पुत्रावकल्पच्छलतोऽथ सेयमानायिता व सचिवोत्तमेन ॥ १९ ॥

जात सम्प्रति मे कुलैकतिलक पुत्रस्तदेषा त्वया
भव्या कान्तिमती कलासु कुशला केलि-प्रिया नीतिभू ।
दैवज्ञोदितचक्रवर्तिगृहिणीभावा मृगाङ्कावली
देया कस्यचिदिन्दुसुन्दरयश पूतस्य पृथ्वीपते ॥ २० ॥

राजा—बैठो, चन्द्रवर्मा का कुशल क्षेम बताओ ।

दूत—आपके अनुग्रह से कुशल है ।

देवी—मामी हारलता कुशल से है ?

दूत—हाँ ।

देवी—क्या मेरे गुरुजन मुझे स्मरण करते है ?

दूत—क्या अपने को भी भूला जाता है ?

(देवी के प्रति) मामा के पुत्र-जन्म के लिए तुम्हे बधाई है । (सभी हर्ष का अभिनय करते हैं) हमारे स्वामी ने सन्देश दिया है—

पहले पुत्र-हीन होने से मैने मृगाङ्कावली को पुत्र प्रसिद्ध किया, और तुम्हारे सचिव पुत्र-वेश मे ही उसे यहाँ तुम्हारे पास ले आये ॥ १९ ॥

अब कुल-तिलक मुझे एक पुत्र हो गया, अत तुम इस सुन्दरी, कला-कुशला, केलि-प्रिया, नीतिज्ञा मृगाङ्कावली का विवाह चन्द्र के समान उज्ज्वल यश से पवित्र किसी राजा के साथ कर दो । इसके विषय मे ज्योतिषियो ने यह बताया है कि यह चक्रवर्ती की गृहिणी होगी ॥ २० ॥

भागु०—(स्वगतम्) फलित नो नीतिपादपलतया धिया ।

विदू०—(हस्तमुद्यम्य) भो दिण्णा परिणीदा अएसा । कि ण पेक्खसिपओट्ठसट्ठि-दरत्तसुत्तककण पिअवअस्सस्स मिअकावलीए अ, मण्डिद दीक्खिद वर इत्थिअ अ । **[सर्वे विस्मयन्ते]** (भो दत्ता परिणीता चैषा । किं न पश्यसि प्रकोष्ठसस्थित-रक्तसूत्रककण प्रियवयस्यस्य मृगाकावल्याश्च । मण्डित दीक्षित वर स्त्रियञ्च ।)

देवी—(जनान्तिकम्) पेक्ख देव्व-दुव्विलसिदाइ । ज मए केलिक्कमेण अलिअ परिकप्पिद त सच्चत्तणेण परिणद । भोदु एव्व दाव । **(प्रकाशम्)** मादुलसन्देस-मतरेण वि मए परिणाविदा एव्व एसा । (पश्य दैव-दुर्विलसितानि । यन्मया केलि-क्रमेणालीक परिकल्पित तत् सत्यत्वेन परिणतम् । भवत्वेव तावत् । मातुलसन्देशमन्तरेणापि मया परिणायितैवैषा ।)

दूत—देवि, भवादृशीना बुद्धयो यदृच्छयापि प्रवृत्ता कार्यमनुरुन्धाना परिणमन्ति ।

विदू०—(जनान्तिकेन) भो, देवी एव्व पुरो ववसिदा । (भो देव्येव पुरो व्यव-सिता ।)

राजा—तथैव । अनुगुण हि दैव सर्वस्मै स्वस्ति करोति ।

भागु—(स्वगत) हमारी नीति वृक्ष पर आरूढ बुद्धि-लता फलवती हो गई ।

विदूषक—(हाथ उठाकर) अरे यह दे दी गई और विवाहित भी हो गई । क्या प्रियमित्र की और मृगाङ्कावली की कलाई मे बँधे लाल डोरे के कङ्कण और सजाये-सँवारे एव दीक्षित वर-वधू को देख नही रहे हो ?

देवी—(फुसफुसाकर) दैव का नटखटपना तो देखो । जो कुछ मैने विनोदार्थ मिथ्या किया, उसे उसने सत्यरूप मे परिणत कर दिया । अच्छा ऐसा ही सही । मामा के सन्देश के बिना भी मैने इसका विवाह कर ही दिया ।

दूत—देवि । आप जैसी देवियो की बुद्धि अपनी मनमानी भी प्रवृत्त होकर परिणामत अनूकूल सिद्ध होती है ।

विदूषक—(फुसफुसाकर) अरे देवी पहले ही तत्पर हो गई ।

राजा—हाँ, ऐसा ही है । अनुकूल दैव सबका कल्याण करता है ।

देवी—(जनान्तिकेन) हला अह्मे कज्जवाहिरिल्लीओ, एदाण उण साणुबधाण रसपपचो । (हला, वय कार्यवाह्या, एतयो पुन सानुबन्धयो रसप्रपञ्च ।)

मेखला—जधा एव्व देवीए महानुभावत्तण अगीकिद तह एव्व णिव्वाह करीअदु । कि गदे सलिलि सेतु-बधेण ? कि वा वुत्ते विआहे णक्खत्त-परिक्खाए ? (यथैव देव्या महानुभावत्वमङ्गीकृत तथैव निर्वाह क्रियताम् । कि गते सलिले सेतुबन्धेन । कि वा वृत्ते विवाहे नक्षत्रपरीक्षया ?)

विदू०—अहो अमच्चचूडामणे, अहिणवचाणक्क, भअव भाउराएण, एसा वि कुवलअमाला पिअवअस्सस्स एव्व, जदो महामुणिणो एव्व भणति—(अहो अमात्यचूडामणे । अभिनवचाणक्य । भगवन् भागुरायण । एषापि कुवलयमाला वयस्यस्यैव । यतो महामुनय एव भणन्ति)

भज्जा दासो अपुत्तो अ णिद्धणा सअला वि ते ।
ज दे समभिगच्छन्ति जस्स दे तस्स त धण ॥ २१ ॥

(भार्या दासश्च पुत्रश्च निर्धना सकला अपि ते ।
य ते समभिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥ २१ ॥)

दूत—अहो । स्मृति-वैशद्य नर्मसचिवस्य चारायणस्य ।

देवी—(फुसफुसाकर) अरे, हम तो केवल कार्य के साधक है, इसमे वास्तव मे इनका परस्पर प्रेम-विस्तार मुख्य है ।

मेखला—महारानी ने जैसे महानुभावता स्वीकार किया है, वैसे ही इसका निर्वाह भी करे । पानी के न रहने पर पुल बॉधने से क्या लाभ अथवा विवाह हो जाने पर नक्षत्र देखना बेकार है ।

विदूषक—हे अमात्यशिरोमणे । अभिनव चाणक्य । भगवन् भागुरायण । यह कुवलयमाला भी मित्र की ही है । क्योकि महामुनि लोग कहते है—

भार्या, दास और पुत्र ये सब बेचारे निर्धन जिसके पास जाते है और जिसके हो जाते हैं, उसके वे धन होते है ॥ २१ ॥

दूत—अहो, क्रीडा सचिव चारायण की स्मरण शक्ति की विशदता

भागु०—यथाह चारायण । कि न्वनेनैव कङ्कणादिना देवो परिणाययत्येनापि ।

विदू०—जह समत्थेदि महामच्चो । (यथा समर्थयते महामात्य ।)

(कुवलयमालाया हस्त गृहीत्वा राजहस्ते विनिवेश्य) एसा सालभज्जा अद्धभज्जत्ति बुज्झदि भवदो उण सअल-भज्जा सवुत्ता । **[सर्वे हसन्ति ।]**

(एषा श्यालभार्या अर्धभार्येति बुध्यते, भवत पुन सकलभार्या सवृत्ता ।)

देवी—(सविलक्ष स्मयते)

विदू०—(चेटी प्रति) भोदीओ । णच्चध, गायध अह पि नच्चिस्स गाइस्स । जदो विआहे सपद सवुत्त । **[तथा कुर्वन्ति]** (भवत्यो नृत्यत गायत, अहमपि नर्तिष्यामि गास्यामि च, यतो विवाहे साप्रत सवृत्तम्)

मृगा०—(अपवार्य सहर्षम्) कुवलअमाले । परिरभसु म, कलत्त भविअ सवत्ती सवुत्ता । (कुवलयमाले । परिरभस्व मा, कलत्र भुत्वा सपत्नी सबृत्ता ।)

भागु०—**(दक्षिणाक्षिस्पन्द सूचयित्वा जनान्तिकेन)** न जाने कि पुनर्हर्षकारणम् ।

भागु—चारायण ठीक ही कह रहे है, क्यो न इसी कङ्कण आदि से देवी कुवलयमाला को भी व्याह दे ।

विदूषक—(कुवलयमाला का हाथ पकडकर राजा के हाथ पर रखकर) यह साले की पत्नी आधी भार्या समझी जाती है और आपकी तो यह पूर्ण भार्या हो गई ।

देवी—(विस्मय एव लज्जापूर्वक मुस्कराती है)

विदूषक—(दासियो से) आप लोग गाइये, नाचिये । मैं भी गाऊँगा और नाचूँगा क्योकि विवाह अब सम्पन्न हो गया ।

मृगाङ्कावली—(ढॉककर सहर्ष) कुवलयमाले ! मुझे हृदय से लगाओ, पत्नी होकर अब सपत्नी हो गई ।

भागु—(दाहिनी ऑख का फडकना सूचित कर फुसफुसाते हुए) न जाने अब दूसरा हर्ष का कौन सा कारण होगा ।

प्रतिहारी—(प्रविश्य) देव । वच्छाहिव । सेणावदिणो आअदो कुरगओ लेहहत्थओ दुआरे चिट्ठइ । (देव । वत्साधिप । सेनापतेरागत कुरगको लेखहस्तो द्वारे तिष्ठति ।)

भागु०—प्रवेश्यताम् ।

प्रतिहारी—तथा । (निष्क्रान्ता)

तत प्रविशति कुरङ्गक । (प्रणम्य) जेदु भट्टा । (जयतु भर्ता)—

(लेख समर्पयति ।)

भागु०—(गृहीत्वा वाचयति)

स्वस्ति श्रीमत्त्रिपुर्या तुहिन-कर सुतावीचिवाचालिताया
देव केयूरवर्ष विनयनतशिरा सर्वसेनाधिनाथ ।
श्रीवत्सो वात्सगुल्मिर्मुरजजनवधूलोचनैरर्च्यमाने
पादद्वन्द्वारविन्दे प्रणमति रचयन्नञ्जलि मूर्ध्नि भक्त्या ॥ २२ ॥

प्रतिहारी—(प्रवेश कर) हे वत्साधिप देव । सेनापति के पास से आया हुआ कुरगक हाथ मे पत्र लिए द्वार पर खडा है ।

भागु.—अन्दर ले जाओ

प्रतिहारी—बहुत अच्छा (निकल गया)

(इसके बाद कुरगक मञ्च पर आता है) (प्रणाम करके) स्वामी की जय हो । (पत्र देता है)

भागु.—पत्र लेकर बॉचता है ।

नर्मदा नदी के लहरो से प्रतिध्वनित त्रिपुरी नगरी मे केयूरवर्ष महाराज को, सेनापति श्रीवत्स वात्सगुल्मि विनयपूर्वक शीश झुकाकर मुरज जनो की वधूटियो के लोचनो से अर्चित होने वाले दोनो चरण कमलो मे अञ्जलि सहित सिर से भक्तिपूर्वक, प्रणाम करता है ॥ २२ ॥

श्रेयोऽन्यत्कार्य च लेख्यते—कलचुरिकुलैकतिलकस्य प्रसादेन, भागुरायणस्य मतिवैशद्येन मादृशा च पदातिलवानामादेशनिर्वहणेन प्राचीप्रतीच्युदीचीदिग्विलग्नेन सर्वएव राजानश्चण्डवृत्तयो दण्डोपनता स्थिता, केवलमवाचीक्षितिपतयो दृप्यन्ति स्म। तत्रापि विनिवेद्यते। तत्कुल्यापहृतराज्य कुन्तलाधिपतिर्वीरपालो नाम देव शरणमागतो देवादेशाच्च त पुरस्कृत्य वय पयोष्णी-परिसरे समावासिता। तत्र च—

कार्णाटो युद्धनाट्ये चतुरतरमति सिंहल सिंहकर्मा,
पाण्ड्यश्चण्डासियष्टिर्मलयनरपति कार्मुकप्रौढबाहु।
आन्ध्रो नीरन्ध्रसार. समरभुवि पर. कुन्तल कुन्तशाली,
किं चान्यत् कोङ्कणाद्या अपि नरपतय सयता. सघभित्तिम्॥ २३॥

अत्रान्तरे तै सहास्मदीयानामपि महान् सरम्भ प्रवृत्त।

राजा—समरभुवि निसर्गोद्भटा एव कण्टका।

भागु०—वाचयति तत्र च—

यहाँ पर कुशल है और कार्य लिखा जा रहा है—कलचुरि कुल के तिलक महाराज की कृपा से, भागुरायण की बुद्धि की विशदता से एव मुझ जैसे अकिञ्चन पदातियो के आदेश-पालन से पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओ मे रहने वाले सभी उग्र वृत्ति वाले राजा दण्डित किए गए। केवल दक्षिण दिशा के राजा अभी दर्प हैं। उनके बारे मे भी निवेदन कर रहा हूँ—कुन्तलाधिपति वीरपाल आपकी शरण में आया। उसका राज्य अपहृत कर लिया गया है। आपकी आज्ञा से उसको आगे करके हम पयोष्णी के तट पर रहे।

वहाँ युद्ध के नाटक मे चतुरमति वाला कर्णाट देश का राजा, सिंहल का राजा सिहकर्मा, पाण्ड्य का राजा, प्रचण्ड तलवार वाला मलय देशाधिपति, ये कार्मुक विद्या मे निपुण है। आन्ध्र देश बड़ा ही बलशाली है, कुन्त से युक्त कुन्तल पृथ्वी मे अद्वितीय है। कोकण आदि देश के राजा भी एक दूसरे से मिल गए॥ २३॥

इसी बीच मे उन सबो के साथ हमारे सैनिको का महान् सघर्ष हुआ।

राजा—स्वभाव से ही वीर समरभूमि के कण्टक है।

प्रेयान् मे दन्तिदन्तप्रवसदसुरय वल्लभो मे विपक्ष
कुन्तप्रोतोऽपि योऽय सरति मम रुचिस्ताण्डवीय कबन्ध ।
अत्रास्मत्प्रेमबद्धभ्रुकुटिमुखमिद यस्य लूनेऽपि कण्ठे
युद्धे देवाङ्गनानामिति वर-वरणे न श्रुता केन वाच ॥ २४ ॥

कि च बहुना तान्विजित्यास्माभि स्वराज्ये वीरपालोऽभिषिक्त शेष कुरगकमुखादेवावगन्तव्य ।

कुर०—देव पट्टए घट्टस्स वि मेमुहे अत्थिण वाणी । (देव, पट्टके घृष्टस्यापि मे मुखेऽस्ति न वाणी ।)

राजा—लेखमुखा एव लेखवाहा भवन्ति ।

भागु०—तदधुना

आ गगापातपूतप्लुतनलिनतलात्पूर्वतस्ताम्रपर्ण्या
पूतादा दाक्षिणात्यात् तुहिनकरसुता वल्लभादा प्रतीच ।
नृत्यच्चण्डीशशुण्डाच्युताविबुधनदीनन्दितादा च देव
क्षीराम्भोधेरुदीच खलचुरितिलको वर्तते चक्रवर्ती ॥ २५ ॥

भागु.—पढ़ता है । ऐसा शत्रु हमारा प्रिय है जिसका प्राण हमारे हाथियो के दॉतो से निकल गया है । कुन्त से गुँथा हुआ होने पर भी जो कबन्ध मेरी रुचि के अनुसार ताण्डव कर रहा है, कण्ठ के कट जाने पर भी हमारे प्रेम से जिसने अपनी भौहो को टेढा कर रखा है । वरण करने के लिए आयी हुई अप्सराओ का इस प्रकार वार्तालाप किसने सुना है ॥ २४ ॥

और अधिक क्या, उनको जीतकर स्वराज्य मे हमारे द्वारा वीरपाल का अभिषेक किया गया है और शेष कुरगक के मुख से सुनिये ।

कुरंगक—पट्ट पर रगडने पर भी मेरे मुख से बात नही निकल सकती ।

राजा—पत्र-वाहक का मुख पत्र ही होता है ।

भागु—तो इस समय

पश्चिम मे गगा जी के उद्गम से लेकर पूर्व मे ताम्रपर्णी तक, पवित्र दक्षिण प्रदेश से पश्चिमी समुद्र तक और शकर जी की जटाओ से गिरी हुई गगा जी के द्वारा अभिनन्दित उत्तरी क्षीरसागर तक कलचुरितिलक ही चक्रवर्ती सम्राट् हैं ॥२५ ॥

(राजान प्रति अञ्जलि बद्ध्वा) कि ते भूय प्रियमुपहरामि ।

राजा—अत परमपि प्रियमस्ति ?

देवीकोपकषायित न गमिता लब्धा मृगाङ्कावली
प्राग्गूढापि मयाद्य सा कुलपते पुत्री च पाणौ कृता ।
युष्मन्नीति-बलेन तस्य च महासेनापतेर्विक्रमै
सजाता मम चक्रवर्ति-पदवी किन्नाम यत् प्रार्थये ॥ २६ ॥

तथापीदमस्तु (**भरतवाक्य**)

वामाङ्ग पृथुलस्तनस्तबकित यावद्भवानीपते-
र्लक्ष्मीकण्ठपरिग्रहव्यसनिता यावच्च दोष्णा हरे ।
यावच्च प्रतिमाप्रसारणविधिव्यग्रौ करौ ब्रह्मण
स्थेयासु श्रुतिशुक्तिलेह्यमधुरास्तावत् सता सूक्तय ॥ २७ ॥

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

इति चतुर्थोऽङ्क

समाप्ता च राजशेखर रूपकावली

(राजा के प्रति हाथ जोडकर) आपको पुन क्या प्रिय उपहार दूँ ?

राजा—इससे भी बढकर कोई प्रिय है ?

रानी कोप से दु खी नही हुई और मृगाङ्कावली मिल गई । पहले से विवाहित कुलपति की वह पुत्री हाथ में कर ली गई है। तुम्हारी नीति-बल से और सेनापति के विक्रम से मुझे चक्रवर्ती की पदवी मिली । अब वह कौन सी वस्तु है, जिसकी प्रार्थना करूँ ॥ २६ ॥

फिर भी यह हो । (भरत वाक्य)

जत तक शिव जी का वामाङ्ग पीन स्तनो से स्तबकित है, भगवान् विष्णु की भुजाओ मे लक्ष्मी के आलिंगन का व्यसन है, और जब तक ब्रह्मा के दोनो हाथ प्रतिमा के प्रसार के लिए व्यग्र है, तब तक कानरूपी सीपियो से चाटने योग्य सज्जनो की मधुर सूक्तियाँ अमर रहे ॥ २७ ॥

(सभी चले जाते है ।)

चतुर्थ अङ्क समाप्त

राजशेखर रूपकावली समाप्त

कर्पूरमञ्जरी
प्राकृतश्लोकानुक्रमणिका

विद्धशालभञ्जिका

श्लोकानुक्रमणिका